अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ़्तर

सामाजिक सुरक्षा

मजदूर-शिक्षा पाठ्यक्रम

Hindi edition

52923

New Delhi

नई दिल्ली

१९५८

BUREAU INTERNATIONAL DU TRAVAIL
BIBLIOTHÈQUE
-6 OCT. 1958
LIBRARY
INTERNATIONAL LABOUR OFFICE

copy 2

62047[illegible]

प्रस्तावना

यह तो आम तौर पर माना जाता है कि आधुनिक जगत में कार्यकुशलता हासिल करने के लिए, व्यवसायिक प्रशिक्षण के अतिरिक्त, मज़दूर की पहुंच कुछ अन्य प्रकार के ज्ञान तक भी होनी चाहिये। इसकी आवश्यकता इसलिये है कि, उस सदा बढ़ते हुए कार्यक्षेत्र में जिसमें समाज के कामकाज के बारे में अब श्रमिकवर्ग का जिम्मेदारी का भाग है, वह परिणामकारक रीति से भाग ले सके। उदाहरणार्थ मज़दूर को संघ के कामकाज तथा सामूहिक सौदे में योग्य भाग लेते बनना चाहिए या कार्य परिषद, उत्पादन समिति, वेतन-निर्धारक-बोर्ड या सामाजिक बीमा कमेटी के सदस्य की हैसियत से काम करते बनना चाहिए। इन कार्यों के लिए, अपने व्यवसाय के स्वानुभव के साथ साथ उसे सामाजिक या प्रशासनिक ढांचे की, तथा श्रमिक-संघ और सार्वजनिक कार्य के संचालन के बारे में स्पष्ट कल्पना होनी चाहिये।

ऐसे ज्ञान की बढ़ती हुई आवश्यकता देखकर सन् १९५६ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर ने मज़दूरों की शिक्षा का एक पूरक कार्यक्रम शुरू किया। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत दुनियां के विभिन्न भागों में पाठ्यक्रमों और विचार-गोष्टियों के आयोजन के अतिरिक्त मज़दूरों के शिक्षण से सम्बन्धित मौजूदा संस्थाओं को उनके ही देश में या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सहायता देने का भी समावेश है।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर एक ऐसी पाठ्य माला प्रकाशित कर रहा है जो, उन विषयों में, जिनसे कि उसका विशेष सम्बन्ध है, मज़दूर शिक्षा क्रम का आधार स्तम्भ बन सके।

यह पुस्तक इस माला का दूसरा[1] पुष्प है। इसमें विभिन्न प्रकार के सामाजिक बीमे तथा इनसे सम्बन्धित सामाजिक सेवाओं का, जो मिलकर हर देश की सामाजिक सुरक्षा पद्धति बनाते हैं, विवेचन है।

इस पाठ्यक्रम में पहले तो बीमारी, दुर्घटना, बेकारी आदि संभावित घटनाओं में समाज की ओर से सुरक्षा देने की कल्पना के सर्वसाधारण विकास का वर्णन है तथा समाज के किन वर्गों को यह सुरक्षा दी जाय इसका भी विचार किया गया है। इसके बाद विभिन्न हितलाभ और उन्हें पाने के लिए जो शर्तें पूर्ण करनी पड़ती हैं उनका

---

[1] सहकारिता नामक पहली पुस्तक अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर, जनीवा ने १९५६ में अरबी, अंग्रेज़ी, फ्रेंच, हिन्दी, जापानी, स्पेनिश तथा उर्दू भाषाओं में प्रकाशित की थी।

विश्लेशण किया गया है। अन्त में सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के वित्तपोषण की समस्याएं, आवश्यक स्रोतों को हासिल करने के लिए उपयोग में लाये जा सकने योग्य तरीके तथा विभिन्न देशों में सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था, चन्दा वसूली और हितलाभ के भुगतान के लिए प्रचलित पद्धतियां तथा कार्यप्रणालियां समझाई गई हैं।

इस पाठ्यक्रम को दस पाठों में बांटा गया है। परन्तु पुस्तक की मर्यादित पृष्ठसंख्या के मुकाबले विषय इतना विस्तीर्ण है कि यह आशा ही नहीं की जा सकती कि चुने हुए विषय खंड—और वैसे तो कोई भी विषय खंड—हर पढ़ने वाले की व्यवहारिक आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त हों। परिणामतः, चाहे यह प्रत्यक्ष शिक्षण के काम में लाई जाय (जैसे कि व्याख्यान, प्रौढ़ शिक्षा वर्ग आदि में) या पत्रव्यवहार पद्धति से शिक्षण देने के उपयोग में लाई जाय, स्थानीय आवश्यकताओं और परिस्थितिओं के अनुसार इस साहित्य का अनुकूलन और विभाजन करना पड़ेगा। इस पुस्तक के अन्त में दी हुई यादी में उल्लेखित किताबों के साथ इसका उपयोग इस विषय के अधिक सम्पूर्ण तथा विशेष प्रगल्भ अभ्यास के लिए भी किया जा सकता है। हर एक पाठ के अन्त में कुछ प्रश्न दिये गये हैं ताकि जो भाग पढ़ाया जा चुका है उसे याद करने में सहूलियत हो और खास विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़े।

—♦♦—

विषय-सूची

	पृष्ठ
प्रस्तावना	
पाठ १ : **सामाजिक सुरक्षा—पुरानी आकांक्षाओं का नया नाम**	१
सामाजिक सुरक्षा का आरम्भ	२
बचत	३
कारखानेदारों की जिम्मेदारी	३
निजी बीमे के प्रकार	५
सामाजिक बीमा	८
सामाजिक सहायता	१०
कुटुम्ब भत्ता	११
राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा	११
सामाजिक सुरक्षा और अंतर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर	११
पाठ २ : **सुरक्षित व्यक्ति**	१५
कर्मचारियों का सामाजिक बीमा	१५
उद्योगों का क्षेत्र	१६
कर्मचारियों का क्षेत्र	१८
कर्मचारियों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तिओं का सामाजिक बीमा	२१
कमाने वाले के बीमे से आश्रितों की सुरक्षा	२२
सामाजिक सहायता (सार्वजनिक सामाजिक सुरक्षा सेवाओं सहित)	२४
पाठ ३ : **हितलाभ**	२७
कुछ फुटकर बातें	२७
कुटुम्ब भत्ते	३४
पाठ ४ : **हितलाभ** (चालू)	४२
डाक्टरी, बीमारी तथा प्रसूति हितलाभ	४२
डाक्टरी हितलाभ	४२
बीमारी हितलाभ	५०
प्रसूति हितलाभ	५६

	पृष्ठ
पाठ ५ : **हितलाभ** (चालू)	५९
पेन्शन	५९
असमर्थता	६०
वृद्धावस्था	६२
पोषणकर्ता की मृत्यु	६७
उत्तरजीवियों के हितलाभ	६८
पाठ ६ : **हितलाभ** (चालू)	७०
पेन्शनें (समाप्त)	७०
पात्रता अवधियां	७०
पेन्शन के सूत्र	७३
पाठ ७ : **हितलाभ** (चालू)	७८
औद्योगिक चोट हितलाभ	७८
संभाव्य घटना की परिभाषा	७९
डाक्टरी हितलाभ	८१
अस्थायी अपंगता हितलाभ	८२
स्थायी अपंगता हितलाभ	८३
उत्तरजीवियों के हितलाभ	८५
बेकारी हितलाभ	८५
संभाव्य घटना की परिभाषा	८६
काम दिलाऊ सेवा के कार्य	८६
हितलाभ की दर तथा पात्रता की शर्तें . . .	९०
पाठ ८ : **सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का वित्तपोषण** . . .	९३
हितलाभों की बारंबारता और कालमात्रा . . .	९४
कुटुम्ब भत्ते	९४
बीमारी हितलाभ	९५
प्रसूति हितलाभ	९७
असमर्थता पेन्शनें	९८
वृद्धापकालीन पेन्शनें	९९
विधवाओं और अनाथों की पेन्शनें	१०१
औद्योगिक चोट हितलाभ	१०२
बेकारी हितलाभ	१०५
डाक्टरी हितलाभ	१०६
पाठ ९ : **सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का वित्तपोषण** (चालू)	१११
मूल्य का आवर्ती वितरण	१११

पृष्ठ

जनसंख्या के खंडों में मूल्य का वितरण १२०

पाठ १० : **सामाजिक सुरक्षा योजना का प्रशासन** . . . १३१

नित्यचर्यात्मक कार्य १३१

बीमा योजनाएं १३१

सहायता और सार्वभौमिक योजनाएं १३५

प्राशासनिक अंगों के अधिकार और उनका वितरण . . . १३६

स्वायत्तशासी प्रशासन १३९

अपील का अधिकार १४३

आगे पढ़ाई के लिए सुझाव १४५

—♦♦—

पाठ १

सामाजिक सुरक्षा : पुरानी आकांक्षाओं का नया नाम

समय समय पर व्यक्ति और समाज या तो साहसी उपक्रम की ओर या सुरक्षित संतुष्टता की ओर आकर्षित होते दिखाई देते हैं। वर्त्तमान युग में अधिकांश मानव "बचाव पहले" की नीति के पक्ष में जान पड़ते हैं। सामाजिक सुरक्षा की बराबर बढ़ती हुई मांग इसी प्रवृत्ति की साक्षी हैं। औसतन आज का मनुष्य, पहले से अधिक प्रौढ़ है और उम्र के साथ सावधानी आ ही जाती है। शायद लाभदायक व साहसी कार्यों के करने के अवसर भी अब इतने कम मिलते हैं कि वह कल्पना में ही नहीं आते। शायद भविष्य में साहस, आर्थिक क्षेत्र के बाहर ही दिखाया जा सकेगा। कारण कुछ भी हो, आज हर एक मज़दूर न केवल अपने अगले भोजन के बारे में ही, वरन् अपने बाकी जीवन के और अपने आश्रितों के निर्वाह के बारे में भी, निश्चितता चाहता है। यह आकांक्षा, जो कि अकसर मूक थी, हमेशा से रही है परंतु इसके पूरी होने की संभावना, जो कि ज़मीदारों ने तो पहले समझी थी, जनसाधारण ने हाल ही में समझी है। सामाजिक सुरक्षा का मर्म यही है कि वह प्राकृतिक और आर्थिक जीवन के अँध अन्यायों का प्रतिकार विवेकपूर्ण और नियोजित-न्याय से करती है जिस पर कुछ परोपकार की भावना का असर भी है।

इस पहले पाठ में हम उन ऐतिहासिक घटनाओं का विचार करते हुए, जिनसे सामाजिक सुरक्षा की कल्पना का विकास हुआ, "सामाजिक सुरक्षा" के प्रचलित अर्थ को निश्चित करेंगे।

विद्यार्थी को यह दिखाई पड़ेगा कि यह पुस्तक और विशेषकर यह पाठ ऐतिहासिक प्रगति के उल्लेखों से परिपूर्ण है और यहां इस विषय पर दो शब्द कहना उचित होगा। सामाजिक सुरक्षा के फायदे और सदा बढ़ते हुए क्षेत्र में उसकी व्यवहारिकता राष्ट्रीय मत को धीरे धीरे ही समझाई जा सकी है। एकाध ही दूरदर्शी विद्यार्थी यह कल्पना कर पाया है कि दूर भविष्य में सामाजिक सुरक्षा का क्या रूप होगा। साथ ही, यह भी सही है कि सामाजिक सुरक्षा की राष्ट्रीय योजना इतना बड़ा आयोजन है कि छोटे परिणाम पर प्राप्त किये हुए अनुभव के बिना उसका प्रशासन प्रायः असंभव है। यही कारण है कि प्रत्येक राष्ट्र सामाजिक सुरक्षा संबंधी अपने क़ानूनों में प्रगति की उन्हीं सीढ़ियों पर चढ़ता दिखाई देता है जिन्हें दूसरे अनुभवी राष्ट्र पहले ही पार कर चुके हैं।

हां, यह रास्ता अब पदांकित होने के कारण प्रगति शायद जल्दी हो सके और इस रास्ते पर चलने वाले नये राष्ट्रों को अनुभवी मार्ग दर्शन मिलने के कारण, उन बन्द गलियों में भटकना न पड़े जो ध्येय की ओर नहीं ले जातीं। ऐतिहासिक क्रम का थोड़ा भी परिचय यह बतलाता है कि किसी ध्येय के निश्चित होने पर वहां पहुंचने के साधन वास्तव में अनुभव सिद्ध ही हैं। यद्यपि यह हो सकता है कि इस तरह चुने हुए मार्गों को किसी जंचने वाले, और सम्भवतः पुराने सिद्धांत का सहारा देकर मनवाया जा सके। अंत में, कोई भी बढ़ी और पेंचीली योजना जब कुछ समय चल चुकती है तो उसमें मूलभूत परिवर्तन करने वाले सुझावों का प्रतिकार करने की बड़ी शक्ति निर्माण हो जाती है। इसलिये पहले से स्थापित कुछ योजनाएं अपने काम करने के ढंग में आधुनिक योजनाओं से पिछड़ जाती हैं।

सामाजिक सुरक्षा का आरम्भ

हमारे वर्तमान प्रयोजन के लिए सामाजिक सुरक्षा के आरम्भ की खोज पश्चिमी यूरोप में १९वीं शताब्दी की शुरुआत तक ही करना काफ़ी होगा। इस क्षेत्र में औद्योगीकरण शुरू हो चुका था और श्रमिक समाज ने पदार्पण कर लिया था। यह कारखानों में काम करने वाले मज़दूरों का नया और बहुसंख्यक वर्ग अपने भरण पोषण के लिये मजदूरी नियमित रूप से पाने पर ही सर्वथा निर्भर था और इसलिये बीमारी या बेकारी के मौके आते ही मुहताज हो जाता था। यह सच है, कि उत्तर-पश्चिमी यूरोप में "पुअर लाज़" याने "कंगाली कानून" बन गये थे जिनके अन्तर्गत पूर्णतः निराश्रित व्यक्ति अपने सामान्य नागरिक हक़ खोकर मदद पा सकते थे। परन्तु जैसी कि आशा ही नहीं वरन् अभिप्रायः भी था, जब तक कि और कोई चारा होता था कोई इस मदद को न मांगता था। इन कानूनों में यह ख़ूबियां अवश्य थीं कि उन्होंने निराश्रितों को आश्रय देने के सामाजिक उत्तरदायित्व को माना; इसके लिये अलग निधि का इंतज़ाम किया और अपने कार्यक्षेत्र में संभवतः सर्वव्यापी रहे। इस तरह उन्होंने उन सिद्धांतों को माना था जो सौ साल बाद, सामाजिक सुरक्षा की नीति बने। परन्तु सहायता तब तक न दी जाती थी जब तक कि सहायता के पात्र ने अपने सारे संपत्ति स्रोत ख़तम न कर दिये हों और उनके सगे सम्बन्धियों से मदद की कोई आशा न बची हो। यह स्पष्ट है कि निर्धनों की सहायता, किसी अंश तक सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के विचार से नहीं की जाती थी, बल्कि इसकी कल्पना एक पुलिस उपाय के रूप में उत्पन्न हुई थी जिसका उद्देश्य भूखों मरने से उत्पन्न होनेवाली निराशा को दूर करके उद्दण्डता के ख़तरों और परेशानी को कम करना था। सन् १८८० तक के काल में शहरों में रहने वाले मज़दूर वर्ग को कंगाल होने की मुसीबतों से बचाने के लिये तीन तरीके अख्तियार किये गये थे: अल्प बचत, कारखानेदारों की ज़िम्मेदारी और अनेक प्रकार का निजी बीमा।

बचत

सरकार द्वारा चलाये हुए संचय-अधिकोषों (Savings banks) को, जहां कि छोटी छोटी रकमें भी जमा कराई जा सकती हैं इतनी सफलता मिली कि उनका महत्व कम करना अनुचित होगा क्योंकि अनेक देशों में अनगिनती मज़दूरों ने इन बैंकों में खाते खोल रखे थे और अब भी खोल रखे हैं। परन्तु इनकी कमी भी स्पष्ट है। पचास या सौ साल पहले की मज़दूरी का स्तर और उस काल के बड़े कुटुंब, अनिपुण (Unskilled) मज़दूरों की बचत के लिये कोई गुंजायश न छोड़ते थे। सच बात तो यह है कि इस वर्ग का बिरला व्यक्ति ही बचत करने के प्रयत्न कर पाता था। और फिर अकेली बचत से तो सामाजिक सुरक्षा खुद के बुढ़ापे के अतिरिक्त प्राप्त नहीं होती। बीमारी, दुर्घटना बेकारी और मृत्यु कमाई करने के काल में किसी भी उम्र पर हो सकते हैं यद्यपि इनमें से कुछ ख़तरों की बड़ी उम्र में अधिक सम्भावना होती है।

कारखानेदारों की जिम्मेदारी

दूसरा तरीका यह है कि तनदुरुस्त होने की दशा के समान ही, बीमारी की हालत में भी मज़दूर के निर्वाह की ज़िम्मेदारी उसके मालिक या कारख़ानेदार पर डाल दी जाय क्योंकि जब नौकर-मालिक के रिश्ते में मालिक प्रायः पितृतुल्य अधिकार रखता है तब तत्संबन्धी ज़िम्मेदारियां भी उसी की होनी चाहियें। इन विचारों में सामंती ज़माने की या उस संबन्ध की, जो कि कारीगर और उसके साथ उसके घर पर रहने वाले शिष्यों में होता था, प्रतिध्वनि है। यह तरीक़ा उन सरकारों को बहुत आकर्षित करता है जो कि कोई विशेष संस्था या प्रशासन स्थापित किये बिना और कर की आय में से कुछ खर्च किये बिना ही, सामाजिक अरक्षा (Insecurity) का प्रश्न हल करना सम्भव समझती हैं या इस प्रश्न के हल कर चुकने का दिखावा करना चाहती हैं। साधारणतया कुछ नहीं से तो यह ज़रूर अच्छा है। कभी कभी मालिक अपने मज़दूर वर्ग की भलाई के बारे में पितृतुल्य चिंता करने का कुछ कुछ उत्तरदायित्व समझते हैं। कुछ काल पहले मध्य यूरोप में और आज लैटिन अमरिका और मध्यपूर्व भागों में सिद्धांततः, मालिकों को बीमारी, सेवानिवृत्ति और मृत्यु के अवसर पर हितलाभ देना पड़ता है। परंतु कारख़ानेदारों की ज़िम्मेदारी का मुख्य संबन्ध काम करते समय लगी हुई चोटों के बदले हरजाना देने से होता है।

१९वीं शताब्दी के आखिरी चतुर्थांश में पश्चिमी यूरोप के उद्योग-प्रधान देश दिन ब दिन बढ़ने वाले कारखानों और रेलों की दुर्घटनाओं के शिकार होने वाले मज़दूरों को हरजाना देने की रीति ढूंढ रहे थे। एक सर्वथा स्वाभाविक और सर्वमान्य सिद्धांत के अनुसार हर देश का दीवानी कानून कारखानेदार को, उसकी लापरवाही से चोट खाये हुए मज़दूर को हरजाना देने पर बाध्य करता था। परन्तु कारखानेदार की लापरवाही

होने पर भी मज़दूर को यह सिद्ध कर पाना कठिन हो जाता था। इस परिस्थिति में क़ानूनदां ऐसे नये सिद्धांत की खोज में थे जिससे हरजाना वसूल करना आसान हो जाय। अनेक प्रस्ताव किये गये जिनमें से हर एक का आशय हरजाने का हक़ कारखानेदार की लापरवाही का परिमाण दिये बिना ही, स्थापित करने का था। अन्त में जिस सिद्धांत की विजय हुई उसे "औद्योगिक ख़तरे का सिद्धांत" कहते हैं और इसी से निकला हुआ सिद्धांत है, "कारखानेदार की ज़िम्मेदारी" का। कारखानेदार कारखाना स्थापित करके एक ऐसा साधन जुटाता है जो स्वभावतः कारख़ानेदार की या मज़दूरों की कोई गलती बिना ही, मज़दूरों के लिये दुर्घटनाओं का ख़तरा उत्पन्न करता है। इसलिये यह न्यायोचित है कि मजदूर पर पड़ी हुई क्षति मालिक पूरी करे जहां से वह कारखाने की निर्मित वस्तुओं की लागत में शामिल हो जायगी। काम करते समय दुर्घटना द्वारा लगी हुई चोट से हुई क्षति की पूर्ति करने की जिम्मेदारी कारखानेदार पर लादने वाले कायदे इसी सिद्धांत के आधार पर बने थे। क्षतिपूर्ति की रकम, हानि के अनुमान के समान न्यायाधीश द्वारा नहीं आंकी जाती थी वरन् कानून से ही निश्चित की जाती थी। इन मज़दूर क्षतिपूर्ति कानूनों ने दुर्घटनाओं का शिकार बने हुए मज़दूर को खोई हुई मज़दूरी के बदले, कम से कम कुछ अंश तक, हितलाभ मिलाने की संभावना काफ़ी बढ़ा दी। परन्तु अपना हक़ सिद्ध करने के लिये उसे अभी भी अदालतों के चक्कर में पड़ना पड़ता था। इसमें यह भी डर था कि मालिक के साथ उसके संबन्ध ख़राब हो जायें। औद्योगिक चोटों के लिये कारखानेदार की ज़िम्मेदारी नैतिक दृष्टि से तो न्यायोचित थी ही परन्तु साथ ही साथ इससे कारखानेदारों को दुर्घटनाओं को रोकने के लिये ख़ास प्रयत्न करने का आकर्षण भी होता था।

कारखानेदारों की ज़िम्मेदारी के तरीक़े से सार्वजनिक सामाजिक सुरक्षा पद्धति का निर्माण नहीं हो सकता। सार्वजनिक प्रशासनिक संस्थाओं और बड़े निजी निगमों में यह आर्थिक शक्ति और प्रशासनिक योग्यता होती है कि वे इस उत्तरदायित्व को निभा सकें और इन्होंने अक़सर अपने कर्मचारियों से संबंध सुधारने के लिये हितलाभ देने की ओर कदम बढ़ाये हैं। वे अपने कर्मचारियों की स्वास्थ्य रक्षा का प्रबन्ध अपने दवाखानों में कर सकते हैं, बीमारी और प्रसूति के हितलाभ दे सकते हैं और लंबी नौकरी के बाद पेन्शन देने के लिए आवश्यक निधि संचय कर सकते हैं। परन्तु अधिकांश मज़दूर बड़े उद्योगों में काम नहीं करते। जिन देशों में विशेष औद्योगिक प्रगति नहीं हुई है उनके नगरों में मामूली मज़दूर ऐसी कार्यशाला में काम करता है जहां कुल एक दर्जन आदमी काम पर होते हैं। यह देखी हुई बात है कि छोटे कारखानेदारों को ऐसे कायदों का, जिनके अन्तर्गत कर्मचारियों को कीमती हितलाभ देने पड़ते हैं, पालन करने में कठिनाई होती है। अगर उन्हें उनकी ज़िम्मेदारियां पूरी करने पर बाध्य किया जाता है, और वे भारी हों, तो कारखानेदार दिवालिया हो जाता है, उसका व्यवसाय बैठ जाता है और उसके कर्मचारी बेकार हो जाते हैं। इसलिये विधान सभा के नेक इरादों के फल भी केवल बड़ी संस्थाओं के कर्मचारियों के हिस्से में आयेंगे। यह तो कोई सन्तोषजनक स्थिति नहीं है।

हरजाना देने की ज़िम्मेदारी मध्यम आकार की संस्थाओं के बूते की बात रहे इसलिये हरजाने की रक़में, स्थायी रूप से पूर्ण अपंग व्यक्तिओं या दुर्घटना से मरे हुए मज़दूर के आश्रितों की वास्तविक आवश्यकताओं से काफी कम रखी जाती थीं। पेन्शन देने की कोई व्यवस्था न होने के कारण हरजाना अक़सर एक मुश्त दिया जाता था। फिर भी कारखानेदार का दायित्व ऐसी दुर्घटना के बारे में, जिससे मृत्यु या स्थायी अपंगता हुई हो, या किसी व्यक्ति के लंबी नौकरी के बाद सेवा निवृत्त होने पर, तुलनात्मक दृष्टि से भारी हो सकता है—विशेषकर जब ऐसे अनेक दावे एक साथ आ पड़ें। कारखानेदारों को, काम करते समय लगी हुई चोट के संबन्ध में हरजाना देने की ज़िम्मेदारी से मुक्त करने के लिये बीमा कंपनियों ने काफी पहले से ऐसे बीमापत्र देने शुरू कर दिये थे जिनके अंतर्गत, उद्योग में चोट के ख़तरे के परिमाण में दी हुई किश्त के बदले, बीमा कंपनी हरजाना देने की जिम्मेदारी लेती थी। विवेकी कारखानेदार जो कि इतने बड़े न थे कि इस ज़िम्मेदारी को स्वयं आसानी से संभाल सकें, ऐसे बीमापत्र खरीद लेते थे।

जहां बीमा कंपनियों ने मज़दूरों को हरजाना देने की ज़िम्मेदारी ले रखी है, वहां प्रायः और स्वभावतः यथाशक्ति हरजाने के दावों का विरोध किया है या दावेदारों को नाममात्र हरजाना स्वीकार करने को मना लिया है। संभव है कि ऐसे आचरण इतने कुख्यात हुए कि उससे समस्त बीमा व्यवसाय को अनुचित हानि पहुंची, परन्तु इससे यूरोप के अधिकांश देशों की सरकारें प्रभावित हो गईं कि औद्योगिक चोटों के ख़तरों को संभालने के लिये कोई दूसरी व्यवस्था करना उचित है।

निजी बीमे के प्रकार

कंगाली दूर करने के १९वीं शताब्दी के तरीकों में से तीसरा और अन्तिम प्रकार, अनेक रूपों में, निजी बीमा है। अपने वर्त्तमान प्रयोजन के लिये यहां हम पारस्परिक सहायता समाजों (Mutual aid societies) और बीमा कंपनियों द्वारा किये जाने वाले बीमों के भेद का विवेचन करेंगे।

भिन्न भिन्न देशों में और अलग अलग काल में नगरों में रहने वाले श्रमजीवियों में पारस्परिक सहायता सभाओं का विकास आप से आप हुआ जान पड़ता है, उदाहरणतः प्राचीन रोम में या १७वीं शताब्दी के मैड्रिड में। मध्यकालीन सभ्यता और उस काल के संघों (Guilds) के लुप्त होने से और शहरों में अनिपुण श्रमजीवियों का असंघठित जनसमुदाय प्रगट होने से पारस्परिक सहायता समाजों की आवश्यकता तीव्रता से मालूम पड़ने लगी। उनके मुख्य उद्देश्य थे, सदस्य को बीमारी में मामूली इलाज कराना और मरने पर अन्त्येष्टि कर्म का खर्च देना। इन सुविधाओं के लिए सदस्य को नियमित रूप से समय समय पर चंदा देना पड़ता था। एक शब्द में बात यह है कि पारस्परिक सहायता समाज बीमे की रीति का पालन कर रहे थे। शुरू में उनकी कार्य-

पद्धति, जैसी कि आशा की जा सकती है, बहुत ही अविकसित थी और यह अक़सर होता था कि जो फ़ायदे देने का वचन दिया गया था वे न मिलते थे। परन्तु धीरे धीरे इनको सरकारी देखरेख में लाया गया। इनके नियमों को मान्यता प्राप्त करने के लिए सरकार को भेजना आवश्यक हो गया। उन पर यह प्रतिबंध लगाया गया कि वे पेन्शन जैसा कोई हितलाभ न दें जिसके लिए विशाल स्थायी कोश का संचय और जीवनांकिक (Actuarial) हिसाब आवश्यक है। उनके हिसाब किताब की लेखा परीक्षा भी आवश्यक कर दी गई। इस तरह से उनका उत्तरदायित्व मर्यादित कर के सरकार ने यह परिस्थिति ला दी कि इन समाजों द्वारा वचनपूर्ति की संभावना काफ़ी बढ़ गई। परन्तु जैसे ही किसी पारस्परिक सहायता समाज की व्यवस्था व्यवहारिक रीति से की जाती है उसमें और पारस्परिक बीमा कंपनी में जिसके ग्राहक ही उसके हिस्सेदार होते हैं, कोई विशेष भेद नहीं रह जाता। बूढ़े या अशक्त नये सभासद लेते समय वह भी दक्षता रखने लगती है। वह यह भी ध्यान में रखती है कि ऐसे व्यक्ति जिनकी आमदनी कम है या जिनकी नौकरी पक्की नहीं है आवश्यक चंदा नहीं दे सकते या उसे निभा नहीं सकते।

मज़दूर संघ (Trade Unions), खासकर इंगलिस्तान में, अपने सभासदों के हितसंरक्षण करने का मुख्य कर्त्तव्य संभालने के अतिरिक्त, अक़सर पारस्परिक सहायता समाज का काम भी करते थे। इस रूप में उनका खास महत्वपूर्ण कार्य बेकारी हितलाभ देना रहा और इस क्षेत्र में वे ही अगुआ रहे। खासकर सरकारी कामदिलाऊ दफ्तर (Employment Exchanges) खुलने के पहले मज़दूर संघ ही यह जानने की सब से अच्छी परिस्थिति में था कि उसके व्यवसाय में कौनसी नौकरियां खाली हैं और उसके सदस्यों में से किसकी क्या वैयक्तिक और व्यवसायिक योग्यता है। परन्तु हितलाभ की मांग किसी भी विशिष्ट व्यवसाय की तेज़ी मंदी पर अवलंबित रहा करती थी न कि औद्योगिक क्षेत्र के नौकरियां मिलने के सामान्य स्तर पर। यह सामान्य स्तर स्वभावतः ही किसी एक जगह के एक व्यवसाय के मुकाबले कहीं अधिक स्थायी रहता है। परिणाम-स्वरूप मज़दूर संघ, जोकि सदस्यों के चन्दों पर ही अवलंबित रहा करते थे, तुलनात्मक दृष्टि में, अल्प-काल तक ही हितलाभ दे पाते थे और कठिन समय आने पर उनकी निधि बिलकुल ही समाप्त हो जाती थी।

यह देख कर कि पारस्परिक सहायता समाज जो कि मज़दूर खुद चलाते थे, निःशंकता से पेन्शन या जीवन बीमे की व्यवस्था नहीं कर सकते थे १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यूरोप की अनेक राज्यसरकारों ने राज्य का आश्वासन देकर बीमा दफ्तर स्थापित किये जो कि कम आमदनी वाले लोगों को इस प्रकार का बीमा करवाने की सुविधा देते थे, जैसे इनके बीमे की किश्त लेने का इंतजाम डाकखानों के द्वारा करवा देना। परन्तु जापान के अतिरिक्त और किसी देश में इन सुविधाओं का लाभ न उठाया जा सका क्योंकि एक तो इनके विषय में जानकारी फैलाई न गई और दूसरे जनता के जिस वर्ग के लिए ये दफ्तर स्थापित किए गये थे वे उनसे लाभ उठाने में या तो असमर्थ थे या अनेच्छुक थे।

इस परिस्थिति में एक अंग्रेजी बीमा कंपनी ने साहसी भावना से श्रमजीवी वर्ग के लिए एक नये प्रकार के जीवन बीमे का आविष्कार किया। इस बीमापत्र को, जो कि बीमेदार के अन्त्येष्टि कर्म के खर्च लायक रकम ही दिला सकता था, बेचन के लिये और उसके प्रति छोटा सा साप्ताहिक चंदा वसूल करने के लिए एजेंटों की एक सेना की सेना नियुक्त की गई। इंग्लैंड में, फिर अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र में और उसके बाद यूरोप में इस बीमायोजना की बहुत नकल हुई और इस बीमापत्र को—जिसे औद्योगिक बीमा-पत्र कहा जाने लगा—बड़ी सफलता प्राप्त हुई। करोड़ों बीमापत्र बेचे गये। कभी कभी तो कुटुंब के हरएक व्यक्ति के नाम एक या अनेक बीमापत्र खरीदे जाते थे यहां तक कि कई गृहस्थ अपनी औक़ात से ज्यादा बीमापत्र ले बैठते थे। फिर ऐसा समय आ जाता था जब किश्तें न निभायी जा सकती थीं और बीमापत्र रद्द हो जाते थे।

बीमेदार के दृष्टिकोण से जीवन बीमा और उसकी संबन्धित शाखाएं जो व्यवसायिक तत्वों पर चलाई जाती हैं कभी भी अपने आपको सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकताओं के अनुकूल न बना सकीं। यह समझ में आना सरल है। जीवन बीमा एक बड़ा प्रतिष्ठित व्यवसाय है जो कानून से निश्चित किये हुए आर्थिक सुदृढ़ता के विश्वासनीय और बीमा गणना के आधार पर चलाया जाता है परन्तु ज्यादातर इसका उद्देश्य मुनाफा कमाना है, साथ में ही सामाजिक सुरक्षा भी बढ़ जाती है। यदि, जैसा कि कभी हो भी सकता है, सामाजिक सुरक्षा योजना के मुकाबले बीमा कंपनी इतनी सुव्यवस्थित हो कि मुनाफे की गुंजायश रखकर भी वह वही सुरक्षा कम चंदे में स्वीकार कर ले तो भी सामाजिक सुरक्षा कार्य के लिए उसका उपयोग करने में दुविधा होगी। बीमा कंपनियां ग्राहक को अपनी ओर खींचने के लिए आपस में स्पर्धा करती हैं और सावधानी की मर्यादा में अधिक से अधिक सुविधाएं देने का प्रयत्न करतीं हैं। सब से अधिक सुविधाएं उसी को मिलेंगी जिसके जीवन में सब से कम खतरा है, जिसकी उम्र, तन्दुरुस्ती और पेशा ऐसे हैं कि उसे हितलाभ की मांग करने की सम्भावना बहुत कम है; न कि उसको जिसका जीवन बहुत या औसत खतरे का भी है। सच तो यह है कि बीमा कंपनियां, चाहे वे मुनाफे के लिये चलाई जाती हों या पारस्परिक हों, खतरे वाले सौदों से दो हाथ दूर ही रहना चाहती हैं और यह प्रयत्न करती हैं कि उनकी ग्राहकी चुने हुए अच्छे लोगों में ही बनी रहे। यह स्पष्ट है कि सामाजिक सुरक्षा का संगठन इस प्रकार नहीं हो सकता। फिर भी बीमा कंपनियों को इस कार्य में महत्व-पूर्ण भाग लेना है और वह सामाजिक सुरक्षा से दिये हुए संरक्षण के पूरक के रूप में; क्योंकि सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत जो हितलाभ मिलते हैं वे जनता के समृद्ध वर्गों को कम लगते हैं। आज उनकी सेवा का आश्रय बड़ी पेन्शन लेने के लिये विशेषकर लेना पड़ता है। शास्त्रीय दृष्टि से यह नाजुक काम है और इसे संभालने के लिये वे सर्वथा योग्य हैं। सच तो यह है कि पिछले कुछ दशकों में बीमा कंपनियों ने वह पेन्शन व्यवस्था अपने हाथ में ले ली है जो पहले मालिक लोग अपने कर्मचारियों के लिये किया करते थे और उसे उन्होंने और मजबूत आधार पर खड़ा कर दिया है। साथ ही

पश्चिमी जगत में बीमा कंपनियों ने हज़ारों मध्यम या छोटे परन्तु समृद्ध व्यवसायों को सामूहिक बीमापत्र भी बेचे हैं जिनके अन्तर्गत उनके कर्मचारियों को पूरक पेन्शन देने का उन्होंने जिम्मा लिया है।

*

* *

कमाई में रुकावट आने पर या उसके बिलकुल बंद हो जाने पर श्रमजीवी परिवार को, कंगाली कानून (poor laws) का आश्रय लिये बिना, निर्वाह के साधन मिलते रहें इसके लिये लगभग सन् १८८० तक जिन तरीकों को आज़माया गया था उनका हमने दिग्दर्शन कर लिया। बचत और बीमा—चाहे वह व्यवसायिक हो या पारस्परिक —हमेशा एक ही कारण से काम न आये। गरीबी और अदूरदर्शिता साथ साथ ही रहते हैं। अगर आप बहुत गरीब हैं तो आप का सारा ध्यान आज से कल तक जीवित रहने की समस्याओं को सुलझाने में लगा रहेगा; आप दूर भविष्य का नहीं सोच सकते। अगर सोच भी पाये तो भी अपनी मज़दूरी को खर्चों में बांटने में, आज की निश्चित ज़रूरतें भविष्य की सम्भावित जरूरतों से पहले आती हैं। १९वीं शताब्दी की भूल थी—उसका सरल आशावाद—कि श्रमजीवी वर्ग की नीची श्रेणी के लोग भी अपने ऊपर आ सकने वाली मुसीबतों का प्रतिकार स्वयं कर सकते हैं। फिर भी पारस्परिक सहायता समाजों द्वारा बचत और बीमे का फायदा एक अल्पांश ने लिया—जिसकी संख्या भी करोड़ों होगी। ये मुख्यतः निपुण कारीगर थे जिनमें, अपने वर्ग में मिली हुई अपनी सफलता के अनुभव से, यदि स्वयं के लिए नहीं तो कम से कम बाल-बच्चों के लिये, अच्छे दिन आने की आशा और आकांक्षा जाग उठी थी।

सामाजिक बीमा

लगभग १९वीं शताब्दी के अंत में यूरोप महाद्वीप के कई देशों ने, यह विश्वास होने पर, कि अनिपुण मज़दूर स्वयं ही अपनी सामाजिक सुरक्षा का प्रबन्ध नहीं करेंगे, चाहे नाखुशी से ही क्यों न हो, अपनी इच्छा से की हुई बचत को सार्वजनिक धन से सहायता देने का निश्चय किया। कुछ देशों में इन उपक्रमों के परिणाम अच्छे हुए परन्तु दूसरे देशों में यह प्रयत्न छोड़ दिये गये। डेनमार्क और स्विटज़रलेन्ड में आज भी सामाजिक सुरक्षा का बीमा री विभाग सरकारी सहायता पर चलने वाले पारस्परिक सहायता समाजों द्वारा चलाया जाता है और अधिकांश जनता इसके हितलाभ, जो मुख्यतः दवादारू के रूप में दिये जाते हैं, पा रही है। इसी प्रकार डेनमार्क और स्वीडन में (सरकारों से) भारी आर्थिक सहायता पाने वाले मज़दूर संघ, ऐच्छिक बेकारी बीमे का प्रबन्ध करते चले आ रहे हैं। बीमे द्वारा सामाजिक सुरक्षा की यह रीति आकर्षक

है क्योंकि यह व्यक्ति और राज्य के सच्चे सहयोग पर आधारित है और इसे अच्छी तरह चलाने की ज़िम्मेदारी में दोनों का हिस्सा है। अपने सरल रूपों में यह योजना अनिपुण मज़दूरों को आकर्षित नहीं कर पाती क्योंकि वह अपना भाग या तो निभा नहीं सकते या निभाना नहीं चाहते। परन्तु ऐसे लोगों में जो काफी सुशिक्षित हैं और जिनकी आमदनी अच्छी है—जैसा कि डेनमार्क में हैं—इस तरीके से श्रमजीवी लोगों के एक बड़े भाग को सामाजिक सुरक्षा दिलाई जा सकती है। इसमें सरकारी खजाने से बहुत सहायता देनी पड़ती है और वह भी सावधानी से योग्य मात्रा में ऐसे दी जाती है कि उनके सदस्यों में से कम भाग्यशाली को पहुंचे।

सन् १८८३ और १८८९ के बीच, बिस्मार्क के मार्गदर्शन में जर्मन साम्राज्य सरकार ने सामाजिक बीमा की पहली पद्धति निर्माण की। यह अपने क्षेत्र में ३० साल तक अद्वितीय रही। प्रश्न उठ सकता है कि जर्मनी ने यह सबक़ कैसे ऐसी जल्दी सीख लिया कि सामाजिक अरक्षा का प्रश्न न तो कारखानेदारों की जिम्मेदारी के तत्व से हल हो सकता है और न पारस्परिक सहायता समाजों से। सच यह है कि, आर्थिक उदारतावाद और आर्थिक स्वतंत्रतावाद के सिद्धांतों से, जर्मनी, पश्चिमी यूरोप के अन्य देशों के बराबर, बंधा हुआ न था बल्कि उस पर अधिकारयुक्त और पैत्रिक राज्यसत्ता की प्रशियन परंपरा का असर चढ़ा हुआ था। सन् १८५० से ही अनेक जर्मन राज्यों ने म्युनिसपैलिटियों को ऐसे बीमारी फंड स्थापित करने दिये थे जिनमें मज़दूरों को चंदा देने को बाध्य किया जा सकता था। अतः अनिवार्य बीमे का सिद्धांत उपयोग में लाया जा रहा था परन्तु पूरा चंदा स्वयं बीमेदार ही देता था। बीमारी के बीमे में कारखानेदारों के चन्दे का प्रारम्भ किसी व्यापक सिद्धान्त के आधार पर नहीं, वरन् इसलिये हुआ कि औद्योगिक दुर्घटनाओं से संबंधित असमर्थता के पहले तीन महीने तक हितलाभ, सुविधा के लिए, बीमारी के बीमे के अन्तर्गत दिया जाता था। और इस हितलाभ की ज़िम्मेदारी कारखानेदारों की मानी ही जाती थी। इस पद्धति की शुरुआत तीन मन्ज़िलों में की गई। सन् १८८३ में बीमारी के बीमे में, सन् १८८४ में औद्योगिक दुर्घटना के बीमे में और सन् १८८९ में असमर्थता तथा बुढ़ापे के बीमे में और यह तीनों औद्योगिक श्रम वर्ग पर अनिवार्य रूप में लागू थे। इस प्रकार इस पद्धति को क्रमशः शुरू करके और बीमारी बीमे की व्यवस्था विद्यमान पारस्परिक सहायता समाजों को, व्यवसायिक दुर्घटना के बीमे की व्यवस्था कारखानेदारों के संघों को और पेन्शन बीमे की व्यवस्था प्रांतों के सुपुर्द करके जर्मन सरकार ने विरोध को कम और शांत किया।

इस से यह विदित होगा कि जर्मनी द्वारा निकाली हुई सामाजिक बीमा पद्धति में पहले की सभी पद्धतियों के लक्षणों का समावेश था। मजदूरों की पारस्परिक सहायता निधि को उन का चंदा, कारखानेदारों की दुर्घटना बीमा कंपनी को दी जाने वाली किश्त, और ऐच्छिक बचत को सरकारी आर्थिक सहायता, सभी का जर्मन पद्धति की आर्थिक व्यवस्था में स्थान है। और फिर, असमर्थता पेन्शन के तो दो भाग होते हैं—एक वह बुनियादी भाग जो यथार्थ में बीमे के रूप का है और जो उसे पाने की शर्तें

पूरी करने वाले हर व्यक्ति को मिलता है और दूसरा भाग जो बीमेदार के चंदे के परिमाण में मिलता है और जिसे बचत माना जा सकता है। साथ ही हर पक्ष का इस पद्धति के प्रबन्ध में भाग है और अनुशासित परन्तु फिर भी पहचाने जाने वाले पारस्परिक सहायता समाज, अपना काम करते हैं। कर्मचारियों को, या कम से कम नगरवासी मजदूरों को, चाहे वे निपुण हों या अनिपुण जवान हों या प्रौढ़, पुरुष हों या स्त्री, बलवान हों या निर्बल, सभी को अनिवार्य बीमे के अन्तर्गत लाने का परिणाम यह हुआ कि जिस समुदाय से गरीबों के कानूनों से आश्रय पाने वालों के आने की सम्भावना थी वे अब ऐसी सामाजिक सुरक्षा पद्धति के अन्तर्गत आ गये जो ठीक समय पर उनकी सहायता करेगी और उन्हें दरिद्रता से बचायेगी। स्वभावतः श्रमजीवियों के निचले और आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर वर्ग को यह सुरक्षा तभी दी जा सकी जब कर्मचारियों के चन्दे से दुगुनी या तिगुनी आय के और साधन इस योजना में समाविष्ट किये गये।

जर्मनी का अनुकरण आस्ट्रिया ने शीघ्र ही किया। ३०–४० साल बाद इंग्लैंड ने, यूरोपीय महाद्वीप के अन्य देशों ने, रूस और जापान ने भी इसका अनुकरण किया। सन् १९३० के बाद आई हुई घोर मंदी के बाद सामाजिक बीमे का प्रसार दक्षिण अमेरिका में और अमेरिका के संयुक्त राज्य एवं कनाडा में भी हुआ। परन्तु एशिया के महाद्वीप में सामाजिक बीमे को राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की राह देखनी पड़ी है। यथार्थ में सामाजिक बीमे के आविष्कार ने ही वह कला दी है जिससे सामाजिक सुरक्षा के ध्येय तक धीरे धीरे पहुंच पाना सम्भव हुआ है : दूसरे मार्ग या तरकीब या तो अब उपयोग में नहीं हैं या वे इसी से निकले हुये हैं या इसके सहायक हैं।

सामाजिक सहायता

स्वाभिमानी नागरिकों को अपने नागरिक अधिकार गंवाकर कंगाली कानूनों की शरण में न जाना पड़े इस उद्देश्य से तरतीबवार कोशिश करते हुए डेन्मार्क को पिछली शताब्दी के बिल्कुल अंत में सामाजिक सुरक्षा का दूसरा मार्ग मिला। जिन्होंने आजीवन परिश्रम करके देश को समृद्ध बनाया उनका वृद्धावस्था में इस प्रकार अपमानित होना डेनमार्क के जनमत को बहुत खटकने लगा। परिणामस्वरूप, सामाजिक सहायता नामक नई पद्धति का आविष्कार हुआ। इसके अन्तर्गत नियत आवश्यकता पड़ने पर, जो प्रार्थी की गलती से उत्पन्न हुई नहीं मानी जाती थी, सार्वजनिक निधि में से हितलाभ कानूनी हक के बतौर दिये जाते थे। यह मार्ग मुख्यतः स्केन्डेनेविया और अंग्रेजी बोलने वाले देशों को पसन्द आया। इस प्रकार प्रबन्ध सबसे पहले बुढ़ापे के खतरे का हुआ। परन्तु धीरे धीरे चंदे बिना दिये जाने वाले अपंग, उत्तरजीवी और बेकार लोगों के लिए भी हितलाभ शुरू किए गये। अन्त में ऐसे अनेक हितलाभों को एकत्र करके सामाजिक सुरक्षा की एक संपूर्ण पद्धति का निर्माण न्यूज़ीलैंड में हुआ।

कुटुंब भत्ता

जिन खतरों का प्रतिकार अभी तक सामाजिक बीमा और सामाजिक सहायता से किया गया था उनमें, फ्रांस और बेल्जियम के कारखानेदारों की सूझ से, एक और खतरा जुड़ गया अर्थात वह बड़ा दीर्घकालीन खर्च जो सन्तान के जन्म से कुटुंब के बजट पर पड़ जाता है। यह नया खतरा पहले से स्वीकृत खतरों से असंगत था क्योंकि कम से कम समाज के सुशिक्षित वर्ग में सन्तान प्राप्ति कुछ हद तक ऐच्छिक है और आरम्भ में इसे बीमारी या बेकारी जैसे दुर्भाग्यों के साथ जोड़ देना विचित्र लगता था। सच तो यह है कि कौटुम्बिक हितलाभ का आरंभ जो कि मुख्यतः हर बच्चे के लिये साप्ताहिक भत्ते के रूप में दिया जाता है—या तो बोनस के रूप में सन्तानोत्पत्ति को प्रोत्साहन देने के लिये उन देशों में हुआ, जहां जन्म संख्या का परिमाण अत्यधिक नीचे गिर चुका था या इस प्रकार केवल, उन कुटुम्बों की आय बढ़ाकर, जिनमें छोटे बच्चे हैं, मज़दूरी बढ़ाने की न्यायोचित मांग को टालने के लिये हुआ; या इस विचार से हुआ कि गरीब कुटुम्बों में बालकों का भरण पोषण उचित प्रकार से हो सके और आगामी पीढ़ी को उन्नति के अवसर समानता से मिल सकें। असंगतता होते हुए भी, कुटुम्ब भत्ता अब सामाजिक सुरक्षा पद्धति में साधारणतः समाविष्ट हो गया है क्योंकि इसमें और दूसरे आर्थिक हितलाभों में एकसूत्रता लानी होती है और बहुधा इसकी अर्थ-व्यवस्था और वितरण भी किसी मौजूदा सेवा संगठन के द्वारा किये जाते हैं। सामाजिक सुरक्षा आन्दोलन के बिस्मार्क द्वारा ठहराये हुए सिद्धांतों और खड़े किये हुए ढांचे के बाहर जाना संभवतः और किसी नवीनता की अपेक्षा कुटुम्ब-भत्ते की शुरूआत से ही होता है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा

पिछले दस बीस वर्षों में सामाजिक सुरक्षा के हथियारों में एक और प्रमुख नवीनता का समावेश हो गया है। इसे राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा कहते हैं और कम से कम सिद्धांत में तो इसका दावा है कि यह हरएक को मुफ्त में सम्पूर्ण चिकित्सा की सुविधाएं देती है। ऐसा कहा जा सकता है कि इसकी उत्पत्ति बीमारी बीमे के डाक्टरी हितलाभ को, सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा हस्पतालों में दी जाने वाली मुफ्त या करीब करीब मुफ्त चिकित्सा से मिलाने से हुई। इसका आरम्भ सबसे पहले स्वतन्त्र रूप से सोवियत रूस, न्यूज़ीलैंड और इंग्लैंड में हुआ, अब यह सभी "लोक प्रजातंत्र राज्यों" में पाई जाती है और इसका विस्तार क्रमशः अन्य देशों में भी हो जाने की सम्भावना है।

सामाजिक सुरक्षा और अंतर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर

इस पाठ के शुरू में हमने मंत्रमुग्ध कर देने वाले शब्द "सामाजिक सुरक्षा" का अर्थ निश्चित करना तय किया था। इस सम्बन्ध में कुछ मोटी बातें हम बता ही चुके हैं।

अब आप यह समझ सकते हैं कि सामाजिक सुरक्षा उन व्यापक और सफल योजनाओं से प्राप्त परिणाम हैं—जो कि बीमारी, बेकारी या बुढ़ापे में और मृत्यु के बाद आमदनी बंद हो जाने के कारण उत्पन्न होने वाले आर्थिक संकटों से जनता या उसके काफी बड़े भाग के रक्षणार्थ और उसी जनता को आवश्यकता पड़ने पर डाक्टरी इलाज दिलाने को और छोटे बच्चों का पालनपोषण करने वाले कुटुम्बों को आर्थिक सहायता देने के लिये बनाई गई है। इस विस्तार का पहला कदम लोक स्वास्थ्य प्राधिकारों द्वारा डाक्टरी इलाज की व्यवस्था की जिम्मेदारी ले लेना था यद्यपि अभी भी यह सेवायें मुफ्त में सिर्फ़ बीमेदारों को और उनके समान दूसरे समूहों को ही मिलती है (जैसे कि सोवियत रूस और उससे संबन्धित देश, और चिली में)। दूसरा कदम, जो न्यूज़ीलैंड और इंग्लैंड में लिया जा चुका है, दुरुपयोग बचाने के लिये नाममात्र कीमत लेकर, सारी जनता को सम्पूर्ण इलाज दिलाता है।

यह प्रश्न उठ सकता है कि आखिर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर इन शब्दों का उपयोग कैसे कर बैठा और जो अर्थ हमने अभी बतलाया है वह इन्हें कैसे दिया गया। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें कम से कम संक्षेप में सामाजिक बीमा सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिमानों के निर्माण में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संस्था के कार्य को याद करना होगा। सन् १९२५ से १९३४ तक के दस वर्षों में इसने मज़दूरों की क्षतिपूर्ति, बीमारी बीमा, पेन्शन बीमा और बेकारी बीमा सम्बन्धी कन्वेन्शन पास किये और इस क्षेत्र में सिद्धांत प्रवर्त्तन में नेतृत्व पाया। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर ने सुरक्षित जनवर्ग और सुरक्षा योग्य खतरों की सूची के विस्तार में और आश्वासित हितलाभों की क्षमता सुधारने में अपना प्रभाव डाला। सन् १९३५ में अमरीकन संयुक्त राज्य ने अपने सामाजिक सुरक्षा अधिनियम (Social Security Act) के अन्तर्गत वृद्धावस्था, मृत्यु और बेकारी की जोखिम के प्रतिकार के लिये सामाजिक बीमा-सदृश्य योजनाएं चलाईं और साथ ही अपने भिन्न भिन्न राज्यों को उनकी अंशदान-रहित पेन्शन योजनाओं को अपने केन्द्रीय कोश से आर्थिक सहायता देने की व्यवस्था की। अर्थात् इस अधिनियम में सामाजिक बीमा और सामाजिक सहायता दोनों का मेल था। इस अधिनियम के शीर्षक में उपयोग किये हुए यह रोचक शब्द बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुए और इनका उपयोग न्यूज़ीलेंड के उस अधिनियम के शीर्षक में भी हुआ जिसके अन्तर्गत अनेक मौजूदा और नये सामाजिक सहायता हितलाभ एक सुसम्बद्ध कानून में एकत्रित किये गये और इनके खर्च के लिये एक विशेष सर्वव्यापी आय कर लगाया गया। न्यूज़ीलेंन्ड की यह योजना दूसरा महायुद्ध शुरू होने के कुछ ही पहले स्थापित हुई थी और इसलिये यह अन्य देशों का ध्यान एकदम आकर्षित न कर पाई। परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर इसकी अर्थपूर्णता से बहुत प्रभावित हुआ और जहां तक हो सका इस का ज्ञापन करता रहा। साथ ही सन् १९४१ के अटलांटिक चार्टर में सामाजिक सुरक्षा का उल्लेख आने से यह नाम आधे विश्व में प्रचलित हो गया। यथार्थ में मनुष्य मात्र की आकांक्षाओं में से सब से गहरी और सर्वव्यापक आकांक्षा का यह नारा बन बैठा।

लार्ड बीवरिज ने इस दफ्तर से सलाह ली थी और उदारता पूर्वक इस की सहायता का उल्लेख भी किया। सामाजिक बीमा और सामाजिक सहायता की प्रगति जिस दिशा में थी, उस पर से इस दफ्तर ने सामाजिक सुरक्षा की जो कल्पना बांधी वह इस प्रकार थी :—

उन सारी घटनाओं में व्यापक और एक सूत्री रक्षण जिनके कारण, अपना दोष न होने पर भी, स्थायी या अस्थायी रूप में आमदनी बंद होती है; डाक्टरी इलाज और कुटुम्ब भत्ता; सारे वयस्क लोग और उनके अवलंबितों तक, उनकी आवश्यकतानुसार, इस संरक्षण का विस्तार;

ऐसे हितलाभों के आश्वासन जो रकम में साधारण होने पर भी समाज-मान्य जीवन स्तर कायम रखने के लिए काफी हों और बतौर कानूनी हक़ के दिये जायें;

ऐसे तरीकों से वित्तपोषण जिनमें रक्षण किये जाने वालों को मिलने वाले हितलाभों की कीमत की कल्पना बनी रहने पर भी, धनी निर्धन, स्त्री पुरुष, काम करने वाले और बहुत वृद्ध या बहुत छोटे होने से काम न करने वाले, सशक्त और अशक्त, सभी की परस्पर निर्भरता का सिद्धांत अधिकतम उपयोग में लाया जाय।

सन् १९४४ की अन्तर्राष्ट्रीय श्रम परिषद की फिलाडेल्फिया की बैठक में, जहां सब सदस्य राज्य श्रम और सामाजिक विधान क्षेत्र में अपना युद्धोत्तर कार्यक्रम निश्चित करने को एकत्र हुए थे, इन नीतियों का समावेश आय सुरक्षा और डाक्टरी सुश्रूषा पर की हुई सिफारिशों में किया गया।

पांच साल बाद अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर की प्रशासन समिति ने निश्चय किया कि फिलाडेल्फिया सिफारिशों को निश्चित कानूनी बन्धन निर्माण कर सकने वाले कन्वेन्शनों में परिणित कर देने का समय आ गया है। राज्य सरकारों से पूर्ण परामर्श और दो वार्षिक अधिवेशनों में पूर्ण चर्चा के बाद परिषद् ने सन् १९५२ में सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कन्वेन्शन अंगीकार किया जिसका कि हम पहले भी उल्लेख कर चुके हैं। यह उन नीतियों के महत्तम सम्प्तवर्तक का प्रतीक है जिनके पालन के लिये सारे देश वचनबद्ध होने को तैयार हैं चाहे वे अधिक औद्योगिक प्रगति कर चुके हों या पिछड़े हुए हों—अर्थात् अमीर हों या गरीब हों। अमीर देश सामाजिक सुरक्षा के जिस स्तर पर पहुंच चुके हैं उस के मुकाबले या प्रतिमान हलका जान पड़ता है परन्तु पिछड़े हुए देशों के लिए यह व्यवहार्य लक्ष्य के रूप में उपयोगी सिद्ध होता है।

आगामी पाठों में हम सामाजिक सुरक्षा के कानून और उन की प्रशासन व्यवस्था के हर मुख्य अंग का अध्ययन, अक्सर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संस्था की उपर्युक्त कन्वेन्शन और सिफारिशों का उल्लेख करते हुए, करेंगे। हमें यह दिखाई देगा कि हरएक देश अपनी सामाजिक सुरक्षा के प्रश्नों को अपने तरीके से हल करता आया है, आदर्श और सम्भाव्य, तात्विक और व्यवहारिक, तथा इसमें भागीदारों के परस्पर विरोधी आर्थिक हितों में समझौता करता आया है परन्तु फिर भी इन सिफारिशों के मुख्य सिद्धान्तों को पालने की ओर बढ़ता जाता है।

पहले पाठ पर प्रश्न

१. संक्षेप में बताइये कि सामाजिक सुरक्षा हासिल करने के तरीकों की दृष्टि से इनमें, क्या कमी थी :—

व्यक्तिगत बचत
कारखानेदार की ज़िम्मेदारी
निजी बीमा

२. विस्मार्क के सामाजिक बीमा विधानों की कौन सी सूरतें ऊपर लिखे तरीकों की याद दिलाती हैं और उसने कौन से नये अंग जोड़े जिससे वे सफल हुए ।

३. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संस्था की सामाजिक सुरक्षा संबन्धी सिफारिशों में निम्न-लिखित विषयों के बारे में कौन से साधारण प्रतिमान ध्वनित होते हैं :—

निर्बन्ध योग्य घटनाएं,
सुरक्षा योग्य व्यक्ति,
हितलाभ स्तर,
वित्तपोषण ।

—✦✦—

पाठ २

सुरक्षित व्यक्ति

हम पहले पाठ में देख चुके हैं कि १९वीं शताब्दी के अन्त के लगभग जर्मनी ने सामाजिक बीमे का आविष्कार किया और डेनमार्क ने अंशदान रहित पेन्शनों का—जो सामाजिक सहायता का एक तरीका है। सामाजिक सुरक्षा तक पहुंचने के यह दो रास्ते हैं—एक का निकास निजी बीमे से है और दूसरे का गरीबों के कानून से। पहले का उद्देश्य कर्मचारीवर्ग की और दूसरे का दीन-दरिद्री नागरिकों की सुरक्षा करना है। अत्यन्त आधुनिक विकास में, एक दूसरे के विशिष्ट गुणों को ग्रहण करते हुये, ये रास्ते मिल जाते हैं। इस पाठ में हम उन सिद्धान्तों और व्यवहारिक कारणों का विचार करेंगे जिनके आधार पर यह निश्चित हुआ है कि जनता के किस वर्ग को सामाजिक बीमे द्वारा सुरक्षित किया जाय या जिनके कारण कुछ देशों ने सामाजिक सहायता या उन सर्वव्यापी सामाजिक सुरक्षा सेवाओं को अधिक पसंद किया, जो वर्ग व्यवस्था के भेद भाव भुला कर, सारी जनता को सुरक्षा दिलाते हैं। सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कन्वेन्शन के अनुसार समाजिक बीमा या सामाजिक सहायता—दोनों में से किसी एक से काम चल सकता है। यह कन्वेन्शन इस आशय से बनाया गया है कि इनका पालन कम उन्नत देशों की शक्ति के बाहर न हो, और यह आशय उन खण्डों में सबसे अधिक स्पष्ट होता है जहां सामाजिक बीमे के हरएक विभाग की न्यूनतम मर्यादा ठहराई गई है। इन देशों को बड़े शहरों के अतिरिक्त दूसरी जगह सामाजिक बीमा लागू करने में बड़ी कठिनाई होती है; गांवों में और कस्बों में डाक्टरी सुविधाएं कम होती हैं और दस पांच से अधिक कर्मचारी रखने वाले उद्योग भी विरले ही होते हैं। इसलिये यह कन्वेन्शन इतना ही कहता है कि कम से कम आधी कर्मचारी जनता को नियत प्रतिमान के अनुसार हितलाभ दिये जायें। सामाजिक सहायता, जिसके अन्तर्गत समस्त जनता हितलाभ की अभिकारी बन सकती है और जिसका खर्च कर लगाकर ही पूरा हो सकता है, अक्सर कम उन्नत देशों की आर्थिक शक्ति के बाहर होती है।

कर्मचारियों का सामाजिक बीमा

सामाजिक बीमे की कल्पना श्रमिकों की रक्षा के लिये हुई थी अर्थात उस वर्ग के लिए जो, नौकरी की अनिश्चितता, संपत्ति या बचत के अभाव, और विस्तृत संबन्धियों या पड़ोसियों के न होने के कारण दरिद्रता का सबसे आसान शिकार है और इस वर्ग में

भी कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की अवस्था सब से अधिक कमज़ोर है। दूसरी ओर सुशिक्षित और यथेष्ट सम्पन्न मालिकों का छोटा वर्ग था जो बड़े बड़े उद्योगों की व्यवस्था करता था और जो सामाजिक बीमे की प्रशासनिक और आर्थिक उलझनों में आने के लिये उपयुक्त था।

बीमान्वित कर्मचारी वर्गों की संख्या का विस्तार बराबर होता रहा है और इसके दो कारण हैं। पहला कारण यह है कि जिन उद्योगों के कर्मचारी बीमा योग्य माने गये हैं उनकी श्रेणी का विस्तार होता गया है। दूसरे, "कर्मचारी" की परिभाषा अधिक व्यापक होती गई है।

उद्योगों का क्षेत्र

अधिकांश देशों में जहां सामाजिक बीमा प्रचलित है, यह आर्थिक कार्यक्षेत्र की हर-एक शाखा के छोटे बड़े सभी उद्योगों के कर्मचारियों पर लागू नहीं किया जाता। कुछ औद्योगिक वर्गों को छोड़ देने के कारण यह हैं कि राजनैतिक या प्रशासनिक दृष्टि से उन के मालिकों पर कानून का पालन बाध्य नहीं किया जा सकता या संबन्धित कर्मचारी पहले ही विशेष योजनाओं द्वारा काफी सुरक्षित हैं।

मजदूरों की क्षतिपूर्त्ति के कायदों के क्षेत्र की परिभाषा का, सामाजिक बीमा नियोजकों पर, आरम्भ में काफी प्रभाव पड़ा। परिणामस्वरूप उन्होंने मुख्यत: कारखानों, खदानों, रेल और सामान्यत: ऐसे ही उद्योगों पर जो काफी बड़े परिमाण पर चल रहे थे, या जो कर्मचारियों के लिये खतरनाक विदित थे, ध्यान दिया। उस आर्थिक कार्यक्षेत्र का केन्द्र जिसमें सामाजिक बीमा कानूनों ने पहले पदार्पण किया "औद्योगिक उपक्रम" था और ये कानून बहुधा सिर्फ व्यवसायिक चोट, बीमारी और प्रसूति की घटनाओं में ही रक्षा करते थे।

छोटे उद्योग इसलिये छोड़ दिये जाते थे कि मालिकों के इस बहुसंख्यक वर्ग पर सख्ती करना कठिन था और संभवत: वे सामाजिक बीमे को अपने ऊपर चालू होने का शान्तिमय विरोध भी करते। परन्तु यह भी स्पष्ट है कि ऐसी प्रथा जिसके कारण मजदूरों की संख्या में एक व्यक्ति के कम या अधिक होने पर किसी उद्योग का सामाजिक बीमे में शरीक होना या न होना निर्भर रहे और उस उद्योग के सारे कर्मचारी एक साथ योजना के अंतर्गत हो जावें या उसमें से निकल जावें एक परेशानी की बात है जिसे, प्रशासनिक दृष्टि से, योजना के लोकमान्य होते ही, दूर करना आवश्यक है।

व्यवहारिक दृष्टि से उद्योग और व्यवसाय में अन्तर रखना सरल नहीं है। इसके लिए खतरे की कसौटी काफी नहीं है क्योंकि अनेक प्रकार के व्यवसायिक क्षेत्रों में भी दुर्घटना की संभावना उतनी ही या उससे अधिक है जितनी कि निर्माण क्षेत्र की कुछ शाखाओं में है। हर प्रकार के वाहन व्यवसाय और जहाज़ से माल उतारने, चढाने के कामों में ही नहीं, बल्कि दूकानों में भारी माल उठाने रखने में भी खतरा है और

इसी प्रकार कसाई के पेशे में और ऊंची खिड़कियां साफ़ करने में भी। इसप्रकार व्यवसाय की ख़तरनाक शाखाओं को भी अनिवार्य बीमे के अन्तर्गत जल्दी ही लाना पड़ा। दफ्तरों में दुर्घटना कदाचित ही होती है—शायद घर में होने वाली दुर्घटनाओं से भी कम—परन्तु मालिकों पर इन की जिम्मेदारी डालने के उपाय को एक बार सिद्धांत का रूप मिल जाय तो उसका सारी नौकरियों पर व्यापक होना अनिवार्य हो जाता है और उस के साथ ही दूसरे ख़तरों का भी सामाजिक बीमे में समावेश भी हो जाता है।

फिर भी कृषि-क्षेत्र में पदार्पण करने की कठिनाइयों के सामने अनेक देशों में सामाजिक बीमे को हिचकिचाना पड़ा है—विशेषत: उन देशों में जहां छोटे छोटे खेतों की प्रधानता है। कानून को पालन कराने की कठिनाई, जिसका उल्लेख औद्योगिक उपक्रमों के सम्बन्ध में आ चुका है, यहां बढ़ जाती है। इसके कारण हैं किसानों का सनातनी कट्टरपन, एक ही व्यक्ति का कभी मालिक और कभी मज़दूर हो जाना, कुटुम्ब के अन्य व्यक्तियों की स्थिति की अनिश्चितता, अधिकतर नौकरियों का कुछ मौसमों में ही होना, नक़द मज़दूरी के बदले अनाज या और कुछ पैदावार देना और डाक्टरी सुविधाओं का शुरू में अभाव। इन सारे कारणों से कानून बनाने वाले तथा प्रशासनाधिकारी दोनों की हिम्मत कम होती है। दूसरी तरफ़ यह भी सही है कि किसी बड़ी कृषि संस्था के स्थायी कर्मचारियों को अनिवार्य बीमे के अन्तर्गत उतनी ही आसानी से लाया जा सकता है जितनी से कि एक तरफ पड़े हुए किसी अकेले कारखाने के कर्मचारियों को और ऐसी संस्थाओं से ही शुरूआत की जाती है।

नगरवासी कर्मचारियों के लिए बनाई हुई सामाजिक बीमा योजना को किसान वर्ग में चलाने के लिए उसके कानून और व्यवहार में अनेक परिवर्तन करने पड़ते हैं। मज़दूरों के मुख्य वर्गों के लिए मज़दूरी की दर अन्दाजन कुछ भी मान ली जा सकती है और मालिकों का चन्दा उनके खेतों पर मज़दूरी के रूप में होने वाले खर्चे के अन्दाज़ के अनुसार आंका जा सकता है। फिर भी नगरवासी कर्मचारियों का बीमा सामान्यत: सफलता से कर लेने पर भी, अधिकांश देशों में छोटे परिमाण पर की जाने वाली खेती पर सामाजिक बीमा लागू करने का सवाल सुलझाया नहीं जा सका है। छोटे किसानों के यहां कभी कभी ही काम करने वाले मज़दूरों की सुरक्षा, उन्ही उद्योगप्रधान देशों में हो सकती है, और होती है, जहां सामाजिक बीमा, मालिक और मज़दूर दोनों के लिए ही, करीब करीब सर्वव्यापक है या उन घनी बस्ती वाले समृद्ध कृषि प्रधान देशों में जहां सरकार ऐच्छिक बीमे का आर्थिक बोझ उठाने में काफी सहायता दे सकती है।

घरेलू नौकरों को ऐसी योजना में सम्मिलित करना कम से कम शहरों में तो शायद इतना कठिन नहीं है क्योंकि नगरवासिनी गृहिणी अक्सर लिखना पढ़ना जानती है और इस वर्ग के बीमे के लिए बनाये हुए सरल नियमों का पालन कर सकती है। सुव्यवस्थित शहरों में हर नागरिक का पता रखा जा सकता है और डाक्टरी हितलाभ दिलाने की आशा पूरी की जा सकती है।

सरकारी अफ़सर और दूसरे सरकारी या स्थानीय तथा सार्वजनिक प्रधिकारों के स्थायी कर्मचारियों को अक्सर सामाजिक बीमे के क्षेत्र से इस आधार पर विमुक्त कर दिया जाता है कि उन्हें पहले ही अधिक अच्छे हितलाभ मिल रहे हैं। इस वर्ग से आशा की जा सकती है कि कामगरों के अधिकांश अन्य वर्गों की अपेक्षा, सामुदायिक निधि से इनकी मांग कम रहेगी और इसलिए सार्वजनिक योजना में से उनकी विमुक्ति, सारी कमाने वाली जनता के राष्ट्रीय संगठन को, कमज़ोर करती है।

सार्वजनिक या वैयक्तिक उद्योगों की कुछ शाखाओं को कभी कभी पेन्शन बीमे में इसलिए शामिल नहीं किया जाता कि इन शाखाओं के लिए विशिष्ट योजनाएं राष्ट्रीय योजना के पहले ही बनाई जा चुकी थीं। कुछ उद्योगों में तो ऐसी योजनाएं अनेक वर्षों पहले से प्रचलित थीं। ये विशिष्ट योजनाएं अक्सर पेन्शन देने में अधिक उदार होती हैं और इनके अंतर्गत आने वाले कर्मचारी बीमान्वित जनसमूह में सम्मिलित होना पसंद नहीं करते। परन्तु ऐसे उद्योग (उदाहरणार्थ कोयले की खदानें और रेलगाड़ियां) अक्सर पुराने तथा गिरती दशा में होते हैं और उनकी पेन्शन योजनाओं पर सेवा निवृत्त लोगों का इतना भार होता है कि उनका सम्मिलित न होना ही राष्ट्रीय योजना के हित में है।

कर्मचारियों में क्षेत्र

सामाजिक बीमे के क्षेत्र में जिस प्रकार प्रथम वे उद्योग लाये गये जिनका प्रशासन आसान था, उसी प्रकार ऐसे उद्योगों के सारे कर्मचारियों की नहीं, बल्कि उन्हीं कर्मचारियों की सुरक्षा प्रथम की गई जो मालिक पर सदैव और सर्वथा निर्भर थे और जिनके वेतन में बचत की गुंजायश न दिखती थी। मालिकों का अपने मज़दूरों के प्रति उत्तरदायित्व, जिसका नतीजा उनके रक्षणार्थ चंदा देने में हुआ, मज़बूत कानूनी बुनियाद के ऊपर ही माना गया था। यह तो बाद की बात है कि सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओं का ध्यान अधिक महत्वपूर्ण माना गया।

इसलिये आरम्भ में किसी उद्योग से संबन्धित व्यक्तियों का बीमा उसी सूरत में होता था जब कि वे मालिक या उसके एजन्ट के निर्देशन और देखरेख में काम करते हों। अधिकांश कर्मचारी इसी वर्ग के होते थे। वे अपनी मज़दूरी करने के करार पर आते थे। यह मालिक तय करता था कि उनसे क्या काम लिया जाय। इसलिए अगर मालिक, कर्मचारी को कोई खतरनाक काम करने की आज्ञा देता था तो दुर्घटना होने पर जिम्मेदारी मालिक की होती थी। अतः नौकरी के करार का अस्तित्व बीमा-योग्यता की मूल कसौटी थी--सिर्फ औद्योगिक चोट के लिए ही नहीं, बल्कि इसी तर्क को थोड़ा खींचकर, सारी घटनाओं के लिए। जहां तक संभव था नौसिखियों को भी श्रमजीवियों के समान ही समझा जाता था यद्यपि वे कोई वेतन न पाते थे।

परन्तु धीरे धीरे नौकर-मालिक के रिश्ते के एक दूसरे ही अंग ने अधिक महत्व प्राप्त कर लिया है। मज़दूर अपनी जीविका के लिए मालिक पर निर्भर है। माल के

बेचने का भाव मालिक तय करता है और, जनता तथा साथी व्यवसायी जहां तक गुंजायश दें, वह बीमे के लिये दिये जाने वाले चन्दे को, माल की कीमत में मिला सकता है। सामाजिक बीमे की मूल प्रथा, चंदा वसूली के लिए, मालिकों के बाध्य सहयोग पर अवलंबित है। यह विचार कर्मचारी की कल्पना के विस्तार में उन सारे व्यक्तियों को ले आते हैं जो अपने को दूसरे के लिए नियमित काम करनें को बाध्य करते हैं उदाहरणार्थ बाहर जा जा कर सामान बेचने वाले, बाहर काम करने वाला, भागीदार किसान या टेक्निकल स्कूल के विद्यार्थी भी।

यह तो सही है कि हर व्यक्ति, जो अपनी सेवाएं या माल बेचता है, अपनी उपजीविका के लिए खरीदार पर निर्भर रहता है परन्तु निर्भरता के सिद्धांत को लगाने की, तर्कशुद्ध न सही, व्यवहारिक सीमा अवश्य है। मूल सामाजिक बीमा पद्धति के अनुसार "खरीदार" यानी मालिकों का वर्ग, रक्षनीय वर्ग की अपेक्षा, काफी छोटा, परन्तु आर्थिक दृष्टि से अधिक समर्थ होना चाहिये। मगर कुछ योजनाओं में ऐसे लोगों को भी कर्मचारियों में शामिल किया गया है जिनकी संख्या उनकी सेवाओं के उपभोक्ताओं की संख्या से कम है, जैसे घरेलू नौकरानियां, ठेके पर काम करने वाले माली, संगीत शिक्षक और परिचारिकाएं—जो, एक के बाद एक, अनेक घरों में काम करने जाती हैं। यह अवश्य दीखेगा कि ये कर्मचारी अपना पेशा, अनेक मालिकों के यहां क्यों न हो, पर नियमित रूप से करते हैं और इनकी आमदनी अधिक नहीं होती। किसी वर्ग में इन दोनों शर्तों का पूरा न होना सामाजिक बीमें से वंचित होने का कारण था और जैसा कि आगे बतलाया जायगा कुछ हद तक अब भी है।

नौकरी, या तो मालिक की दृष्टि से या नौकर की दृष्टि से, थोड़े समय की हो सकती है। पहली सूरत में अगर नौकर थोड़े से परन्तु पूर्वनिश्चित काल के लिए ही लगाया गया है तो उसे अल्पकालिक नौकरी कहते हैं। कर्मचारी के बीमा-काल में इस समय को न मिलाने के लिए कोई यथेष्ट कारण नहीं बतलाये जा सकते हैं। अगर ऐसा काल छोड़ देने की अनुमति दी तो लोगों को ठहरी हुई मियाद के लिए नौकरी पर रख कर, फिर शीघ्र ही रख लेने के इरादे से, निकाल देने की अनिष्टकर प्रथा बन जाने की सम्भावना है। परन्तु यदि नौकर की दृष्टि से भी नौकरी अल्पकालिक हो तो ऐसे काल को छोड़ देना ही उचित होगा। यहां अल्पकालिक नौकरी का अर्थ होगा कि वह व्यक्ति अपनी जीविका के लिए इस नौकरी पर अवलंबित नहीं है। या तो वह साधारणतया स्वतन्त्र धंधा करता है या कभी कभी ही जीविका कमाता है। ऐसी नौकरी को बीमायोग्य मानने के विरुद्ध आक्षेप यह है, कि इसमें चंदा व्यर्थ जाता है, क्योंकि हितलाभ पाने की शर्तें तो शायद कभी भी पूर्ण न होंगी और नौकर, मालिक तथा बीमा संस्था सभी को नौकर का नाम दर्ज कराने की सारी कार्यवाही पूरी करनी होगी। कठिनाई यह तय करने में है, कि भविष्य में ऐसे मजदूर का इरादा, अपनी जीविका कर्मचारी रह कर कमाने का है या नहीं। अगर है, तो उसका बीमा होना आवश्यक है। शायद इस समस्या का सबसे अच्छा उत्तर यही है, कि किसी भी नौकरी

को अल्पकालिक समझ कर निकाला न जाय जब तक कि श्रमिक स्वयं इसकी प्रार्थना न करे और उसे योजना से सरकारी माफ़ी न मिल जाय।

अनिवार्य बीमे के क्षेत्र में से उन लोगों को छोड़ देने की प्रथा, जिनकी माहवारी या सालाना आमदनी किसी नियत स्तर से अधिक हो, दूसरे महायुद्ध के पूर्व सर्वसम्मत थी। परन्तु यह प्रथा सर्वव्यापी न थी। इस समय भी, दस बारह देश ऐसे हैं जहां यह निर्बन्ध सामाजिक बीमे की एक या अनेक शाखाओं में लागू है। अधिक वेतन वाले कर्मचारियों को छोड़ देने की प्रथा उस काल की निशानी है जब कि सामाजिक बीमा हलके वर्ग की सुरक्षा के लिए ही विशेष साधन समझा जाता था और जिस काल में क्लर्क मज़दूरों से अधिक कमाते थे तथा अपने आप को उनसे ऊँचे सामाजिक स्तर का समझते थे। कभी कभी मेहनत करने वालों के लिए मज़दूरी की रक़म पर निर्धारित सीमा नहीं होती पर वेतन पाने वाले कर्मचारियों के लिए होती है। यूरोप के कुछ भाग और अमेरिका में तो दफ्तर के बाबू लोग और देख भाल करने वाले लोगों का बीमा करने की संस्थाएं ही अलग हैं या सरकारी मुलाज़िमों की तरह इस वर्ग को बीमारी में वेतन मिलते रहने का अधिकार मिला होता है। परन्तु यह हमेशा सामाजिक स्तर का ही प्रश्न नहीं रहा है। किसी ज़माने में तो यह माना जाता था कि निचले मध्यम वर्गीय बाबू लोग सामाजिक बीमे से रक्षित घटनाओं से अपनी रक्षा स्वयं कर सकने का निजी प्रबन्ध करने में समर्थ हैं। उनसे अपेक्षा की जाती थी कि वे जीवन बीमा कम्पनियों से बीमापत्र लेंगे और बीमारी की संभावना को ख्याल में रखते हुए धन संचय करेंगे जिससे वे स्वयं डाक्टरी इलाज का खर्च दे सकें (इस मुद्दे पर डाक्टरी सभाओं का खास जोर रहा है)। यदि यह कभी भी सच था तो भी दूसरे महायुद्ध के कारण जो सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन हुए हैं उनके कारण यह अब सच नहीं है। इसके अतिरिक्त आमदनी की सीमा का बन्धन बीमा पद्धति के प्रशासन में अड़चन ही था, क्योंकि वही व्यक्ति दो लगातार महीनों में इस सीमा के अन्दर या बाहर हो सकता था। सामाजिक सुरक्षा जिस सामाजिक एकता का प्रतिरूप बन गई है उसके नाम पर अब ये बंधन हटाये जा रहे हैं। परन्तु दूसरी ओर, जैसा कि हम इनका विचार करते समय देखेंगे, करीब करीब हर जगह चन्दे और हितलाभ की रक़में सीमित हैं।

मालिक और कर्मचारी एक दूसरे के, जन्म से या विवाह से, सम्बन्धी होने का, कर्मचारी की बीमा योग्यता पर उसूलन कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए क्योंकि संभवतः, इस सूरत में भी, कर्मचारी वेतन पाता है जिसके चालू रहने पर ही उसका भरणपोषण निर्भर है। फिर भी, किसी को भी निकट सम्बन्धी के यहां नौकरी को बीमा योग्य मानने में सामाजिक बीमे को हिचकिचाहट हुई है। पहली कठिनाई उन सूरतों में पेश आती है जहां कौटुम्बिक उद्योग एक छोटा सा कारोबार है और मेहनताना पूर्णतः या मुख्यतः माल के रूप में मिलता है जिसके फलस्वरूप चंदा देने के लिए नक़द रक़म की कमी हो जाती है। मालिक और नौकर की मिली भगत से बीमा संस्था को धोखा देने का ख़तरा, उनके एक ही घर के होने पर, काफी बढ़ जाता है। यह खतरा दूसरी सूरतों

में इतना नहीं होता। बीमार या बेकार होने की सूचना देने पर भी कर्मचारी काम करता रहता है या ऐसा अपाहिज़ सम्बन्धी जिसे हितलाभ पाने की शर्तें पूरी करने के लिए कुछ और चन्दों की आवश्यकता हो, वेतन पाता हुआ बताया जा सकता है। जहां योजना के अनुसार हितलाभ, हाल की मज़दूरी के अनुसार हो वहां मज़दूरी एकाएक बढ़ा दी जाने का अंदेशा भी हो सकता है। अगर निकट सम्बन्धियों को भी बीमे में लेना हो तो धोखे के ये सारे मार्ग बन्द करने चाहियें। इस उद्देश्य से योजना में विशेष परिवर्तन किये जा सकते हैं परन्तु इनसे प्रशासनिक कार्य बढ़ जाता है। फिर भी पेन्शन बीमे में यह समस्याएं इतनी कठिन नहीं हैं और स्वतंत्र मज़दूरों के लिए चलाई जाने वाली कुछ पेन्शन योजनाएं कौटुम्बिक उद्योग में कुटुम्ब के कर्त्ता के साथ काम करने वाले घरवालों को भी लागू की गई है।

कर्मचारियों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों का सामाजिक बीमा

कर्मचारियों के अतिरिक्त अन्य वर्गों को सामाजिक बीमा में लाने का कार्य मुख्यत: दूसरे महायुद्ध के बाद का विकास है। यह विस्तार, मोटे तौर से, स्वतंत्र रूप से काम करने वाले सब व्यक्तियों की ओर या सामान्यत: सभी प्रौढ़ नागरिकों की ओर हुआ है।

इस वर्ग की सामाजिक सुरक्षा की समस्या, मालिकों के चन्दे का अभाव ही नहीं, वरन् यह बात भी है कि उनके लिए हितलाभों का दायरा संकुचित करना पड़ता है। अल्पकालिक असमर्थता के कारण होने वाली आर्थिक हानि को आंकना असंभव तो नहीं, कठिन अवश्य है। दूसरी ओर कम समृद्धिशाली व्यक्तियों को ऐसी बीमारी की अवस्था में जिसमें अधिक खर्चे की संभावना है या उन तीनों अवस्थाओं में जिन में पेन्शन बीमे का आश्रय लिया जाता है, सुरक्षा की आवश्यकता है। इस सिलसिले में अब यह भी माना जा रहा है कि गृहणी भी राष्ट्रीय संपत्ति की एक अवैतनिक उत्पादक है, और जब वह बीमार या असमर्थ हो तो उसकी सुश्रूषा करना तथा उसकी सेवाओं के किसी मूल्यांकन के अनुसार उसे हरजाना देना उचित ही नहीं वरन राष्ट्रहित में भी है।

पेन्शन बीमे की सामान्य योजनाओं के अन्तर्गत, उन बीमेदारों को, जिनको बीमा अनिवार्य रूप से कराना पड़ा था, परन्तु जो बीमे के हक़दार नहीं रहे हैं, स्वेच्छा से बीमा चालू रखने का अवसर, कम से कम यूरोप में, दिया जाता है। यह इसलिए कि तनख़्वाह बढ़ जाने के कारण या बीमा योजना के बाहर की नौकरी कर लेने के कारण या स्वतंत्र व्यवसाय कर लेने के कारण, अनेक वर्ष चन्दा देकर जो अधिकार प्राप्त हो रहे थे, उन्हें खो बैठना किसी को भी असह्य होता। यद्यपि ऐसे ऐच्छिक बीमे के लिये मालिक और कर्मचारी दोनों के ही चंदे कर्मचारी अकेले को भरने पड़ते हैं, सरकार की आर्थिक सहायता उतनी ही रहती है जितनी अनिवार्य बीमे में और अगर

यह सहायता उदार हो तो, जिन लोगों के लिए यह योजना बनी है, उनमें से काफ़ी लोग इसका फ़ायदा उठाते हैं।

कुछ देशों ने छोटी हैसियत के स्वतंत्र व्यवसाय करने वाले लोगों को भी ऐसी योजनाओं में स्वेच्छा से शरीक होने की अनुमति दे दी है जिनके अन्तर्गत सरकारी सहायता से बीमारी (खासकर डाक्टरी सुश्रूषा) तथा वृद्धावस्था के लिये बीमा होता है। आय की सीमा के अन्दर होने के अतिरिक्त अक़्सर स्वास्थ्य परीक्षा भी होती है और प्रवेश के लिए अधिक से अधिक आयु की सीमा भी निश्चित की जाती है। यह सावधानी उचित है। जहां सरकारी आर्थिक सहायता बहुत अधिक है और परिणामस्वरूप कोई निजी बीमा योजना इसकी जोड़ तोड़ की सुविधाएं नहीं दे सकती वहां इस तरह का ऐच्छिक बीमा उस वर्ग के, जिसके लिये यह बना है, अनेक—संभवतः अधिकांश—लोगों को आकर्षित करने में सफल हुआ है। फिर भी यह अपरिहार्य है कि ऐसे अनगिनत अदूरदर्शी व्यक्ति रह जाते हैं जो अन्त में वैयक्तिक या सार्वजनिक उदारता पर भार हो जाते हैं।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि जब तक स्वतंत्र व्यवसाय करने वालों से, समय समय पर, बीमा संस्था द्वारा चन्दे की मांग न की जाय और उसे देने के लिए उन्हें कानूनन मजबूर न किया जाय, तब तक अनिवार्य और ऐच्छिक बीमे में कोई व्यवहारिक अन्तर नहीं है। यदि सरकारी सहायता का प्रलोभन उचित मात्रा में नहीं है तो चन्दा देने में नागा करने को रोकना मुश्किल ही है।

संभवतः फिलाडेल्फिया शिफारसों से स्फूर्ति पाकर, अनेक यूरोपीय देशों ने तथा अमेरिका ने दूसरे महायुद्ध के पश्चात स्वतंत्र व्यवसाय करने वालों के लिए अनिवार्य पैन्शन बीमा योजनाएं चलाई हैं। इन योजनाओं के अन्तर्गत या तो सरकारी सहायता का भारी होना आवश्यक है, या चन्दा आयकर के साथ सख़्ती से वसूल किया जाता है या ये दोनों ही शर्तें मौजूद होती हैं।

नीदरलेंड्स ने सन १९५६ में सब वयस्क नागरिकों के लिए पेन्शन बीमा अनिवार्य बनाकर फिनलेन्ड (१९४६) का अनुकरण किया।

कमाने वाले के बीमे से आश्रितों की सुरक्षा

औद्योगिक चोट के कारण बीमेदार की मृत्यु होने पर उसके उत्तरजीवी आश्रितों का रक्षण सामाजिक बीमे ने हमेशा किया है। इसके पीछे दीवानी कानून का अधिकार-युक्त प्रभाव था। परन्तु इस शताब्दी की शुरुआत हो चुकने के काफी बाद ही अन्य कारणों से मृत्यु पाने वाले मज़दूरों के उत्तरजीवियों को पेन्शन मिलना शुरू हुआ और इसके पश्चात एक और लम्बी अवधि बीत जाने पर ही मज़दूर के जीते जी उसके आश्रितों को उसके बीमे के आधार पर हितलाभ मिल सके। प्रारम्भ में इन हितलाभों में सिर्फ डाक्टरी चिकित्सा तथा प्रसूतिकालीन सुश्रूषा सम्मिलित थे परन्तु बाद में, (और खासकर

दूसरे महायुद्ध के पश्चात) कुटुम्ब भत्ते की अनेक योजनाएं स्थापित की गईं।

इस विलम्ब का कारण शायद उस परम्परा का प्रभाव है जिसके अनुसार हर मनुष्य पर अपने कुटुम्ब का पूर्ण उत्तरदायित्व रखा जाता है। इस उत्तरदायित्व को संभालने में मालिकों को भी हाथ बटाना चाहिये, यह बात मालिकों को आसानी से न पटाई जा सकी।

आश्रितों के लिए हितलाभ शुरू होना, सामाजिक बीमे की कल्पना और उसमें मालिकों के सहयोग के समर्थन में एक क्रांतिकारी घटना थी। आश्रितों के कल्याण का मालिकों से सम्बन्ध दूर का ही है, यह बात अब उन्हें चन्दा देने से माफी न दिला सकती थी क्योंकि यह चन्दा अब एक सरल टैक्स माना जाने लगा था जो श्रमजीवियों के कल्याणार्थ उपयोग में आ सकता था।

डाक्टरी हितलाभ के लिए आश्रितों की श्रेणी में पत्नी (अगर वह स्वयं बीमेदार न हो तो) तथा छोटे बच्चे तो सदा होते थे। परन्तु कुछ देशों में इसकी सीमा के विस्तार में गृहस्वामी के साथ उसके घर में रहने वाले वे सभी रिश्तेदार आ जाते हैं जिनका खुद का बीमा नहीं है। यह व्यवस्था उदार ही नहीं है बल्कि साथ साथ सामाजिक बीमे के कार्य को, सार्वजनिक स्वास्थ्य नीति के एक अंग के रूप में मान्यता देती है।

अनेक देशों में, जिनकी संख्या दिन ब दिन बढ़ती जा रही है, सामाजिक बीमे से पेन्शन पाने वाले लोग, अपने ही अधिकार से डाक्टरी चिकित्सा भी पा रहे हैं। इस प्रकार, कमाई करने वाली समस्त जनता तक सामाजिक बीमा पहुँचने के बाद कुछ ही समय की बात रहेगी जब कि उन लोगों की संख्या, जिन्हें डाक्टरी सुविधाएं, कमाने वाले के हक़ के अन्तर्गत मिलनी चाहियें, सिर्फ गृहणियों तथा, कमाने के अयोग्य छोटे बच्चों तक ही परिमित हो जावेगी।

परिवार का पोषण करने वाले की मृत्यु के बाद रक्षित आश्रितों के वर्ग में भी अनेक भेद मिलते हैं। परन्तु यहां, चूंकि हितलाभ का बटवारा होना होता है, कानून की धाराओं की शब्द रचना बड़ी विधिपूर्वक की जाती है और उनमें विधवा तथा अन्य वर्गों के रिश्तेदारों से हक़ की प्रधानता का क्रम निश्चित किया जाता है। आम तौर पर, औद्योगिक चोट के बीमे में, आम बीमे के मुकाबले में रिश्तेदारों के अधिक वर्गों को मान्यता दी जाती है। निस्सन्देह यह दीवानी कानून का ही असर है। इस कारण औद्योगिक-चोट का बीमा अधिक उदार रहा है, और आसानी से, क्योंकि हरज़ाना लेने वाले बहुत ही कम होते हैं।

चाहे डाक्टरी चिकित्सा के लिए हो या पेन्शन के लिए, "बच्चे" की परिभाषा साधारणतया बड़ी व्यापक होती है। इसके अन्तर्गत बीमेदार के बच्चे और सौतेले बच्चे तो आते ही हैं पर गोद लिए हुए बच्चे, उसकी पत्नी की जारज सन्तान और अगर वे उस पर वास्तव में अवलंबित हैं, तो उसके छोटे भाई बहिन और पोते नाती भी शामिल किए जा सकते हैं। आयु की मर्यादा अनिवार्य शिक्षण की मर्यादा से कभी भी

कम नहीं होती और अक्सर, जहां बच्चे की शिक्षा जारी रहती है, और भी अधिक होती है। अगर बच्चा अपाहिज हो तो आयु की मर्यादा बिल्कुल ही हटा दी जा सकती है। परिणामतः माता-पिता की मृत्यु के बाद और भाई बहिनों के बड़े हो जाने पर ऐसा बच्चा अनाथों की अधिकतम पेन्शन का अधिकारी होगा जिससे उसके निर्वाह का प्रश्न काफ़ी हल हो जायगा। इस प्रकार सामाजिक बीमे की सुरक्षा छत्र के इस छिद्र को लगभग बन्द कर दिया जाता है।

आश्रितों का हितलाभ पाने के लिए पत्नी के अतिरिक्त दूसरे बालिग रिश्तेदार बीमेदार पर सचमुच अवलंबित तो होने ही चाहिएं, पर साथ ही बूढ़े या अपाहिज भी होने चाहिएं। जब सामाजिक बीमा सर्वव्यापी हो जायगा तब ये लोग आश्रितों की श्रेणी में न रहेंगे।

कुटुम्ब भत्ते की ऐसी योजनाओं को भी सामाजिक बीमा योजनाओं में शामिल करना चाहिए, जो उसी वर्ग के व्यक्तियों के आश्रितों को सुरक्षा देती हैं, जिससे ख़ास अंशदान लिया जाता है। इनमें से अधिकांश सिर्फ़ बीमेदार के घर पर रहने वाले आश्रित बच्चों के लिये ही भत्ते देती हैं। कुछ योजनाएं, जिनकी संख्या कम हो रही है, सिर्फ दूसरे, या तीसरे और उसके बाद के बच्चों का संरक्षण करती हैं। दूसरी ओर कुछ योजनाएं ऐसी भी हैं जो उन माताओं को भी भत्ता देती हैं जो स्वयं कोई धन उपार्जन नहीं करतीं। अन्त में कुछ योजनाएं परिवार पर अवलंबित सारे रिश्तेदार बच्चों को भत्ते देती हैं।

करीब करीब वे सारी कुटुम्ब-भत्ता योजनाएं जिनका वित्तपोषण चंदों से होता है, न कि करों से, सिर्फ कर्मचारियों तक ही सीमित हैं। दो ही देशों में इस आधार पर स्वतंत्र व्यवसाइयों के लिए योजनाएं स्थापित की गई हैं जहां उपयुक्त परिमाण में भत्ते देने लायक चंदा उन लोगों से वसूल करना अव्यवहारिक सिद्ध हुआ है।

सामाजिक बीमे की दूसरी शाखाओं के साथ कुटुम्ब-भत्ता योजनाओं का एकीकरण इसलिये किया जाता है कि परिवार पोषक जब भी, स्थायी या अस्थायी रूप से, द्रव्यार्जन न कर सके और परिणामतः बीमारी, बेकारी या अपंगता के हितलाभ पाता हो, तब इस भत्ते का भुगतान जारी रहे। जहां यह भत्ता माता पिता की मृत्यु के बाद भी दिया जाता है वहां, अगर यह काफी अच्छी मात्रा में हो, तो अनाथों के लिए पेन्शन देना अनावश्यक हो सकता है।

सामाजिक सहायता (सार्वजनिक सामाजिक सुरक्षा सेवाओं सहित)

सामाजिक सुरक्षा प्राप्त करने की दूसरी रीति सामाजिक सहायता है। इसका विकास गरीबों के कानून के अंतर्गत गरज़मंद नागरिकों के भिन्न वर्गों को उनकी विशेष आवश्यकताओं के अनुसार सेवाएं प्रदान करने का ख़ास इंतजाम करने के परिणामस्वरूप हुआ। इस शताब्दी का प्रथम चतुर्थांश इसके विस्तार-काल का शिखर था। कुछ देशों को,

जो तुलनात्मक दृष्टि से धनवान थे, पर जो बड़े परिमाण में सरकार द्वारा हस्तक्षेप की कल्पना को मानना न चाहते थे और जो सामाजिक बीमा चलाने के लिए आवश्यक, पेचीली व्यवस्था से डरते थे, यह रीति अधिक पसंद थी। सामाजिक बीमे के प्रशासन की उलझनों में से उनकी राज्य सरकारों को अभी अपना रास्ता साफ़ नहीं दीखता था। संभवतः वे अपने आप को उस अपरिवर्त्तनीय परिस्थिति में बांध लेने से डरते हों जो ऐसी व्यवस्था निर्माण करने पर और चंदों के बदले हितलाभ पाने के अधिकार देने से उत्पन्न हो। उन देशों में जहां काम करने वालों का एक प्रमुख भाग स्वतन्त्र व्यवसायी लोगों का है, कर्मचारियों के लिए निर्माण किया हुआ सामाजिक बीमा सामाजिक अरक्षा की समस्या का उत्तर अपूर्ण रूप से ही दे सकता था। और फिर पश्चिमी दुनिया में दरिद्रता का सबसे बड़ा और भयानक भाग बूढ़ी जनता का था और इनके लिए सामाजिक बीमे की मूल प्रथा में कोई तात्कालिक उपाय न था। इन कारणों से कुछ समृद्ध देशों ने सामाजिक सहायता के मार्ग को चुना।

परम्परा के अनुसार कंगालों की सहायता करना स्थानीय शासन की ज़िम्मेदारी है और इसलिये ऐसी सहायता उन्हीं को मिल सकती है जो उस स्थान के रहने वाले हों। परन्तु जिन सामाजिक सहायता योजनाओं से इन पाठों में हमारा प्रयोजन है वे, पूर्णतः या अंशतः, राष्ट्र सरकार द्वारा वित्तपोषित तथा प्रशासित सेवाएं हैं। अतः इन योजनाओं के सम्भावित हितलाभाधिकारियों में देश की समस्त स्थायी जनता होती है। सामाजिक सहायता का स्रोत राष्ट्रीय एकता की भावना में है। परन्तु इसकी न्यायोचितता को इस बात से, तथा उसके ज्ञान से, पुष्टि मिलती है कि सारी कमाई का और दूसरी आमदनी का कुछ हिस्सा सरकारी खज़ाने में पहुंच ही जाता है और इसलिये सारे नागरिक किसी न किसी प्रकार सामाजिक सहायता के व्यय को चुकाते हैं।

सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कन्वेंशन में निर्धारित है कि जहां हितलाभ सामाजिक सहायता योजना द्वारा दिये जाते हैं वहां यह आवश्यक है कि देश के सारे बाशिंदों को हितलाभ माँगते समय तथा जब तक वह मिल रहा है तब तक अपने और साधन न होने का प्रमाण देने पर सुरक्षा प्रदान की जाय। अगर हक़दार विदेशी है तो विशेष शर्तें लगाई जा सकती हैं।

साधन न होने के प्रमाण सहित सामाजिक सुरक्षा का प्रचलन अब कम होता जा रहा है और हाल में ऐसी कोई नई योजनाएं नहीं बनीं हैं। ऐसा प्रमाण मांगने से मितव्ययता कम होती है और यह एक घातक दोष है। मज़दूरी पाने वालों को (कम से कम पश्चिमी देशों में) बहुधा इतना वेतन मिलता है कि वे आयकर भी देते हैं और उनसे यह कर वसूल करने के तरीके पक्के किये जा चुके हैं। इसीलिए ऐसा होता है कि समस्त जनता के लिए बनाई हुई नई योजनाएं या तो राष्ट्रीय पेन्शन योजना का रूप लेती हैं--जिसका हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं--या सार्वजनिक सेवाओं का रूप लेती हैं जो सारे देशवासियों को बिना मूल्य मिलती हैं जैसे कि राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवाएं और कुटुंब-भत्ता योजनाएं।

दूसरे पाठ पर प्रश्न

१. सामाजिक बीमा योजनाओं के क्षेत्र में खेतीबारी के मजदूरों का समावेश करने में आने वाली कठिनाइयों को गिनाइये।

२. नौकर मालिक के परिवार का व्यक्ति होने से उत्पन्न होने की ऐसी कुछ बुराइयों का उल्लेख कीजिये जिनकी सम्भावना हो।

३. स्वतंत्र व्यवसाय करने वालों को सामाजिक बीमे के अन्तर्गत लाने में कौनसी मूलभूत कठिनाई को हल करना होगा ?

४. सामाजिक सहायता के वे कौनसे विशिष्ट गुण हैं जो एक ओर दरिद्रों की सहायता और दूसरी ओर सामाजिक बीमे से उसकी भिन्नता बताते हैं ?

५. सामाजिक सहायता योजनाओं की प्रगति किस दिशा में हो रही है और कौनसी परिस्थितियों के कारण यह प्रगति संभव हुई है ?

पाठ ३

हितलाभ

कुछ फुटकर बातें

इस और अगले चार पाठों का विषय है—सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के अन्तर्गत मिलने वाले हितलाभ। ऐसी योजनाओं का उद्देश्य यथार्थ में हितलाभों में ही होता है और उनका विवरण बहुधा योजना के नियमों का सबसे अधिक विस्तारपूर्ण अध्याय होता है। इसका कारण यह है कि उसमे उन संभावित घटनाओं की, जिन में ये हित-लाभ देते हैं, उन शर्तों की जो दावेदार को हितलाभ पाने के लिये और पाते रहने के लिये पूर्ण करनी होंगीं, तथा हितलाभ का रूप, रकम और अवधि की, परिभाषा करना आवश्यक होता है।

निर्धनों की सहायता की किसी भी प्राथमिक योजना में प्रार्थी से दो आवश्यक प्रश्न पूछे जाते थे: क्या आपको सहायता की सख्त जरूरत है और क्या आप अपनी आवश्यकतायें पूर्ण करने में असमर्थ हैं ? यदि ऐसा है तो यह लीजिये अपने गुजर के लिये धन और, अगर आप बीमार हैं, तो यह लीजिये अपना डाक्टरी इलाज। बिलकुल ही सीधी तरह कहा जाय तो आज भी सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का कार्य जीविका और डाक्टरी सुश्रूषा उपलब्ध करना है। परन्तु सहायता की आवश्यकता पड़ने के हरएक मुख्य कारण के अनुसार सामाजिक सुरक्षा पद्धति उस संभावित घटना के उपयुक्त हित-लाभ दिलाती है और बहुधा यह हितलाभ भी ऐसी खास संस्था के द्वारा दिये जाते हैं जो इसके लिये विशेषत: उपयुक्त है।

सामाजिक सुरक्षा संगठन का ऐसी विशिष्ट शाखाओं में बंट जाना—जिनमें से हरएक एक संभावना, या निकट संबन्ध रखने वाली संभावनाओं के समूह की व्यवस्था देखती है—उसी ऐतिहासिक क्रम के सहारे समझा जा सकता है जिससे हम अब परिचित होते जा रहे हैं। हम देख चुके हैं कि पारस्परिक हितलाभ—समितियां अपने सदस्यों को वैद्यकीय सुश्रूषा और छोटी अवधि के आर्थिक हितलाभ दे लेतीं थीं, बीमा कम्पनियां मजदूरों को हरजाना देने का मालिकों का उत्तरदायित्व संभाल सकती थीं तथा मजदूर संघ बेकारी में (बशर्ते कि वह लम्बी अवधि की न हो) आर्थिक हितलाभ दे लेते थे परन्तु पेन्शन देने की जिम्मेदारी बड़ी लोक संस्थाएं ही अपने ऊपर ले सकती थीं। उन देशों मे जहां ये संस्थायें एक या अनेक पीढ़ियों से काम करती चली आ रही हैं, इनके एकसूत्रीकरण की प्रगति कठिनाई से हो रही है और एकीकरण का आखिरी कदम लेना—

यह मानते हुये कि यह हमेशा उचित है—केवल हाल का तथा सिर्फ कहीं ही होने वाला कार्य है ।

हर एक हितलाभ देने की स्वतंत्र शैली पाने वाले के फायदे की है—या यों कहिये कि होनी चाहिये—साथ ही ऐसी व्यवस्था समझदारी की तथा मितव्ययी भी होती है । किन्तु ऐसी स्वतन्त्र शैलियों के साथ परिभाषाओं में अधिक बारीकियां आ जाती हैं और कुछ सख्ती भी । ऐसी सख्ती आ जाना उस सिद्धान्त का फल है जिसके अनुसार सामाजिक सुरक्षा हितलाभ इस प्रकार देने चाहियें कि वे क़ानून द्वारा भी प्राप्त किये जा सकें ।

सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कन्वेन्शन में नौ अलग अलग प्रकार के हितलाभों का उल्लेख है और उन्हें ऐसे क्रम में गिनाया गया है जिसका विशेष महत्व नहीं है । संघठित प्रबन्ध के लिये इन्हें सामान्यतः निम्नलिखित शाखाओं में एकत्रित किया जाता है :—

कुटुंब भत्ते;
डाक्टरी, बीमारी तथा प्रसूति हितलाभ;
अपंगता, वृद्धावस्था तथा उत्तरजीवियों की पेन्शनें;
औद्योगिक चोट—हितलाभ;
बेकारी हितलाभ ।

चूंकि इस शिक्षण-क्रम का सम्बन्ध किसी आदर्श संगठन से नहीं, वरन् उस सामाजिक सुरक्षा संगठन से है जो विद्यार्थी को अपने देश में मिलने की संभावना है हम उपर्निर्दिष्ट क्रम का ही अनुकरण करग । तो भी सामाजिक सुरक्षा हितलाभों को सामान्य खूबियों और उनके पारस्परिक सम्बन्धों, का प्राथमिक विवेचन उपयुक्त रहेगा ।

यह तो एकदम नज़र आ जाता है कि ये सारी सम्भाव्य घटनायें इस रूप में एक सी हैं कि उनके कारण मजदूर की कमाई, मजदूर के खर्चे के भार के लिये पूरी नहीं पड़ती । साथ ही, बेकारी के अतिरिक्त सारी घटनाएं शारीरिक हैं: बीमारी या चोट, प्रसूति और बच्चे के आगमन से कुलवृद्धि; वृद्धावस्था जिसका, जैसे भी हो, जोड़ जीर्णावस्था से हो गया है; और मृत्यु । इनमे से अधिकांश घटनाओं से कमाई बंद हो जाती है । बीमारी, प्रसूति तथा बेकारी में यह परिणाम अस्थायी होता है । अधिकांश असाध्य रोगों का, किसी किसी चोट का और वृद्धावस्था तथा मृत्यु का परिणाम चिरस्थायी होता है । कुछ शारीरिक व्याधियों से तथा अंगों के कटने से और इसी प्रकार थोड़ी २ बेकारी से कमाई घट जाती है । अनेक बीमारियों से कमाने की योग्यता तो नहीं जाती पर आम तौर पर सब बीमारियों के इलाज में खर्चा होता ही है । और अंत में वे संभावित घटनायें हैं जो कुटुंब के प्रमुख पर उसके आश्रितों के कारण आर्थिक बोझ डालती हैं । दवादारू का खर्च, अंत्येष्टि का खर्च और सब से बढ़कर सामान्य परवरिश का खर्च ।

कमाई बंद होने के सम्बन्ध में एक साथ एक से अधिक हितलाभ सामाजिक सुरक्षा पद्धिति नहीं दे सकती (या उसको नहीं देने चाहियें) । उदाहरणार्थ यदि कोई बेकार व्यक्ति बीमारी के कारण काम करने मे असमर्थ हो जाता है तो उसको कोई ऐसी और हानि नहीं होती कि उसे अतिरिक्त हितलाभ दिया जाय ।[1] दूसरी ओर यह भो हो सकता है कि जब एक घटना के कारण कमाई पहले ही कम हो चुकी है तब एक और घटना के फिर होने से कमाई और भी कम हो जाय : जैसे कि कोई अपूर्ण अपंग व्यक्ति वह हलका काम भी खो बैठे जिसे वह कर सकता था । ऐसी अवस्था में और हितलाभ देना आवश्यक है । और हितलाभ देने की आवश्यकता ऐसे भी होगी कि जिस व्यक्ति की कमाई बंद या कम हो चुकी है उस पर खुद की या उसके आश्रितों की दवादारू के खर्च का बोझ पड़ जाय; या उसकी मृत्यु हो जाय और उसके अंत्येष्टि तथा उसके उत्तर-जीवियों के पालन की व्यवस्था करनी पड़े या कुटुम्ब में नये बालक का जन्म हो ।

स्वभावतः कमाई उन्हीं की बन्द या कम हो सकती है जो कमाने में लगे हैं । दूसरी ओर डाक्टरी उपचार और अंत्येष्टि के खर्चे ऐसे हैं जो किसी के भी बारे में हो सकते हैं और किसी भी वयस्क व्यक्ति पर आश्रितों के पालनपोषण की ज़िम्मेदारी क़ानूनन आ सकती है ।

सामाजिक बीमे की तरकीब का विकास पहले कर्मचारियों के रक्षणार्थ हुआ और स्वतंत्र व्यवसाइयों के लिये इसका उपयोग करने की कल्पना बाद में सूझी तथा कुछ हद तक काम चलाऊ ही रही है । औद्योगिक चोट का बीमा तथा बेकारी बीमा तो कर्मचारियों के लिए ही बनाये गये थे । परन्तु अनेक देशों ने छोटे मालिकों को तथा स्वतंत्र व्यवसाय करने वालों को अपना कार्य करते समय लगने वाली चोटों का बीमा कराने की सुविधाएं दी हैं या उन्हें यह बीमा कराने के लिये बाध्य तक किया है । डेनमार्क में ऐसे बीमे को सरकार की सहायता मिलती है ।

सामाजिक बीमे के विपरीत, सामाजिक सहायता का आयोजन सारी जनता के लिए किया जाता है । एक और फ़र्क यह है कि अर्ज़दार को कुल आमदनी पर कमाई बंद होने या घटने के परिणाम की तसदीक अक्सर हितलाभ देने के पहले हर अर्ज़दार के लिये की जाती है ।

अंत्यविधि (जहां दरिद्रियों के दफनाने में कोई खर्च नहीं है), औद्योगिक चोट और प्रसूति (जहां हरजाना देने को मालिकों को मजबूर किया जा सकता है) के अतिरिक्त सारी संभाव्य घटनाओं में, सामाजिक बीमा या सामाजिक सहायता, किसी से भी, एक सा संरक्षण मिल सकता है । ऐसी छः घटनाएं हैं जिनमें, देश में महत्वपूर्ण सामाजिक योजनाओं के चलते हुये भी कभी २ सामाजिक सहायता के मार्ग को चुना गया है । वे ये हैं :

डाक्टरी सुश्रूषा की आवश्यकता;

---

[1]परन्तु यदि दूसरा हितलाभ (जैसे कि हमारे उदाहरण में बीमारी हितलाभ) अधिक दर से दिया जाने वालाा हो तो पहले हितलाभ के बदले यही मिलना चाहिये ।

अपंगता, वृद्धावस्था तथा कर्ता व्यक्ति की मृत्यु;
कौटुंबिक भार;
दीर्घकालीन बेकारी।

आखिरी घटना को छोड़कर शेष घटनाओं में सामाजिक सहायता की प्रवृत्ति, अन्य साधन न होने के प्रमाण की शर्त को छोड़ देने की ओर है और इस प्रकार सामाजिक सहायता का परिवर्तन एक सार्वजनिक सामाजिक सुरक्षा सेवा में हो रहा है। परन्तु सिर्फ दो ही देशों ने अल्पकालीन असमर्थता तथा अल्पकालीन बेकारी में भी सामाजिक सहायता का उपयोग करने की हिम्मत की है क्योंकि इन घटनाओं में हितलाभ का दुरुपयोग होने के खतरे को रोकना कठिन है।

हितलाभ पाने के लिये कुछ शर्तें पूरी करनी होती हैं। पहली शर्त है कि संभावित घटना सचमुच हो चुकी है और उसके कारण कमाई बन्द या कम हो गई है या कोई व्यय करने की आवश्यकता आ पड़ी है। दूसरी शर्त है कि प्रार्थी, संबंधित सामाजिक बीमा या सहायता योजना में विहित हैसियत रखता है।

दूसरी शर्त के बारे में कुछ योजनाओं में इतना ही आवश्यक है कि घटना होते समय दावेदार योजना क्षेत्र में आने वाले किसी काम में लगा होना चाहिये है। परन्तु बहुत सी योजनाओं में सिर्फ "बीमेदार" होना काफी नहीं है क्योंकि बहुधा सिर्फ "बीमान्वित" होने के कारण योजना संरक्षण प्रदान नहीं करती बल्कि इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक होता है कि वह एक न्यूनतम अवधि तक, जो अलग अलग हितलाभ के अनुसार कम या अधिक होती है, बीमा योग्य काम में रहा हो तथा उसके लिये तदनुसार न्यूनतम चंदे दिये गये हों। यह तो आसानी से समझा जा सकता है कि अधिकार मिलने के काल की अवधि की शर्त इस सम्भावना पर आधारित है कि लोग ऐसे समय बीमा योग्य नौकरी में घुसने का प्रयत्न करेंगे जब उन्हें ऐसी कोई घटना होने का अंदेशा या पता हो जिसके कारण उन्हें फ़ौरन हितलाभ मिल सकेगा यानी, दूसरे शब्दों में, जब वे स्वयं "बुरे खतरे" हैं। हितलाभ जितना ही अधिक हो उतना ही यह खतरा भी बढ़ता जाता है। परन्तु जिस देश में सामाजिक बीमा प्रायः सर्वव्यापी है वहां अधिकांश अधिक खतरे वाले व्यक्ति पहले ही बीमान्वित होंगे और इसलिये यह समस्या महत्व की नहीं रह जाती।

सामाजिक सहायता योजनाओं में सहायता पाने के लिये अधिकारी होने की शर्तें सामाजिक बीमा योजनाओं की शर्तों से भिन्न परन्तु मिलती जुलती होती हैं। सामान्यतः सामाजिक सहायता हितलाभ पाने के लिये दावेदार को सिद्ध करना होता है कि जिस देश के कानून के अन्तर्गत वह दावा करता है उस देश का वह नागरिक है या कम से कम नियमित रूप से निवासी है। यदि दावा पेन्शन का है तो संम्भवतः उसे यह सिद्ध करना पड़ेगा कि वह विहित न्यूनतम वर्षों तक देश में रहा है।

संभावित घटना के हो चुकने पर तथा पात्रता संबन्धी शर्तें पूरी होने का निश्चय हो

जाने पर हितलाभ का रूप तथा उसकी रकम तय की जाती है। डाक्टरी सुश्रूषा के सम्बन्ध में योजना द्वारा निश्चित की हुई सीमा के अन्दर, सुश्रूषा के ढंग और अवधि का प्रश्न योजना के डाक्टरी अफ़सरों की सूझबूझ पर ही छोड़ना होता है।

सामाजिक बीमा योजनाओं में हितलाभ की दर अक्सर दावेदार की थोड़े या लम्बे काल की औसत कमाई के अनुपात में होती है--यद्यपि कहीं कहीं वे गुज़ारा करने के लिये न्यूनतम रकम के आधार पर निश्चित किये जा सकते हैं। (इसे हम आगे गुज़ारा रकम कहेंगे)। सामाजिक सहायता योजना में तो हमेशा यह ही आशय रहता है कि हितलाभ गुजारा रक़म के अनुसार ही हों और कभी कभी विहित स्तर से अधिक निजी आमदनी, हितलाभ में से काट ली जाती है।

सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कन्वेनशन को निश्चित करते समय, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम परिषद ने हितलाभ देने की दोनों प्रथाओं को बराबर माना, यानी चाहे वे मज़दूरी के अनुपात में दिये जायं या गुजारा रकम के आधार पर। भिन्न देशों के हितलाभ-स्तर का आर्थिक महत्व समझने के लिये, तथा उनकी तुलना करने के लिए न्यायोचित मुक्तियुक्त नियमों की निर्धारणा करने के लिये, उसने बहुत प्रयास किया। चूंकि हितलाभ, किसी भी सूरत में, दावेदार की काम करते समय की कमाई से अधिक नहीं हो सकते, चूंकि मज़दूरी के दरों की क्रय-शक्ति देश की वास्तविक सम्पत्ति के अनुपात में होती है, और अंत में चूंकि कन्वेनशन का अभिप्राय हितलाभ की रकम से उतना न था जितना कि सदस्य देशों के सामर्थ्य को ध्यान में रखते हुये उनके सामाजिक सुरक्षा प्राप्त करने के प्रयत्नों से था। इसलिये सन्बन्धित देश की एक नमूने की मज़दूरी को, उस देश में दिये जाने वाले हितलाभों की दरों का मूल्यांकन करने के लिये, मानदंड मानना तय किया गया। जहां किसी योजना का अभिप्राय सिर्फ गुज़ारा रकम देना था वहां सामान्य अनिपुण मज़दूर की मज़दूरी को प्राचल माना गया है। जहां हितलाभ व्यक्ति की मज़दूरी के अनुपात में मिलता है वहां कन्वेनशन के अनुसार यह आवश्यक है कि वह निपुण कारीगर की मज़दूरी के एक विशिष्ट प्रतिशत से कम न हो। इसका कारण यह था कि उन योजनाओं में, जिनमें हितलाभ व्यक्ति की पिछली मज़दूरी के अनुपात में विहित है, अनुपात लगाने की मजदूरी की ऊपरी सीमा भी हमेशा निश्चित की जाती है और यह सीमा कभी कभी इतनी नीची होती है कि वह अनिपुण मज़दूर की मज़दूरी से मुश्किल से अधिक होती है और न्यूनतम हितलाभ, अगर विहित किये गये हों तो, गुज़ारा रकम से भी कम निकलने की संभावना है। कन्वेनशन में सामान्य अनिपुण या निपुण मजदूर की परिभाषा करने के लिये बारीकी से तरीके दिये हैं। यह प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कन्वेनशन है जिसमें सामाजिक सुरक्षा हितलाभों के प्रतिमानों की परिभाषा करने के लिये कानूनी भाषा के बदले आंकड़ों का उपयोग किया गया है।

अलग अलग योजनाओं में नक़द हितलाभों की अपेक्षा डाक्टरी हितलाभों में भिन्नता कम होती है क्योंकि इसकी परिभाषा अक्सर सामान्य शब्दों में की जाती है। ऐसी

परिभाषा कुछ लचकीली होती है और देश में उपलब्ध डाक्टरी सुविधाओं के अनुसार उनका अर्थ करने की गुंजाइश होती है। डाक्टरी हितलाभ की आवश्यक कसौटी अर्थात सुविधाओं का स्तर, प्रायः अनिवार्य रूप से परिभाषा द्वारा नियत नहीं हो पाता। न तो डाक्टरी की पूरी शिक्षा को और न उसके चिकित्सा साधनों को नियत करने से चिकित्सा की पर्याप्तता निश्चित की जा सकती है। चिकित्सक केवल परिचारिका या मरहम पट्टी करने वाला हो सकता है या एक सुयोग्य डाक्टर हो सकता है; जंगल में थोड़ी साफ़ की हुई भूमि पर खड़े किये हुये ओसारे को भी अस्पताल कहा जा सकता है और गगनचुम्बी क्रोमियम मंडित अट्टालिकाओं को भी। इन सभी दशाओं में प्रदेश में होने वाले सामान्य रोगों के लिये इलाज एकसा पर्याप्त हो सकता है।

सामाजिक सुरक्षा योजनाओं की सबसे अधिक विभिन्नता का दर्शन तो हमें उनके नकद हितलाभ सम्बन्धी नियमों में मिलता है। इसका कारण यह है कि यह नियम बहुधा रक़म तथा अवधि का वर्णन करते हैं और यह वर्णन अंक प्रधान ही होता है। कानून निर्माताओं की हितलाभ की उचित मात्रा के विषय में अलग अलग कल्पना होती है। यहां उचित मात्रा से तात्पर्य है ऐसी मात्रा जो पर्याप्त होने के साथ ही दुरुपयोग को प्रोत्साहन न दे या ऐसी मात्रा हो जिसके वित्तपोषण की चन्देदारों से आशा की जा सकती है। हितलाभ की शर्तें तथा दर निश्चित करने के बारे में अभी वैज्ञानिक माप-दंडों की बहुत कमी है। फिर भी विधानकर्ता के मत की स्वतन्त्रता की भी सीमा है। खोई हुई कमाई के आधार पर मिलने वाला हितलाभ शायद ही कभी मज़दूर की मजदूरी के चौथाई से कम या किसी व्यक्ति के वेतन के ९० प्रतिशत से अधिक होगा और अगर सारी योजनाओं के हितलाभ की दर का प्राचल के अनुपात का नक्शा तैयार किया जाय तो यह दीखेगा कि अधिकांश योजनाओं में हितलाभ की दर दो प्राचलों में से किसी एक के ५० प्रतिशत के आसपास है। साथ ही यद्यपि मज़दूरी के अनुपात में हितलाभ और गुज़ारा रकम के अनुसार हितलाभ का भेद मूलभूत मालूम होता है तो भी इन दोनों कल्पनाओं का थोड़ा थोड़ा उपयोग बहुधा एक साथ किया जाता है। उदाहरणार्थ हितलाभ के दो अंश हो सकते हैं—एक व्यक्ति के वेतन के साथ और दूसरा उसके आश्रितों की संख्या के साथ घटता बढ़ता जाय। बहुधा न्यूनतम दर भी नियत कर दिये जाते हैं जब कि अधिकतम दर निश्चित करने की प्रथा तो प्रायः आम ही है।

एक योजना या एक राष्ट्रीय योजना पद्धति से दूसरी के हितलाभों की दर के भेद समझ पाने का एक तरीका यह हो सकता है कि सामाजिक सुरक्षा हितलाभों के ध्येय में ही अन्तर है। क्या यह ख्याल किया जाता है कि लोग अपनी सुरक्षा के लिये अनिवार्य योजना के हितलाभों पर ही सर्वथा अवलंबित रहें या उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे इन हितलाभों की कमी को बचत या निजी बीमे से पूरा करें ? उन देशों में जहां सरकारें समाजवादी हैं, यह स्वाभाविक है कि सामाजिक बीमे का उद्देश्य, कम से कम मेहनती और ईमानदार कर्मचारियों के लिये, पर्याप्तता हो। उन देशों में जहाँ निजी पूंजीवाद का बोलबाला है यह आशा होगी कि सामाजिक सुरक्षा हितलाभ उस

इमारत की नींव के रूप में हों जो हर व्यक्ति अपनी इच्छा तथा योग्यता के अनुसार अपनी सुरक्षा के लिये खड़ी कर सकता है। वास्तव में यह आशा सिर्फ़ कुछ आंग्ल भाषा-भाषी और उत्तरी यूरोप के देशों में ही पूरी होती हैं। अन्य देशों में जहां पूंजी का ज़ोर है, सामाजिक सुरक्षा योजनायें श्रमिक वर्ग के अधिकांश के लिये वैयक्तिक रूप से पूरक बचत की आवश्यकता को दिन प्रति दिन कम करती जा रही है। यह प्रवृत्ति, जो वैयक्तिक ज़िम्मेदारी की भावना को स्पष्टतया कमज़ोर बनाती है, मुद्रास्फीति तथा बचतों के ऊपर बज्राघात होने के कारण तेजी से बढ़ी। इस परिस्थिति में सिर्फ राज्य द्वारा आश्वासित योजनाएं ही मुद्राओं के घटते हुए मूल्य का कुछ पर्याप्त बदला चुकाने का काम संभाल सकतीं हैं।

यह स्पष्ट है कि जो सामाजिक सुरक्षा योजना अपने हितलाभों में मुद्रा-चलन के मूल्य में होने वाले परिवर्तनों के अनुरूप हेरफेर नहीं कर सकती वह अपना मूल प्रयोजन पूर्ण नहीं कर रही है। दूसरे महायुद्ध के बाद से तथा अर्थशास्त्रज्ञ जे० एम० कीन्स के विचारों के फैलने के कारण अधिकांश राज्य सरकारें मज़दूरी के नाममात्र मूल्य को (या, यदि नयी मुद्रा चलायी गयी है तो उसके वास्तविक मूल्य को) कम करने के पक्ष में नहीं हैं। वह चाहे पूरा न हो सका हो मगर ध्येय यही रहा है कि मज़दूरी उत्पादन के अनुपात में बढ़े। व्यवहार में, नाममात्र मज़दूरी की प्रवृत्ति उत्पादन के आगे भागने की होती है और थोड़े या अधिक परिमाण में मुद्रास्फीति आ ही जाती है। ख़ासकर दूसरे महायुद्ध के बाद के पहले कुछ वर्षों में कुछ देशों में मंहगाई इतनी तेजी से बढ़ी है कि राज्य सरकारों को उसे काबू में लाना मुश्किल हो गया है और मुद्रा का मूल्य युद्ध-पूर्व काल के मूल्य के आधे से लेकर नौ दसमांश या इससे भी अधिक तक गिर गया है। सरकारों ने सर्वसाधारण रूप में हितलाभ नया मूल्य निर्धारित करके बढ़ाये पर साल दो साल बाद ये भी काफी न रहे। यही कारण है कि अब बढ़ती हुई संख्या में सामाजिक सुरक्षा योजनाओं में, हितलाभों का मज़दूरी या कीमतों के सामान्य स्तर से मेल बैठाने के लिये, स्थायी उपबन्ध रखे गये हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने, फिलाडेल्फिया में अपनायी हुई आय-सुरक्षा-सिफ़ारिशों में सन् १९४४ में ही इस समस्या को दूरदर्शिता से देख लिया और सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन ने उस समय पेश किये हुये सिद्धांत की पुष्टि कर दी। सिद्धांत यह था कि यदि जीवन निर्वाह के मूल्य में महत्वपूर्ण परिवर्तन होने के कारण मज़दूरी के सामान्य स्तर में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है तो हितलाभ की दरों में भी परिवर्तन किया जाना चाहिये। इस सिद्धांत को स्वीकार करना, जो आज भी कुछ अटपटा भले ही हो मगर परित्याग करने योग्य नहीं है, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-परिषद में आये हुए प्रतिनिधियों के बहुमत की सच्चाई तथा जिम्मेदारी की भावना का प्रतीक है।

अल्पकालिक हितलाभों के बारे में, जो वर्तमान मजदूरी के अनुपात में मिलते हैं, कोई खास समस्या नहीं उठती जब तक कि मंहगाई बज्राघात की गति से न आ

जाय । परन्तु पेन्शनों की बात भिन्न है । इनमें दुहरा नुक़सान हो सकता है । पहले तो घाटा इसी में हो जाता है कि पेन्शन का हिसाब गिरे हुए दाम की अनेक वर्षों की तनख़्वाह के औसत पर लगाया जाता है और फिर पेन्शन की क्रय-शक्ति (पर्चेजिंग पावर) गिर जाने से दुबारा घाटा हो जाता है । जो योजनायें जीविका चलाने लायक हितलाभ देने का उद्देश्य रखती हैं उन्हें तो अपनी सारी हितलाभ अनुसूची में संशोधन करना आवश्यक है और प्राविधिक (टेक्नीकल) दृष्टि से उनके लिए यह आसान काम है ।

एकसूत्रीकरण के अभाव के कारण एक ही राष्ट्रीय पद्धति के अतर्गत आने वाली अनेक सामाजिक सुरक्षा योजनाओं में, उन संभावित घटनाओं में दिये जाने वाले हितलाभों के दरों में, जो भिन्न होने पर भी एक ही आवश्यकता निर्माण करते जान पड़ते हैं, अक्सर विसंगति आ जाती है । कभी तो इस विसंगति को समझने लायक कारण मिल जाते हैं परन्तु बहुधा ये गलती से हो जाती है । उदाहरणार्थ यह कहा जा सकता है कि यदि कमाई अस्थाई तौर पर बन्द हुई है तो व्यक्ति अपनी बचत पर निर्भर हो सकता है और इसलिये तुलनात्मक दृष्टि से थोड़ा हितलाभ देना पर्याप्त होगा । मगर दूसरी ओर यह भी कहा जा सकता है कि वह एकाएक अपने खर्च कम नहीं कर सकता और इसलिये हितलाभ ऊंची दर से देना उचित है । स्थायी रूप से बंद हो जाने वाली कमाई के बारे में इन तर्कों के विपरीत तर्क दिये जाते हैं । सम्भवतः दोनों ही तर्क-पद्धतियां सही हैं । परन्तु जब दोनों तर्क-पद्धतियों के उदाहरण एक साथ एक ही देश के क़ानूनों में दीख पड़ते हैं तो अवश्य ही शंकाएं उठने लगती हैं ।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम परिषद के कार्य ने, विशेषतः सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन के प्रभाव के ज़रिये, राज्य सरकारों को अपने न्यूनतम हितलाभों के स्तर को निश्चित करने में सहायता दी है । उस कनवेन्शन में सुनिश्चित आंकड़ों का उल्लेख किया जा सका, यह विभिन्न देशों में इस बारे में बढ़ते हुये एक मत का प्रतीक है कि किसी संभाव्य घटना में कितना हितलाभ काम चलाने लायक है । परन्तु यह ख्याल में रखना चाहिये कि परिषद में जो हुआ वह राज्य विधान सभाओं में चलने वाले तरीकों की पुनरावृत्ति मात्र थी और वांछित परिणाम राजनैतिक हितों में सामंजस्य से मिलते हैं न कि समस्याओं के वैज्ञानिक विवेचन मात्र से ।

कुटुंब भत्ते

जिस कुटुम्ब का पोषण मज़दूरी के आधार पर होना है उसके आकार का विचार मज़दूरी के दर में, प्रत्यक्ष रूप से नहीं किया जाता । हां यह अवश्य होता है कि मज़दूरी तय करते समय मालिक व मज़दूर दोनों के मन में जीवन स्तर, कुटुम्ब का औसत आभार, तथा कुटुम्ब के जीवन-स्तर को क़ायम रखने के लिये आवश्यक मज़दूरी की व्यवहारिक कल्पनायें रहती हैं, चाहे वह अस्पष्ट ही क्यों न हों । हर एक देश में वहां

पर काम चलाने लायक माने जाने वाले जीवन स्तर के अनुसार वयस्क मर्द को आम तौर पर जो मज़दूरी मिलती है वह कम से कम उसकी उपजीविका चलाने के लिये तो काफी होती ही है, बहुधा उसकी पत्नी के लिये भी काफी होती है। परन्तु मज़दूरी में परिवार के आकार के साथ घटने बढ़ने की क्षमता न होना ही स्वस्थ मज़दूरों के कुटुम्ब के अपूर्ण पोषण तथा अन्य कठिनाइयों का मुख्य कारण है।

यह तो सामान्य अनुभव की बात है कि बड़े कुटुम्ब और दरिद्रता का साथ रहता है। बहुत समय तक यह नैसर्गिक क्रम समझा जाता था और खासकर १९वीं शताब्दी में, जब जनसंख्या बहुत फुर्ती से बढ़ रही थी, सरकारें उन लोगों को जो कि अपनी औक़ात से ज्यादा औलाद पैदा करते थे इस ख्याल से आर्थिक सहायता देने में डरती थी कि कहीं माता पिता की परिवार पालन की ज़िम्मेदारी के बन्धन शिथिल न हो जांय। परन्तु जब यूरोप के कुछ भागों में परिवार पालन की ज़िम्मेदारी से बचने की भावना इतनी तीव्र हो बैठी कि जनसंख्या घटने की नौबत आ गई तब यह दृष्टिकोण उलट गया। इस दरम्यान इस शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में सामाजिक सुधार आन्दोलन बढ़ रहा था और नवीन पीढ़ी के कल्याण की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा था, तथा विद्यार्थियों को मुफ्त शिक्षण के साथ लागत मूल्य से कम दाम में भोजन तथा डाक्टरी सुश्रूषा भी मिलने लगे। आर्थिक क्षेत्र में, बच्चों के लिहाज से कर-योग्य आमदनी में छूट देने की शुरूआत की गई। कहीं कहीं और भी छोटी मोटी सुविधायें कुटुम्बों को (विशेषतः बडे कुटुम्बों को) तब से दी गई हैं। परन्तु इन सबसे बढ़ कर थीं कुटुम्ब भत्ता योजनाएं जो दूसरे महायुद्ध के अंत तक सिर्फ फ्रॉस तथा बेल्जियम में चालू थीं और अब सारे यूरोप में चल रही हैं, और धीरे धीरे ही क्यों न हो, दूसरे महाद्वीपों में भी फैल रही हैं।

युद्धोत्तर काल के आरंभ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम परिषद ने फिलाडेल्फिया में अपने सदस्य राष्ट्रों से कुटुम्ब कल्याण के कार्यक्रम की सिफारिश इन शब्दों में की:[1]

आम तौर पर समाज को आश्रित बच्चों के कल्याणार्थ माता पिता की सहायता की सामान्य उपाय योजना करके उनके साथ सहकार करना चाहिये।

बच्चों को पौष्टिक पोषण निःसंशय मिल सके, बड़े कुटुम्बों की परवरिश में सहायता हो तथा सामाजिक बीमे द्वारा बच्चों के लिये किये गये इंतज़ाम की पूर्ति हो, इस आशय से नक़दी, जिन्स के रूप में या दोनों प्रकार की सहायता की व्यवस्था होनी चाहिये।

जहां प्रयोजन बच्चों का पौष्टिक पोषण करना है वहां सहायता ऐसी सुविधाओं के रूप में होनी चाहिए जैसे मूल्य से कम क़ीमत में बच्चों को खाद्य पदार्थ देना, या

---

[1] आय सुरक्षा सिफारिश, १९४४, भाग II (सामाजिक सहायता), कंडिका २८ (मार्गदर्शक सिद्धांत) और उसके प्रयोग संबंधी सूचनाएं जो सिफारिशों के अनुबन्ध में दी गयी हैं।

अनेक बच्चों वाले कुटुम्बों को रहने को मकान देना, या स्कूल में भोजन देना।

जहां प्रयोजन बड़े कुटुम्बों के पालनपोषण में हाथ बंटाना है या बच्चों के लिये जिन्स के रूप में और सामाजिक बीमे के रूप में किये हुये इन्तज़ाम की पूर्ति करना है, सहायता बच्चों के प्रति दिये जाने वाले भत्ते के रूप में होनी चाहिये।

मां बाप की कमाई कुछ भी हो, यह भत्ता हरएक को नियत मापमान के अनुसार मिलना चाहिये। यह मापमान ऐसा होना चाहिये कि उसके अन्तर्गत मिलने वाला भत्ता बच्चे की परवरिश के खर्च का काफी बड़ा भाग हो, बड़े बच्चों की परवरिश पर जो अधिक खर्च आता है उसके लिये उसमे गुंजाइश हो तथा यह भत्ता, न्यूनतम के रूप में, हर एक ऐसे बच्चे को दिया जाय जिसके लिये सामाजिक बीमे के मार्फत कोई व्यवस्था नहीं की गई है।

जहां बच्चों को संभालने की पैत्रिक ज़िम्मेदारी को पूरा करने के लिये माता पिता को बाध्य नहीं किया जा सकता वहाँ समाज को ऐसे आश्रित बच्चों को परवरिश की ज़िम्मेदारी उठानी चाहिये।

उपर्निर्दिष्ट पाठ में यह दिखाई देगा कि जहाँ उद्देश्य बच्चों की तन्दुरुस्ती अच्छी रखना है वहां जिन्स के रूप में हितलाभ अधिक पसंद किये जाते हैं। इसके विरुद्ध, कुटुम्ब भत्ते असलियत में जनसंख्या संबन्धी नीति की एक सरल चाल है। मगर बाल कल्याण नीतियों के द्वितीय महायुद्ध के बाद के इतिहास ने कुटुम्ब भत्ते की विशेष भूमिका की इस समीक्षा की पुष्टि नहीं की है। इसके विपरीत कुटुम्ब भत्ते इन नीतियों के आधार-स्तंभ हो गये हैं। छोटे बच्चों वाले और जिनमें बच्चे नहीं हैं ऐसे घरों के जीवन स्तर के अन्तर को कम करने के लिये कुटुम्ब भत्ते एक मौलिक उपाय बन गये हैं। निःसन्देह आरंभ में इनका एक उद्देश्य जन्म संख्या की गिरती हुई प्रवृत्ति को रोकना था परन्तु इस प्रवृत्ति को उलटाने में, जैसा कि गत दस वर्षों में हो गया है, इनका कहां तक हाथ है इसका पता निःसन्देह रूप से नहीं लगाया गया है। आज तो ऐसा जान पड़ता है कि इनका मुख्य उद्देश्य छोटे बच्चों के जीवन में अवसरों की समानता बढ़ाना है। जहां ये भत्ते ऐसे लोगों को दिये जा रहे हैं जिनकी जन-संख्या जितने वेग से बढ़ना संभव है उतने वेग से हाल में ही बढ़ रही है, जैसे कि फ्रांस के बाहिरी कुछ भाग में, वहां अवश्य यही उद्देश्य होना चाहिये।

मूल नक़द हितलाभों के पूरक के रूप में कुटुम्ब भत्ते सामाजिक सुरक्षा की हर एक शाखा के भाग बन गये हैं। यह उचित ही है कि इस शिक्षणक्रम के पाठों में वर्णित हितलाभों में उन्हें प्रमुख स्थान दिया जाय क्योंकि उपजीविका के साधनों को पूर्ण कर सकने वाली आंग्ल सामाजिक सुरक्षा पद्धति का नियोजन करते समय श्री बीवरिज इस निर्णय पर पहुंचे थे कि कुटुम्ब भत्तों का होना अनिवार्य है। तर्कसंगत रूप में बनाई हुई किसी भी हितलाभ अनुसूची में इन्हें स्थान मिलना चाहिये और साथ ही ये सिर्फ कमाई में मिलाकर ही दिये जाने चाहियें वरना बड़े कुटुम्ब वाले व्यक्ति का हितलाभ उसकी काम करते समय की आमदनी से बढ़ जायगा।

सामाजिक सुरक्षा के अधिकाँश नये विकासों के समान ही, कुटुम्ब भत्ते दो स्वतंत्र वर्गों में विकसित हुए हैं । एक को सामाजिक बीमें की कल्पना से प्रेरणा मिली और दूसरे को सामाजिक सहायता की कल्पना से ।

पहले महायुद्ध के पश्चात शीघ्र ही, जब मज़दूरी बढ़ाने की मांग आम तौर पर बढ़ रही थी, फ्रांस के उद्योगपतियों के एक समूह ने कर्मचारी पर अवलंबित बच्चों की संख्या के अनुपात में दिये जाने वाले भत्ते के रूप में वेतनवृद्धि देना तय किया । बड़े कुटुम्ब वाले पुरुषों को नौकरी पर रखने में भेदभाव न किया जाय इसलिये नियोजकों ने एक समताकारक-निधि नामक आर्थिक युक्ति की संघटना की जिससे यह सुनिश्चित हो जाता था कि हर एक नियोजक पर प्रति कर्मचारी एक सा खर्च पड़ेगा । इस युक्ति की पुनरावृत्ति यदि आर्थिक कार्य-क्षेत्र की हर शाखा में की जाय या इसका विस्तार नौकरी के समस्त क्षेत्र में हो जाय तो इसे बीमा सिद्धांत का प्रयोग ही मानना होगा । यथार्थ में हम इसे कुटुम्ब भत्ते का बीमा भी कह सकते हैं क्योंकि समताकारक निधि और औद्योगिक चोटों के उत्तरदायित्व से सुरक्षा के लिये बनायी गयी मालिकों की पारस्परिक-निधि में, बहुत कुछ सदृष्य है ।

बीमा सिद्धांत पर बनी हुई योजनाओं में हितलाभाधिकार, योजना क्षेत्र में आने वाले उद्योग में कर्मचारी रहने की हैसियत पर निर्भर होते हैं । हक़ को सिर्फ नौकरी-शुदा लोगों तक सीमित करके यह योजनाएं उस खतरे को कम करती हैं जो, भत्ता अगर उदार मात्रा में हो तो गैर ज़िम्मेदार लोग भत्ते के भरोसे आलस्यमय जीवन बिताने के लिये बड़े कुटुम्ब उत्पन्न करके खड़ा कर सकते हैं । अतः बीमारी के बीमें के समान ही इसमें कोई न्यूनतम नियमित नौकरी की शर्त पूरी करना लाज़िमी रखा जाता है जैसे कि महीने में १८ दिन । पूरा भत्ता तभी दिया जायगा जब यह न्यूनतम नौकरी की गई हो वरना भत्ता नौकरी के प्रतिदिन के लिये किसी निश्चित दर से दिया जायगा । नौकरी के ज़रिये हासिल किया हुआ हक़ बीमारी, बेकारी तथा बुढ़ापे में या ऐसी अपंगता में जिसके कारण नियमित रूप से नौकरी करने की संभावना कम हो, बना रहता है । जहां अनाथों के लिये पेन्शन की व्यवस्था नहीं है वहां यह भत्ता वेतन अर्जक की मृत्यु के बाद भी चालू रहता है--कुछ योजनाओं में बढ़ी हुई दर से भी । कुछ देशों में स्वतंत्र व्यवसाइयों के लिये भी योजनाएं बनाई गई हैं और इनमें लगभग वही विस्तार हासिल किया गया है जैसा कि सार्वभौमिक योजनाओं में, जिनका हम अब उल्लेख करेंगे ।

सामाजिक सहायता प्रकार की कुटुम्ब भत्ता योजनाओं की शुरुआत सन् १९२६ में न्यूज़ीलैंड में हुई जो उस समय भी सामाजिक सुरक्षा आन्दोलन में अग्रणी था । पहले पहल भत्ता कम आमदनी वाले कुटुम्बों तक ही सीमित था पर कुछ साल बाद साधन प्रमाण (means test) हटा दिये गये । अमेरिका के संयुक्त राज्य के अतिरिक्त अधिकांश आंग्लभाषा-भाषी देशों ने तथा उत्तर यूरोप के देशों ने न्यूजीलैंड की योजना की नकल की है । चूंकि इन भत्तों का वित्तपोषण कराधान से होता है, ये सब माता

पिताओं को आर्थिक हैसियत के बावजूद तो मिलते ही हैं पर साथ ही, मालिकों की तरफ से मिलने वाले भत्तों की अपेक्षा इनके कारण मज़दूरी गिरने की संभावना भी कम होती है। तुलनात्मक दृष्टि से दर कम होने के कारण बच्चों के भत्तों के भरोसे जीवन व्यतीत करने का लालच बड़े कुटुम्बों में माता पिता को बहुत ही कम हो सकता है। कम से कम सम्बन्धित राज्य सरकारों के अनुभव ने उन्हें ऐसे किसी दुष्परिणाम को रोकने के लिये कोई खास रोक टोक लगाने पर मजबूर नहीं किया है और बच्चों की ठीक देखरेख करने के बारे में भी माता पिता पर सख्ती करने के उनके सामान्य अधिकार पर्याप्त सिद्ध हुए हैं। इस शर्त के बजाय कि माता या पिता कर्मचारी होना चाहिये (या जहां यह उचित हो, स्वतंत्र रूप से कमाने वाला होना चाहिये) इन योजनाओं में इतना ही आवश्यक रखा गया है कि देश में उनका निवास स्थायी हो जैसे कि भत्ते की माँग करने से लगातार १२ महीने पहिले से, वे देश मे मौजूद हों। एक आध दूसरी योजना में इसके साथ राष्ट्रीयता की शर्त भी लगाई जाती है।

बहुतांश सार्वजनिक योजनाओं के अन्तर्गत भत्ता पाने की हक़दार माता होती है क्योंकि बच्चे के हितार्थ खर्च करने की उम्मीद पिता के बनिस्बत माता से अधिक की जाती है। हर हालत में भत्ता उसी को दिया जाता है जो उस समय बच्चे का पालन-पोषण कर रहा हो चाहे वह धर्मार्थ संस्था ही क्यों न हो। जहां जनसंख्या के हर एक बच्चे को यह सुरक्षा दी गई है वहां बच्चे और भत्ता पाने वाले के सच्चे रिश्ते का कोई महत्व नहीं बचता। आवश्यक शर्त यही है कि बच्चा वाक़ई में भत्ता पाने वाले पर अवलंबित होना चाहिये और उसकी देखरेख में रहना चाहिये।

बीमा योजनाओं के अन्तर्गत दिये जाने वाले भत्तों के बारे में व्यवस्था कुछ दूसरे प्रकार की है। यदि भुगतान मालिक के मार्फत किया जाता है तो माता पिता में से जो भी नौकरी पर हो—अक़सर पिता ही होता है—उसे भत्ता देने में अधिक सहूलियत होती है। यदि भत्ता किसी समताकारक निधि के मार्फत दिया जाता है तो निधि, भत्ता देने के लिये मां बाप में से एक को चुन सकती है। व्यवहार में, मां के लिये ही अधिक पसंदी जान पड़ती है। सार्वभौमिक योजनाओं की अपेक्षा ये योजनाएं बच्चे और भत्ता पाने वाले के रिश्ते को अधिक महत्व देती हैं अन्यथा योजना में शामिल न रहने वाले लोगों के बच्चों को भी भत्ते देने की ज़िम्मेदारी उनके गले पड़ जाने की सम्भावना है। क़ानूनन मानी हुई रिश्तेदारी इस खतरे के विरुद्ध अच्छा प्रतिबन्ध है। मगर इसके लिये मान्य किए हुए रिश्तों की सीमा बहुत विस्तृत हो सकती है जैसे कि नौकर के, या उसकी पत्नी के बच्चे, विधियुक्त गोद लिये हुए बच्चे, नाती नातिने, या भाई बहिन जिनके मां बाप जीवित नहीं हैं।

अधिकांश योजनाओं के अन्तर्गत बच्चों को १६ वर्ष की आयु तक भत्ता देने की व्यवस्था होती है और बाद में शिक्षण चालू रहने तक या किसी पेशे में नवसिखुआ रहने तक भत्ता चालू रखना अनिवार्य होता है। भत्ता चालू रखने की शर्त से अवसर की समानता बढ़ाने का आशय व्यक्त होता है। अनेक बीमा योजनाएं उन लड़कियों के लिए

भी भत्ता चालू रखती हैं जो छोटे भाई बहिनों को संभालने में मदद करने के लिए घर पर रहती हैं और ऐसी भी कई योजनाएं हैं जो अपाहिज बच्चों के बारे में सारी वयोमर्यादाएं हटा देती हैं।

दोनों प्रकार की अधिकांश योजनाएं अब कुटुंब के उन सभी बच्चों को भत्ते देती हैं जो नियत वयोमर्यादा के अन्दर हैं। परन्तु ऐसी भी योजनाएं हैं जो सिर्फ दूसरे या सिर्फ तीसरे ही बच्चे के लिये भत्ता देती हैं और इस प्रकार अपना खर्च बहुत कम कर लेती हैं।

कुछ बीमा योजनाओं ने, जो अपने बच्चों की उचित देखभाल करने के लिये नौकरी पर न जाने वाली माताओं को विशेष भत्ता देती हैं, कुटुंब भत्ते की कार्यक्षमता में मार्के का सुधार किया है।

कुटुंब भत्ते की दर, पाने वाले के वेतन के साथ, घटती बढ़ती नहीं। या तो सारे बच्चों के लिए एक ही दर होती है या बच्चों की संख्या के अनुसार हर बच्चे के लिये दर बढ़ती जाती है। एक अपवाद छोड़ कर बाकी सारी सार्वभौमिक योजनाओं में पहली प्रथा पाई जाती है। बहुत सी बीमा योजनाओं में भी यही प्रथा है। क्रमशः बढ़ते हुए दरों का उदाहरण ४ योजनाओं के आधार पर नीचे दिया जाता है। पहले बच्चे के प्रति दिये जाने वाली दर को १ माना गया है।

बच्चे	मूल्य			
पहला बच्चा	१	१	०	१
दूसरा ,, ...	१.१	१	१	१.२५
तीसरा ,, ...	१.१	१.२५	१.५	१.५
चौथा ,, ...	१.४	१.७	१.५	१.८
पांचवां ,, ...	१.४	२.२	१.५	२.१
छठा ,, ...	१.४	२.२	१.५	२.३
सातवां ,, ...	१.४	२.२	१.५	२.९
आठवां ,, ...	१.४	२.२	१.५	२.९

बढ़ती हुई दर बड़े कुटुंबों की ओर प्रोत्साहन देती है पर साथ ही उसमें इस बात का भी ख्याल रखा गया है कि कुटुंब जितना बड़ा हो, भत्ते को पूर्ण जिविका स्तर तक पहुंचाने की आवश्यकता भी उतनी ही अधिक है।

एक सार्वभौमिक योजना ने यह भी ध्यान में रखा है कि बच्चे के खाने पीने का, कपड़े लत्ते का यहां तक कि रहने का खर्च भी उसकी उम्र के साथ बढ़ता जाय। बच्चे की उम्र ५ से १३ साल तक बढ़ते बढ़ते (और उचित होने पर बाद में भी) दर में भी १ से १.६ तक वृद्धि होती जाती है।

चूंकि भत्ते वेतन के अनुपात में नहीं दिये जाते बल्कि नियत रकम के रूप में होते हैं, उनके मूल्य की अन्तर्राष्ट्रीय तुलना सीधे साधे करना सम्भव नहीं है। फिर भी सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेंशन बनाते समय अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर ने, उन देशों के बारे में जो नियमित रूप से मजदूरी की सांख्यकी प्रकाशित करते हैं, कुटुंब भत्तों से सर्वसाधारण अनिपुण मज़दूर के वेतन का अनुपात निकाल लिया था। उससे यह पता चला कि सन् १९५० में पहले बच्चे के प्रति दिया जाने वाला भत्ता उस वेतन के ३.३ प्रतिशत से लेकर ११ प्रतिशत तक था। यदि गृहस्थी संभालने वाली माता के भत्ते का भी समावेश कर लिया जाय तो उन तीन योजनाओं में जिनमें माता को ऐसा भत्ता दिया जाता है, भत्ते की दरों का, प्रतिमानित मज़दूरी से प्रतिशत अनुपात, चार बच्चों वाले कुटुंब के लिए, नीचे दिये अनुसार था :

बच्चे	बेल्जियम	पोलैंड	फ्रांस
पहला बच्चा	११.७	२०.७	१५.५
दूसरा ,, ...	१०.३	१३.९	३१.०
तीसरा ,, ...	१३.५	१६.१	३१.०
चौथा ,, ...	१६.१	१६.१	२३.३
कुल ...	५१.६	६६.८	१००.८

इन भत्तों से, जो कि असाधारण ऊंची दर के हैं, उन माता पिता को अवश्य ही काफी प्रोत्साहन मिलता होगा जिनमें वात्सल्य की भावना अधिक है।

कुटुंब हितलाभों के लिये न्यूनतम प्रतिमान तय करते समय अन्तर्राष्ट्रीय श्रम परिषद के सम्मुख एक नाजुक समस्या थी। उसे कम उन्नत देशों की, जिनकी खासियत पैदाइश की ऊंची दर और बड़े परिमाण में निरक्षरता है, आर्थिक असमर्थता का विशेष ध्यान रखना पड़ा। ऐसे देशों में सर्वभौमिक योजना का सवाल ही नहीं उठता और बीमा योजना शहरों के अतिरिक्त अन्य स्थानों में मुश्किल से चलाई जा सकती है। इस परिस्थिति में परिषद इस नतीजे पर पहुंची कि कुछ देशों में जिन्स के रूप में हितलाभ जैसे कि खाद्यपदार्थ या रहने को मकान, कुटुंब भत्ते के बराबर ही उपयुक्त हो सकते हैं

और न्यूनतम प्रतिमान बनाने की सब से न्यायपूर्ण रीति यही हो सकती है कि राष्ट्रीय खर्चे का कुटुंब हितलाभों के लिये एक न्यूनतम स्तर तय कर दिया जाय, फिर हितलाभ चाहे नक़दी हो या जिन्स के रूप में। परिषद ने तय किया कि उन देशों में जहां योजना नौकरीशुदा जनसंख्या के आधे या उससे कम को लागू है यह न्यूनतम स्तर हर बच्चे के प्रति अनिपुण मज़दूर की मज़दूरी के ३ प्रतिशत के बराबर होना चाहिए और जहां योजना समस्त जनसंख्या को लागू है वहां १.५ प्रतिशत होना चाहिए।

तीसरे पाठ पर प्रश्न

१. सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत आने वाली सम्भाव्य घटनाओं का इन वर्गों में वर्गीकरण कीजिये :

(अ) उनके परिणामों की अवधि के अनुसार अल्पकालीन या चिरस्थायी; और

(ब) जिनके कारण आमदनी घटती है या खर्च बढ़ता है।

२. ऐसे उदाहरण दीजिये जिनमें एक सम्भाव्य घटना के लिये हितलाभ मिलते रहने के समय दूसरी सम्भाव्य घटना भी हो सकती है।

३. आप के मतानुसार सामाजिक सुरक्षा हितलाभों का उद्देश्य क्या है—व्यक्ति को जिस जीवन स्तर की आदत है उसके मुकाबले का स्तर दिलाना या जीविका चलाने लायक सहारा देकर बाकी सुरक्षा की ज़िम्मेदारी उस पर छोड़ देना ?

४. कम उन्नत देशों में, आपके मतानुसार कौनसा मार्ग अच्छा है—कुटुंब भत्तों पर पैसा खर्च करना या उसे उन सेवाओं पर खर्च करना जो बच्चों को खाद्यपदार्थ और कुटुंबों को रहने के लिए सस्ते मकान दिलाती हैं ?

पाठ ४

हितलाभ (चालू)

डाक्टरी, बीमारी तथा प्रसूति हितलाभ

ऐतिहासिक तथा कार्यकारण परम्परा की दृष्टि से बीमारी के बीमे को सामाजिक बीमे की आद्य शाखा माना जा सकता है। बिल्कुल ही सरल रूप में इसकी व्यवस्था ऐसे किसी भी स्थान में आसानी से की जा सकती है जहां सौ दो सौ व्यक्तियों का समाज बनाया जा सके और किसी डाक्टर की सेवाएं हासिल की जा सकें। बीमारी का अनुभव हरएक को होता है और इसका भय हर उम्र में बना रहता है। जवानी और मध्यम उम्र में स्वास्थ्य की हिफाज़त से अपाहिजता, वृद्धावस्था के लक्षण तथा मृत्यु तक देर से आती है। जो व्यक्ति बीमार हो जाता है उसे बेकारी का दुहरा खतरा रहता है—एक तो वह काम नहीं कर सकता और दूसरे अच्छा होने तक नौकरी छूट जायगी।

किसी भी साधारण बीमारी बीमा योजना के अन्तर्गत बीमान्वित व्यक्ति और उसके आश्रितों के औषधोपचार (प्रसव सम्बन्धी उपचार सहित) की व्यवस्था होती है। यह व्यवस्था स्वतंत्र डाक्टरी व्यवसाय करने वालों से तथा सरकारी आर्थिक सहायता पाने वाले अस्पतालों से करार करके उनके मार्फत की जाती है। बीमान्वित व्यक्ति को बीमारी में तथा प्रसव काल की छुट्टी में योजना की ओर से नक़दी हितलाभ दिया जाता है और उसकी मृत्यु पर या उसके आश्रित की मृत्यु पर—गो कि यह बहुत कम होता है—अंत्यविधि हितलाभ दिया जाता है। परन्तु सोवियत रूस और उसके साथी देशों में, न्यूज़ीलैंड, इंग्लिस्तान और चिली में डाक्टरी हितलाभ देने की ज़िम्मेदारी लोक-स्वास्थ्य प्रशासन ने अपने ऊपर ले ली है और इस आशय से, नक़द हितलाभ देने वाली किसी बीमा या सहायता योजना से उसका एक सूत्रीकरण कर दिया गया है।

डाक्टरी हितलाभ

व्यवहार में डाक्टरी सुश्रूषा के प्रशासन का वर्णन किये बिना डाक्टरी हितलाभ का वर्णन करना संभव नहीं है। यथार्थ में सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में उपस्थित होने वाली समस्याओं में सबसे नाजुक और पेचीली समस्याएं वे हैं जो डाक्टरी सुश्रूषा के

सम्बन्ध में आती हैं। असल में ये मानवी समस्याएं हैं और इसलिए इनका कोई स्थायी हल नहीं हो सकता। अर्थात् मुख्य कठिनाई पैसे की है और, कम से कम पश्चिमी जगत में, डाक्टरी व्यवसाय की वैयक्तिक परम्परा से उसमें और उलझनें पैदा हो जाती हैं। बीमान्वित जनता के तथा मरीज़ों की देख भाल करने वाले डाक्टरों के प्रतिनिधियों में हमेशा तनाव बना रहता है। फिर भी समझौते हर बार हो जाते हैं और समय समय पर जो सामंजस्य हुए हैं उनके कारण अधिक विवेकपूर्ण नीतियों की ओर क्रमशः प्रगति हो रही है।

वह सम्भावित घटना जिसके होने पर डाक्टरी हितलाभ दिया जाता है, वस्तुतः उसकी ज़रूरत ही है : अर्थात् सुरक्षित व्यक्ति की तबियत ठीक नहीं होती है। आम तौर से निवारक औषधियोजना लोक-स्वास्थ्य प्रशासन की ज़िम्मेदारी होती है परन्तु यह औषधोपचार सेवाओं के मार्फत यह प्रशासन प्रतिबंधक उपचार का इंतज़ाम भी कर सकता है जबकि अन्य सारे डाक्टरों को कोई संक्रामक रोग रिपोर्ट करने की हिदायत होती है।

कुछ अपवाद छोड़कर बीमारी बीमा योजनाओं के अन्तर्गत डाक्टरी हितलाभ पाने के लिये यह आवश्यक होता है कि अर्जदार के नाम, उपचार चालू होने के पूर्व, वर्ष भर या और किसी छोटी अवधि में, नियत न्यूनतम चंदे जमा हुए हों। पात्रता-अवधि निश्चित करने के लिये विविध सिद्धांत प्रचलित हैं जैसे कि :

पिछले ३ वर्षों में ६० घंटे की नौकरी

पिछले ४ महिनों में १ महिने का चंदा

पिछले १२ महिनों में ६ महिनों का चंदा

इस भिन्नता का कोई स्पष्ट तात्विक कारण नहीं जान पड़ता। पर लोक-स्वास्थ्य का एक उपाय होने की दृष्टि से इस हितलाभ के महत्व को देखते हुए, यह इच्छा हर जगह स्पष्ट है कि यह बीमेदार और उसके आश्रितों की पहुँच में बहुत आसानी से आ जाय। इन विविध प्रथाओं को देखते हुए सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन को "ऐसी पात्रता अवधि जो दुरुपयोग रोकने के लिए आवश्यक समझी जाय" का अनुमोदन करना पड़ा।

यह जरूर है कि लोक-डाक्टरी-सुश्रूषा सेवाओं के अन्तर्गत कोई पात्रता-अवधि नहीं रखी जाती। कुछ बीमा योजनाओं में भी पात्रता-अवधि नहीं रखी गई है और इनमें हर एक व्यक्ति को, जो बीमारी का निदान होते समय बीमायोग्य नौकरी में हो, हितलाभ मिलता है। यदि इसका अर्थ संकीर्णता से किया जाय तो यह परिणाम होगा कि अगर नौकरी छोड़ने के बाद ही एकदम बीमारी आ जाय तो हितलाभ न मिलेगा। इसलिए इन योजनाओं में "मुफ्त बीमा अवधि" की व्यवस्था होती है। उदाहरणार्थ, जो लोग बेकार होने के समय पिछले १२ महीनों में २६ हफ्ते बीमायोग्य नौकरी करते

हों उन्हें बेकारी के पहले ३ सप्ताह तक ऐसा समझा जाता है कि वे अभी भी नौकरी पर हैं और इस प्रकार इस काल में शुरू होने वाली बीमारी के लिये वे डाक्टरी हितलाभ—तथा बीमारी हितलाभ भी—पाने के हक़दार होते हैं।

जब तक डाक्टर का कार्य मुख्यतः तसल्ली दिलाना ही था और रोग निवारण की जितनी संभावना इलाज से थी उतनी ही आप से आप तबियत सुधर जाने की भी थी, तब तक नक़दी हितलाभ का महत्व भी डाक्टरी हितलाभ के बराबर था। परन्तु डाक्टरी हितलाभ का महत्व अब बहुत बढ़ गया है—विशेषतः गत ३० वर्षों में, जब कि अधिक परिणामकारक औषधियां खोजी गयीं और डाक्टरों को सुलभ की गईं। यही कारण है कि बीमारी बीमा अब मुख्यतः औषधोपचार दिलाने का ज़रिया बन गया है और आर्थिक हितलाभ, रोगनिवारण क्रिया का एक सहायक मात्र रह गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संगठन के सदस्य देशों को जिस आदर्श डाक्टरी सेवा की ओर बढ़ने का प्रयत्न करना चाहिये उसका वर्णन संगठन की परिषद ने १९४४ में अंगीकार की हुई डाक्टरी सुश्रूषा सिफारिश में बहुत विस्तारपूर्वक किया गया है। परन्तु सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन अङ्गीकार किये जाने तक जो आठ साल बीते उनमें बहुत ही कम देश इस आदर्श के करीब पहुँच पाये थे और, चूंकि कनवेन्शन में निर्धन देशों की सामर्थ्य का खास ख्याल रखा गया है उसकी शर्तें सिफारिशों से अधिक आसान हैं और प्रतिमान उतने ऊँचे नहीं हैं। अधिकांश देश, जिनमें बीमारी बीमा योजनाएं हैं, हितलाभ के बारे में तो आवश्यक स्तर तक पहुँच जाते हैं परन्तु यूरोप के बाहर के देशों में ये योजनाएं जनता के पर्याप्त हिस्से को सुरक्षित करने में असफल हुई हैं।

हर एक डाक्टरी सुश्रूषा सेवा निम्नलिखित प्रकारों की सुश्रूषाओं की व्यवस्था करती है लेकिन उपलब्धता, वैशिष्ट्य और उदारता की मात्रा भिन्न हो सकती है :—

सामान्य डाक्टरी सुश्रूषा (मरीज़ को उसके घर जाकर देखने की सुविधा सहित);

रोग निदान के लिये सुविधाएं;

औषधि और शस्त्रक्रिया विशेषज्ञों द्वारा चिकित्सा;

औषधियों की उपलब्धि;

दाइयों तथा डाक्टरों द्वारा प्रसूतिका सुश्रूषा;

रोगी परिचर्या तथा अस्पताल में इलाज;

दांतों की हिफ़ाज़त।

इनके साथ और भी सहूलियतें जोड़ी जा सकती हैं जैसे कि अनेक प्रकार की शारीरिक चिकित्सा, नकली दांत, बनावटी अङ्ग, रोग मुक्ति के बाद पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त होने तक हिफ़ाज़त, घर पर परिचर्या और मरीज़ के लिये सवारी की व्यवस्था।

पूर्णत्व के करीब पहुँचने वाली डाक्टरी सुश्रूषा-सेवा क़ीमती होती है। यद्यपि डाक्टरों की सेवाओं की, या खाने पीने की दवा की मांग की, स्वाभाविक सीमाएं हैं तो भी इन

सीमाओं के अन्दर अन्धाधुन्ध खर्च होने की गुंजाइश है। इसलिये हर एक डाक्टरी सुश्रूषा सेवा को अधिकतम मितव्ययिता का प्रयत्न करना आवश्यक है यानी एक नियत लागत में अधिक से अधिक कार्यकुशलता लाना ज़रूरी है। डाक्टरी सुश्रूषा के बारे में इस कल्पना का यथार्थ रूप समझने के लिए हमें लागत तय करने की कोई कसौटी ढूंढनी चाहिये। यहां हम उस आर्थिक विशलेषण का प्रयत्न नहीं कर सकते जिससे अधिकतम लागत निश्चित करने का नियम निकल सके। यह कसौटी सैद्धांतिक तथा रूपरेखा मात्र ही होगी। फिर भी, यह बहुत संभव है कि किसी हद तक बढ़ती हुई लागत से बढ़ती हुई कार्यकुशलता प्राप्त हो और बाद में कार्यकुशलता लागत के परिमाण में न बढ़े। संभवतः, हम यह विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि इस संदर्भ में "अधिकतम मितव्ययिता" का अर्थ है रोग निवारण तथा सक्रिय जीवन की अवधि बढ़ाने की नीति के आधार पर असमर्थता के अवसरों और अवधि को अधिक से अधिक घटाना। यह असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि दो भिन्न सेवाओं की मितव्ययिता का तुलनात्मक मूल्यांकन कभी नहीं किया गया है। परन्तु इलाज के खास तरीक़ों के बारे में ऐसा किया गया है और ऐसे अनुसन्धानों का क्षेत्र-विस्तार अवश्य फ़ायदेमंद होगा। अभी तो हमें डाक्टरी सुश्रूषा सेवाओं की संघटना के लिए अपनाई हुई भिन्न नीतियों की मितव्ययिता के बारे में प्रायः सिद्ध किये हुए अन्तर्ज्ञान से ही सन्तुष्ट होना पड़ता है।

डाक्टरी पेशे के लोग मितव्ययिता के बजट संबन्धी दृष्टिकोण से चिढ़ेंगे और दावा करेंगे कि परिणामकारकता उनकी खास ज़िम्मेदारी है। यह तो स्पष्ट है कि परिणामकारकता अनेक शर्तों के एक साथ पूरे होने पर अवलंबित है। सिर्फ यही काफी नहीं है कि डाक्टर अपना कर्त्तव्य करने को तैयार हो। रोग मुक्ति के लिए मरीज़, परिचारक-वर्ग तथा बाह्य परिस्थिति सभी अनुकूल होनी चाहियें। तो सबसे पहले कुशल तथा सच्ची लगन से काम करने वाले डाक्टर की आवश्यकता है जिसमें मरीज़ को विश्वास हो। कौशल तथा कार्य करने की सच्ची लगन, डाक्टरी विद्यार्थी की मूल-योग्यता के सुशिक्षण से, सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना के संवर्धन से, और ऐसा पारिश्रमिक देकर जो अधिकांश डाक्टरों की राय में अनुचित न हो (मनुष्य-स्वभाव से इससे अधिक उम्मीद करना व्यर्थ है) हासिल की जा सकती है। दूसरे प्राविधिक क्षेत्रों के समान ही औषधियों में सतत प्रगति हो रही है और डाक्टर को इस प्रगति के साथ रहने की सुविधा मिलना आवश्यक है। यह तब तक संभव न हो सकेगा जब तक कि उसका पारिश्रमिक इतना न हो कि उसे इसके लिये फुरसत मिले, और जब तक उच्च अध्ययन के लिये सुविधाएं न हों।

विश्वास उत्पन्न करने के लिए आवश्यक-परिस्थिति का वर्णन इतना आसान नहीं है। ऐसा कहते हैं कि कुछ देशों में मरीज़ और डाक्टर दोनों ही डाक्टरी पेशे की शपथ के अन्तर्गत गुप्तता रखने के वचन पर पूर्ण विश्वास रखते हैं। जब तक रोग-निदान डाक्टरी-व्यवस्था की देखभाल करने वाले अधिकारियों तथा बीमा संस्था को बतलाया जा सकता है तब तक इस गुप्तता से कोई प्राशासनिक दिक़्क़त खड़ी नहीं

होती। फिर यह विश्वास भी काफी दृढ़ है—विशेषतः उन देशों में जहां श्रमिकों को निजी व्यवसाय के रूप में चलने वाले डाक्टरी पेशे का अनुभव हो चुका है—कि चिकित्सक डाक्टर पर विश्वास पैदा होने के लिए यह आवश्यक है कि मरीज़ अपनी पसन्द का डाक्टर चुन सके और उससे असन्तुष्ट होने पर उसे बदल कर दूसरा डाक्टर चुन सके। परन्तु यह अस्वाभाविक होगा कि मरीज़ अपना विशेषज्ञ या सर्जन चुनने की इच्छा करे—जिनकी योग्यता के बारे में वह कोई अन्दाज नहीं लगा सकता। उन देशों में जहां सामान्य बीमान्वित जनता निजी डाक्टर लगाने की हैसियत कभी भी नहीं रखती थी, खुद का डाक्टर चुनने की कोई खास इच्छा नहीं दीख पड़ती। परन्तु इस निर्वाचन-स्वातंत्र्य का एक और पहलू है। ऐसा कहते हैं कि निर्वाचन स्वातंत्र्य से मरीज़, अपनी पसन्द के डाक्टर का व्यवसाय बढ़ा कर उसे फायदा पहुँचा सकते हैं और इस प्रकार आर्थिक प्रतिस्पर्धा की सामान्य विधि को कार्यक्षम बनाते हैं। मगर इस सम्बन्ध में प्रतिस्पर्धा हमेशा हितकर नहीं होती, चूंकि मरीज़ अक़सर उस डाक्टर को अधिक पसन्द करता है जो खुश करने को तत्पर हो न कि उसे जो शुद्ध अन्तःकरण का हो।

उपचार की परिणामकारकता सिर्फ वैयक्तिक प्रश्नों पर ही अवलंबित नहीं रहती बल्कि डाक्टर की भौतिक साधनों की उपलब्धि पर भी निर्भर है। अचूक रोग निदान के बगैर उपयुक्त औषधोपचार-योजना, उचित आराम की सलाह देना असंभव है और अपना कार्य सच्चाई से करने वाला डाक्टर रोग-निदान के लिये आज जो विस्तृत साधन उपलब्ध हैं उनका अधिक से अधिक उपयोग करना चाहेगा। फिर सामान्य चिकित्सक को तय करना होगा कि कौन सा इलाज किया जाय, या मरीज़ को किसी विशेषज्ञ को दिखाया जाय, या अस्पताल में भर्ती करा दिया जाय। अगर उसे आर्थिक परिणामों का भी यथोचित ख्याल रखना है तो उसका निर्णय वाक़ई में नाजुक है। औषधि बनाने वाले नई और अक़सर कीमती दवाओं की विस्तृत श्रेणी उसकी नज़र में लाते रहते हैं। इनमें से कोई दवा वह कैसे चुने? मरीज़ को काम पर जाने की मनाई की जाय या नहीं, उसकी कोई शारीरिक चिकित्सा की जाय या नहीं, उसे किसी विशेषज्ञ के पास या अस्पताल में भेजा जाय या अपने ही इलाज में रखा जाय, इन सारे प्रश्नों के उत्तर डाक्टरी-सुश्रूषा-सेवा के लिए बड़े वित्तीय प्रभाव डालने वाले हैं।

बीमारी बीमा योजनाओं की व्यवस्था आमतौर पर सामान्य लोग करते हैं। वे मितव्ययिता के प्रश्न को दूसरी ही तरह देखते हैं। उनकी दृष्टि खर्चा टालने की ओर लगी रहने की संभावना अधिक है और उनमें, अल्पकालिक परन्तु खर्चीले उपायों की ओर साशंकता से देखने की प्रवृत्ति होती है, चाहे आखिर में ये उपाय सस्ते ही पड़ते हों। फिर वे डाक्टर को स्वास्थ्य-केन्द्र (Health Centre) या अनेक रोगों के लिए बने दवाखाने में बैठा कर उसके समय की बचत करना चाहेंगे। देखभाल के लिये डाक्टरी निरीक्षक रखे जायेंगे जो चिकित्सक द्वारा दिये हुए भिन्न उपचारों की छान बीन करेंगे और उनके औचित्य के बारे में प्रश्न पूछेंगे। निरीक्षण, डाक्टर के

व्यवसायिक-निर्णय की स्वतंत्रता पर बंधन डाल देता है और जब तक यह बहुत ही चतुराई से न किया जाय उसके आत्मसम्मान को धक्का लगेगा और उसकी उदासीनता का परिणाम उसके सारे काम पर पड़ेगा।

इस प्रकार मितव्ययिता का सिद्धांत डाक्टरी सुश्रूषा दिलाने की क्रिया की हर एक स्थिति से, विद्यार्थी के प्रशिक्षण से लेकर औषधि चुनकर उससे इलाज करने तक, संबन्धित है। परन्तु जिस सीमा तक यह सिद्धान्त लागू किया जा सकता है वह सेवा के संगठन की रीति के अनुसार घटती बढ़ती है।

मोटे तौर पर, बीमान्वित व्यक्ति को डाक्टरी सुश्रषा दिलाने के तीन तरीके हैं :

बीमान्वित व्यक्ति द्वारा अपने इलाज पर खर्च की हुई रकम नियत हद तक बीमा संस्था द्वारा वापिस की जाना;

डाक्टरी-सुश्रूषा-सेवा द्वारा चलाये हुए दवाखानों में वैतनिक अमले से सुश्रूषा कराना;

औषधोपचार का खर्च बीमा संस्था द्वारा दिया जाना।

हर एक योजना में सामान्य चिकित्सा के लिए इनमें से एक तरीका अख़त्यार किया जाता है पर अन्य प्रकार की सुश्रूषा के लिए कुछ हद तक दूसरे तरीके भी काम में लाये जाते हैं।

सीमित धन लौटाने का तरीका, जो व्यापारी बीमे में आमतौर से अपनाया जाता है, सामाजिक बीमे में बहुत कम देशों ने अख़त्यार किया है। सिद्धान्ततः बीमा संस्था, रोगी के डाक्टर चुनने के स्वातंत्र्य में या उसने औषधी विक्रेता या अस्पताल से की हुई व्यवस्था में कोई भी हस्तक्षेप नहीं करती। परन्तु उसे अपना उत्तरदायित्व तो अवश्य ही मर्यादित रखना है। इसलिए, अगर सम्भव हो तो, डाक्टरी व्यवसाय की सहमति से, वह डाक्टर से मिल सकने वाली हर एक सेवा के लिये फ़ीस का मापदंड निश्चित कर देती है और बीमान्वित व्यक्ति को मापदंड में दी हुई फ़ीस का अधिकांश भाग (७५ से ८० प्रतिशत तक) वापिस कर देती है। चूंकि डाक्टर को यह मालूम रहता है कि मरीज़ को वापसी मिलेगी, उसकी प्रवृत्ति, मरीज़ की देश-शक्ति के अपने अनुमान के अनुसार फ़ीस बढ़ाने की होती है। परन्तु ऐसे शहर में रहने वाला मरीज़ जहां डाक्टरों में काफी प्रतिस्पर्धा है अक़सर इस प्रवृत्ति से अपना संरक्षण कर सकता है। पैसे वापिस करने का यह तरीका डाक्टर और मरीज़ के परम्परागत रिश्ते की पूर्ण रूप से सुरक्षा करता है परन्तु इसमें सुसंगत डाक्टरी-सुश्रूषा-संघटना के निर्माण की संभावना नहीं रहती। यह ऐसा तरीका है जो निर्धन मरीज़ को मुसीबत में डाल देता है क्योंकि उस गरीब के पास बिल चुकाने के लिये नक़दी पैसे का अभाव तो होता ही है, पर साथ में उसे खर्चे का काफी भाग खुद बर्दाश्त भी करना पड़ता है। लेकिन यह कठिनाइयां, कुछ लंबी बीमारियों में पूरा खर्च वापिस करके, कम की जा सकती हैं और की भी जाती हैं।

दूसरा तरीका पहले के बिल्कुल विपरीत है। बीमा संस्था या लोक-स्वास्थ्य

विभाग द्वारा सभी श्रेणियों का डाक्टरी अमला, अन्य असैनिक सेवकों की भांति, (अक़्सर अल्पकालिक) वेतन पर नियुक्त किया जाता है और इनके काम करने के पॉलिक्लिनिक (अनेक रोगों के उपचार के लिए बना दवाखाना) भी इसी संस्था या विभाग के होते हैं। अमले की नियुक्ति, कम से कम सिद्धांत रूप में तो, उनकी योग्यता के अनुसार होती है। हर पॉलिक्लिनिक में उसके परिमाण के अनुसार विशेषज्ञ, मददगार, कंपाउण्डर आदि का अमला होता है और इसी तरह अस्पतालों में भी परिमाण तथा चिकित्सा वैशिष्ठ्य के बारे में भिन्नता होती है। अमला एक दल की भांति काम करता है और रोग-निदान होते ही मरीज़ सही विशेषज्ञ के हवाले कर दिया जाता है। पॉलिक्लिनिक से दूर रहने वाले मरीज़ों की सेवा या तो चलते फिरते दवाखानों द्वारा की जाती है या छोटे प्राथमिक-सहायता केन्द्रों द्वारा और अगर आवश्यकता पड़े तो उन्हें अस्पताल पहुँचा दिया जाता है। इलाज के तरीकों पर डाक्टरी निर्देशकों का नियंत्रण रहता है और मितव्ययिता की दृष्टि से तैयार की हुई ख़ास औषधि-सूची का उपयोग किया जाता है। बहुत विचारपूर्वक की हुई ऐसी संगठना में डाक्टर चुनने की स्वतंत्रता, या एक ही डाक्टर द्वारा आख़िर तक इलाज करवाने की गुंजाइश, नहीं रहती, परन्तु चिकित्सा का पूरा इतिहास बहुत अच्छी तरह रखा जाता है। दूसरी ओर मरीज़ को, निजी व्यवसाय करने वाले डाक्टर के यहां के कुंद वातावरण के बदले यहां के भव्य उपकरणयुक्त परामर्श-कमरे को देखकर ही तसल्ली हो जाती है। लैटिन अमेरिका के सामाजिक बीमे में और चिली, रूस तथा लोक-प्रजातंत्र राज्यों की राज्य-डाक्टरी-सुश्रूषा सेवाओं में एकमात्र यही पद्धति अपनाई गई है। इसके भी विशिष्ट दोष हैं :

नौकरशाही जिसमें वैयक्तिक ज़िम्मेदारी का लोप हो जाता है और उस सच्ची, पर अवर्णनीय, भावना का लोप होना जो डाक्टर-मरीज़ के वैयक्तिक संबन्ध में रहती है।

तीसरे तरीके को इन दो के बीच की स्थिति—शायद दूसरे तरीके की ओर बढ़ता हुआ कदम—कहा जा सकता है। इसमें बीमा संस्था स्वयं ही डाक्टर, औषधि-विक्रेता तथा अस्पताल को पैसे चुकाती है। आम तौर पर मरीज़ को कुछ भी नहीं देना पड़ता। मितव्ययिता लाने के लिए भुगतान सीमित नहीं किये जाते बल्कि अपव्ययी उपचार-प्रकारों को छोड़ कर मितव्ययिता हासिल की जाती है। संबन्धित व्यवसायों और संस्थाओं से सामूहिक करार करके ऐसा किया जाता है। उदाहरणार्थ इनमें ऐसी "पेटेंट दवाइयां" देने की मुमानियत होती है जिनका बहुत विज्ञापन किया जाता है मगर जिनके बदले देने लायक दूसरी औषधियां तैयार की जा सकती हैं। यह भी बन्धन रखा जा सकता है कि रोग-निदान और उपचार के मंहगे तरीके वरिष्ट डाक्टरी अधिकारी की इजाज़त के बग़ैर अख़्तयार न किये जायं। जो डाक्टर आवश्यकता से अधिक दवाइयां दिलाकर बेकार ख़र्च बढ़ाते हैं या अयोग्यता प्रमाण-पत्र देने में, बहुत उदार होते हैं उन्हें दंड दिया जा सकता है। कुछ हद तक डाक्टर चुनने की सहूलियत रहती है और सामान्यतः डाक्टर

द्वारा अपने मतानुसार इलाज करने पर ऐसे बन्धन नहीं रहते जो, यदि वह मामूली हैसियत के व्यक्ति का इलाज निजी तौर पर करता, तो उसे खटकते ।

तीसरे तरीके के अन्तर्गत पारिश्रमिक देने की भिन्न भिन्न प्रथाएं हैं : एक एक सेवा की फ़ीस, या एक बीमारी की फ़ीस, या हर एक व्यक्ति के लिये फ़ीस देना ।

हर सेवा के लिए फ़ीस देने की प्रथा निजी व्यवसाय की प्रथा से मिलती जुलती है । व्यवसाय की सहमति से, डाक्टर जो भी सेवाएं कर सकता है उनकी फेहरिस्त बनाई जाती है और हर एक सेवा के लिए फ़ीस नियत कर दी जाती है । इस पद्धति में सुविधा यह है कि डाक्टर को उसकी सेवा के विस्तार और महत्व के अनुसार पारिश्रमिक मिल जाता है, और असुविधा भी स्पष्ट है कि वह जरूरत से ज्यादा सेवाएं देने को तत्पर हो जाय ।[1] वापिसी-पद्धति के अनुसार ही, इस पद्धति में भी बीमान्वित व्यक्ति चाहे जब डाक्टर बदल सकता है । परिणामस्वरूप डाक्टर और मरीज़ में स्थायी सम्बन्ध स्थापित करने में इस पद्धति से उत्तेजन नहीं मिलता ।

प्रति व्यक्ति के हिसाब से फ़ीस देना इससे सरल है । यहां भी व्यवसाय की सहमति से सामान्य व्यवसायिक डाक्टर को ऐसे हरएक व्यक्ति के बारे में नियत फ़ीस मिलती है जिसने बीमारी के मौके पर इलाज करवाने के लिये उसे औपचारिक रीति से चुन रखा है । डाक्टर बदलने की इजाज़त सिर्फ समय समय पर ही होती है या औपचारिक रीति से मिलती है। वास्तव में डाक्टर का हित इसी में रहता है कि निवारक सुश्रूषा से अपने बीमान्वित व्यक्ति को तन्दुरुस्त रखा जाय और जितना आवश्यक हो उससे अधिक ख्याल न दिया जाय । दूसरी ओर सामान्य व्यवसायिक डाक्टर की प्रवृत्ति जल्दी से जल्दी बीमारी की ज़िम्मेदारी विशेषज्ञ या अस्पताल पर ढकेल देने की हो सकती है । व्यक्ति पीछे फ़ीस देने की पद्धति विशेषज्ञों के बारे में नहीं अपनाई जाती । उन्हें या तो हर सेवा के लिये फ़ीस दी जाती है या वेतन दिया जाता है ।

दूसरा और तीसरा तरीका जिन योजनाओं ने अपनाया है, उन में, आम तौर पर सारी सुश्रूषा मरीज़ के लिये मुफ्त होती है । फिर भी इनमें से कुछ योजनाओं में उसे कुछ मौकों पर पैसे देने पड़ते हैं जैसे कि पहले परामर्श के समय कुछ नाममात्र शुल्क, या नुस्खे की या नकली दांतों की कीमत का कुछ भाग । जहां बीमान्वित जनता का जीवन स्तर, जीविका स्तर से ऊंचा है, वहां मितव्ययिता के महत्व के ये मामूली स्मरण चिन्ह उचित ही जान पड़ते हैं । तो भी, तीसरा तरीक़ा अपनाने वाली योजनाओं में ऐसे अवसर कम नहीं आते जब कि बीमेदार को अपने आश्रितों की चिकित्सा के मूल्य का काफ़ी बड़ा भाग देना पड़ता है और इस तरीके का समर्थन सिर्फ पैसे की कमी के

[1] मगर इस असुविधा को डाक्टरों की संस्था को बीमे के चन्दे की आय का एक हिस्सा देकर उसे संतोषजनक रीति से आपस में बाँटने की ज़िम्मेदारी उस पर छोड़ कर दूर किया जा सकता है ।

कारण ही किया जा सकता है।

अधिकांश बीमारी बीमा योजनाओं में डाक्टरी सुश्रूषा देने की अवधि पर प्रतिबंध रखा जाता है। सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन के अन्तर्गत इलाज २६ हफ्तों के बाद बंद कर देने की इजाज़त है। अस्पताल की सुश्रूषा के लिये ऐसी मर्यादा आज भी आम है। अस्पताल के अतिरिक्त दी जाने वाली सुश्रूषा के बारे में यह मर्यादा प्रसरणशील होती है। इलाज तब तक चलता रहता है जब तक मरीज़ बीमायोग्य नौकरी में रहता है या जब तक उसे नकदी बीमारी हितलाभ मिलता रहता है। दूसरी ओर लोक-डाक्टरी-सुश्रूषा सेवाओं में मरीज़ का इलाज अमर्यादित काल तक होता है जब तक कि वह ठीक न हो जाय या व्याधि स्थायी न मान ली जाय।

सामाजिक सुरक्षा संस्थाएं डाक्टरी सुश्रूषा देने के लिए जो तरीके अपनाती हैं उनका यह अति-संक्षिप्त वर्णन पूर्ण करने के लिये हम एक बार और १९४४ की डाक्टरी सुश्रूषा सिफारिशों की ओर देख लें। उस अत्यन्त विस्तृत रूप में वर्णित पाठ में जनसमुदाय को डाक्टरी सूश्रूषा दिलाने की एक के बाद एक आने वाली स्थितियों में उपयुक्त तरीकों की श्रेणी का विचार किया गया है परन्तु वह उस भविष्य की ओर विश्वास से देखता है जब अंत में सारी जनता की सुश्रूषा के लिये लोक-सेवाओं की स्थापना होगी। इन सेवाओं का अमला वैतनिक रखना ही पसंद किया जायगा और इनकी संघटना ऊपर वर्णित दूसरे तरीके पर होगी। इसमें तीसरे तरीके की, कुछ हद तक डाक्टर चुनने की सुविधा की नीति, तथा कौटुम्बिक डाक्टर संस्था की व्यवस्था और जोड़ी जा सकती है। इस सिलसिले में यह लिखना रोचक है कि चिली में जहां दूसरा तरीका कोई ३० साल से काफ़ी कठोरता से चल रहा है हाल ही में कुछ हद तक डाक्टर चुनने की सुविधा दी गई है।

बीमारी हितलाभ

बीमारी हितलाभ-दायक संभाव्य घटना की व्यवहारिक परिभाषा यह हो सकती है—कमाई में ऐसी बीमारी या चोट के कारण बाधा पड़ना जिसकी चिकित्सा काम पर जाना बंद किये बिना संभव नहीं है। मरीज़ का काम से गैरहाज़िर रहना आवश्यक है ऐसा प्रमाणपत्र देते समय डाक्टर को उसकी हालत और उसके व्यवसाय का उसकी बीमारी पर क्या परिणाम हो सकता है इसका ध्यान रखना आवश्यक है। एक बीमारी जो खदान में काम करने वाले मज़दूर को काम करने के अयोग्य कर देती है, क्लर्क को शायद अयोग्य न करे। यह निश्चित है कि इलाज कुछ अवधि के लिये ही होगा और, आज नहीं तो कल, मरीज़ काम पर फिर जायगा। परन्तु कुछ मौकों पर डाक्टर को शुरू से ही पक्का पता होता है कि मरीज़ पूर्णतः कमी भी न सुधरेगा या बीमारी का अंत मृत्यु में होगा। ऐसे उदाहरण भी बीमारी की परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं और बीमारी हितलाभ के बाद अपाहिजता या उत्तरजीवियों के

हितलाभ मिलते हैं ।

क़रीब क़रीब सारी योजनाओं में बीमारी हितलाभ का हक़ कोई पात्रता अवधिपूर्ण करने पर अवलंबित रहता है जो अधिकांश मामलों में वही होती है जो डाक्टरी-हितलाभ के लिये लगाई जाती है, परन्तु कभी कभी अधिक कठिन भी होती है । फिर भी यह बीमारी से पिछले १२ महीनों में ६ चंदेदार महीनों से अधिक कभी भी नहीं होती । सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन के अन्तर्गत दोनों हितलाभों के लिये एक सी ही सूचनाएं दी गयी हैं ।

यदि काम करने की अयोग्यता थोड़े दिन ही रहे तो अधिकांश योजनाओं में बीमारी हितलाभ नहीं दिया जाता । यह प्रतीक्षा अवधि अब आम तौर पर ३ दिन की रहती है और सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन में भी यही अवधि स्वीकृत है । प्रतीक्षा अवधि रखने का उद्देश्य वस्तुतः खर्च कम करना है । आधी के करीब बीमारियां अल्पकालीन होती हैं और ऐसी बीमारी औसतन हर एक व्यक्ति को साल में एक बार होती है । हितलाभ के दावे पर होने वाली कार्यवाही की कीमत का बीमारी की अवधि से कोई सम्बन्ध नहीं होता और इसलिये जब हितलाभ अवधि छोटी होती है तब प्रशासनिक खर्च का हितलाभ की रकम से अनुपात बहुत ऊंचा हो जाता है । साथ ही ऐसे दावों में असमर्थता प्रमाणपत्रों की सत्यता की जांच करना भी असंभव होता है और बारम्बार इसका दुरुपयोग होना संभव है ।

यदि बीमान्वित व्यक्ति को साल में एक आध बार कुछ दिन मज़दूरी के बगैर गुज़ारने पड़ें तो उसे कोई खास कठिनाई नहीं होती परन्तु, मान लीजिये कि अयोग्यता के, एक के बाद एक ऐसे कई दौरे आ जायँ तो ? जिन योजनाओं में काफ़ी प्रगति हो चुकी है वे इस संभावना का भी ख्याल रखती हैं । उदाहरणार्थ ऐसी शर्त रखी जा सकती है कि १२ महीने के अन्दर यदि उसी रोग का दूसरा दौरा आजाय, या बीमारी से पिछले ३ हफ्तों में १२ दिन बीमारी या बेकारी में जा चुके हैं तो दुबारा प्रतीक्षा अवधि नहीं लगाई जायगी ।

बीमारी हितलाभ की दर इन तीन तरीक़ों में से किसी एक से आंकी जाती है :

(अ) पिछली मज़दूरी के प्रतिशत के रूप में;

(ब) ऊपर दिये अनुसार, पर साथ में सामान्य कुटुंब-भत्ते या आश्रितों के लिये विशेष पूरक हितलाभों सहित;

(स) सब को एक ही दर से बुनियादी भत्ता और साथ में सामान्य कुटुंब-भत्ता या आश्रितों के लिये विशेष पूरक हितलाभ ।

(अ) और (ब) सूत्रों के अनुसार आंकी हुई दर हाल ही की मज़दूरी पर आधारित होती है । उदाहरणार्थ बीमारी के पिछले ३ महीनों की रोज़ाना औसत आमदनी पर । हितलाभ का हिसाब लगाने के लिए हर वख्त मज़दूरी की अधिकतम दर विहित करने की प्रथा है और चंदा भी उसी अधिकतम दर पर लिया जाता है । इसलिये वास्तविक मज़दूरी इस अधिकतम से जितनी अधिक होगी, हितलाभ का वास्तविक

मज़दूरी से अनुपात उतना ही कम होगा। यदि नाममात्र (नक़दी) मज़दूरी का स्तर बढ़ रहा है, जैसा कि आजकल अक्सर होता है तो इस अधिकतम को भी बारम्बार उस से मिलाते रहना आवश्यक हो जाता है।

जिन योजनाओं में सूत्र (स) के अनुसार हितलाभ दिये जाते हैं उनमें वे कानूनन किसी मज़दूरी से संबन्धित नहीं रहते परन्तु व्यवहार में आशय यह रहता है कि वे अनिपुण श्रमिक की मज़दूरी के एक अंश के प्रतीक हों। इसलिये जब नक़दी मज़दूरी का स्तर बढ़ता है तब इन्हें भी उससे मिलाने की आवश्यकता होती है।

सूत्र (अ) का उपयोग करने वाली योजनाएं आजकल यूरोप में बहुत कम हैं। वहां अधिकांश देशों ने कुटुंब भत्ते या, कम से कम, आश्रितों के लिये पूरक हितलाभ देना शुरू कर दिया है। परन्तु लैटिन अमेरीका में अभी तक अधिकांश योजनाएं इसी प्रकार की हैं। इन योजनाओं के अन्तर्गत हितलाभ का मज़दूरी से अनुपात ५० से ७५ या ९० प्रतिशत तक होता है।

उन योजनाओं में भी, जहां सूत्र (ब) अधिक पसंद किया गया है मुख्यतः यूरोप में—हितलाभ और मज़दूरी का अनुपात इसी प्रकार का है। चूंकि कुटुंब भत्ते हर वक़्त ऐसी रकम पर निश्चित किए जाते हैं जिसका मज़दूरी से कोई संबन्ध नहीं होता इसलिये उसी भत्ते को हितलाभ और मज़दूरी में जोड़ देने का परिणाम यह होता है कि कम मज़दूरी वाले मज़दूर का कुल हितलाभ उसकी पिछली मज़दूरी के अनुपात में अधिक वेतन वाले मज़दूर के मुकाबले, अधिक होता है।

जिन थोड़ी योजनाओं में सूत्र (स) अपनाया जाता है वे ऐसे देशों में चल रही हैं जहां कुशलता के कारण मज़दूरी में कम फरक पड़ता है और अनिपुण मज़दूर की कमाई भी जीविका स्तर से काफी ऊपर होती है। इनमें इंग्लिस्तान की बीमा योजना तथा आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड की सहायता योजनाएं शामिल हैं।

भिन्न हितलाभ सूत्र अपनाये जाने पर हितलाभ पाने वालों का आचरण और अवस्था क्या होगी इसके प्रयोगात्मक ज्ञान के बिना हितलाभों का न्यायोचित तथा विचारयुक्त मापदंड बनाने में आने वाली कठिनाई का उदाहरण बीमारी हितलाभ की दर निश्चित करने की समस्या है। इस बारे में, रोगों की प्रवृत्ति और हितलाभों के दर से इनका संबन्ध बतलाने वाली भरोसे लायक सांख्यकी बहुत ही उद्‌बोधक हो सकती है, परन्तु यह एक ही योजना के अनुभव में क्वचित ही मिलती है। ऐसे ही एक कारण से अन्तर्राष्ट्रीय श्रम परिषद ने सन् १९४४ में सामाजिक सुरक्षा सांख्यकी प्रतिमानित करने की सिफारिश की परन्तु अभी तक इस, बहुत ही प्राविधिक क्षेत्र में, विशेष फल प्राप्ति नहीं हुई है। तो भी मितव्ययिता के सिद्धांत के मार्गदर्शन में, जिसकी परिभाषा हम इस पाठ में पहले कर चुके हैं, व्यावहारिक ज्ञान हमें सही दिशा दिखाने में सहायता कर सकता है।

यह स्पष्ट है कि हितलाभ की दर चाहे कुछ भी हो, सूत्र (अ) मितव्ययी नहीं है। जिस कुटुंब का भरणपोषण होना है उसके आकार का विचार किए बिना, एक ही रकम

सब को देना तभी उचित है जब :

(१) एक सी चंदे की दर के बदौलत एकसा हितलाभ पाने का न्यायोचित हक़ हो—जिस तर्क में यह माना हुआ है कि मालिकों के चन्दे का उपयोग कुटुंबों की भिन्न परिस्थितियों के अनुरूप हितलाभ देने में न किया जाय; और (२) कुछ देशों में कुटुंब के चालू घटकों के बारे में जानकारी मिलना कठिन हो। दूसरी ओर सूत्र (ब) और (स) कुटुंब की जरूरतों का अवश्य ध्यान रखते हैं।

सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन में किसी हितलाभ अनुसूची की पर्याप्तता की जांच, आश्रिता पत्नी तथा दो बच्चों वाले हितलाभाधिकारी व्यक्ति को उसकी पिछली आमदनी (कुटुंब भत्ते सहित मज़दूरी) के मिलने वाले भाग से की जाती है। इसलिये वह सूत्र (ब) और (स) के तत्व का अनुमोदन करता है परन्तु पिछली आमदनी के ४५ प्रतिशत के बराबर लाभ से वह संतुष्ट है। माना, कि अधिकांश श्रमिकों के लिये यह रक़म बहुत थोड़ी है, परन्तु इसके दो कारण हैं, पहले तो यह ख़्याल रखना होगा कि कनवेंशन का संबन्ध न्यूनतम प्रतिमानों से है—मुख्यतः उनसे जो गरीब देशों के बस के हैं। दूसरे उन योजनाओं में जहां सूत्र (अ) या (ब) अपनाए जाते हैं यह ४५ प्रतिशत का आंकड़ा निपुण कारीगर की मज़दूरी से संबन्धित है। यह अर्थ नहीं है कि कम मजदूरी वालों को भी यही हलका प्रतिशत दिया जाय। यह सही है कि सूत्र (स) वाली योजनाओं में यह आंकड़ा अनिपुण मज़दूर की मज़दूरी से संबंधित है परन्तु वास्तव में यह योजनाएं सिर्फ ऐसे देशों में हैं जहां निजी बचत की सुविधाएं और आदत काफ़ी बढ़ी हुई हैं। तो भी हमें यह विश्वास नहीं करना चाहिये कि किसी मज़दूर की पिछली आमदनी का ४५ प्रतिशत पत्नी और बच्चों सहित उसके भरणपोषण के लिए पर्याप्त है। उन श्रमिकों को जिनकी मज़दूरी कुशल कारीगरों की मज़दूरी से काफ़ी कम है, वास्त में करीब करीब सारी योजनाएं इससे ऊंचा प्रतिशत देती हैं; जैसे कि भारतीय योजना ५८ प्रतिशत देती है।

यह तो मानना होगा कि हितलाभ बीमान्वित व्यक्ति की काम करते समय की आमदनी से कम होना चाहिये क्योंकि उसे बीमे का चन्दा नहीं देना पड़ता और आने जाने का किराया तथा घर से बाहर खाना खाने का खर्च बच जाता है जो संभवतः उसकी मज़दूरी के १० प्रतिशत तक या अधिक हो सकता है। इस दृष्टिकोण से उचित छूट देने पर जिन सूरतों का ख्याल रखना होता है वे परस्पर विरोधी हैं। एक ओर मरीज़ों का डाक्टर पर दबाव रहता है कि उन्हें काम पर जाने लायक हालत होने पर भी, बीमारी के प्रमाण-प्रत्र दिए जायं। यह मानने में कोई भय नहीं कि अनेक श्रमिकों का व्यवसाय अरोचक या मेहनत का होता है और वे काम से गैरहाज़िर रहने की अवधि बढ़ाना चाहते हैं। यदि हितलाभ उसकी पिछली आमदनी के प्रायः बराबर हो तो रोग–लक्षणों को बढ़ाकर बताने का मोह अनिवार्य हो सकता है। दूसरी ओर आदर्श तो यह होगा कि बीमारी हितलाभ पिछली शुद्ध आमदनी के बराबर हो ताकि मरीज़ का भरणपोषण पहले के समान ही होता रहे और उसे कर्ज़ में फंसने की चिन्ता न रहे।

इन पारस्परिक विरोधों को सूत्र (ब) पर आधारित एक सूत्र से दूर किया जा सकता है। हितलाभ, मजदूर और उसके आश्रितों की जीविका के लिये पर्याप्त होना चाहिये। साथ ही उसमें यह भी प्रतिबिम्बित होना चाहिये कि लाभपात्र के किराये जैसे कुछ बंधे हुए खर्च होते हैं, जो उसकी आमदनी के स्तर के अनुसार कम या अधिक रहते हैं, परन्तु बीमारी सदृश आकस्मिकता में एक दम कम नहीं किये जा सकते। परन्तु हितलाभ में ऐसे खर्चों के भिन्नत्व का पूर्ण रूप से समावेश करने का आग्रह नहीं होना चाहिये। हम यह मान लें कि जितनी मज़दूरी अधिक हो उतनी ही उस वैयक्तिक बचत की गुंजायश बढ़ जाती है, जिसकी कि हम बीमान्वित व्यक्ति से अपेक्षा कर सकते हैं, और जिस पर बीमारी या दूसरी आकस्मिकता में कुछ हद तक निर्भर रहने की उससे उम्मीद की जा सकती है। इसलिये यह उचित जान पड़ता है कि हितलाभ के रूप में मज़दूरी का वह प्रतिशत दिया जाय जो बढ़ती हुई मज़दूरी के साथ घटता जाय। जैसा कि हम देख चुके हैं मज़दूरी और हितलाभ में कुटुंब भत्तों के समावेश से यह परिणाम स्वतः आ जाता है। हितलाभ का ऐसा चढ़ाव उतार हासिल करने के लिये यह आवश्वक हो जाता है कि बीमेदारों को, उनकी मज़दूरी के अनुसार, भिन्न वर्गों में बांटा जाय। बीमारी बीमे में यह क्वचित ही किया जाता है।

रोग लक्षणों का बहाना करना या उन्हें बढ़ाकर बताना छोटी म्याद वाली बीमारियों में, जो प्रतीक्षा अवधि से तो ज्यादा दिन चलती हैं, पर इतनी अवधि तक नहीं चलती कि रोग-निदान को भली भांति जांचा जा सके, सबसे अधिक संभव है। यथार्थ में गम्भीर बीमारियों में यह सम्भावना न्यूनतम हो जाती है और परिणामतः सुरक्षा की दृष्टि से हितलाभों की दर कम रखने की आवश्यकता नहीं रहती। लंबी बीमारियों में ही बचत पर असह्य भार पड़ता है। इसलिये जब बीमारी महीने दो महीने चल चुकी हो तब हितलाभ की दर बढ़ा देना व्यवहारिक और साथ ही उचित भी जान पड़ता है। जेक़ोस्लोवाकिया की बीमारी बीमा योजना में पहले यह सब सुधार हुआ करते थे: कुटुंब भत्ते, बढ़ती हुई मज़दूरी के साथ दरों का घटना और लंबी बीमारियों के लिये बढ़ी हुई दर।

जब मरीज़ की परवरिश योजना के खर्च पर अस्पताल में होती रहती है तब अधिकांश योजनाओं में बीमारी हितलाभ कम कर दिया जाता है। यह जरूर है कि कुटुंब भत्ते पर कोई असर नहीं पड़ता परन्तु मुख्य हितलाभ की रकम क्या हो, तथा वह किन को दी जाय इस बारे में नीति में आश्चर्यजनक भिन्नता है: उदाहरणार्थ, कुछ योजनाओं में मरीज को कुछ भी नहीं दिया जाता ओर कुछ आश्रितों को आधा हितलाभ दिया जाता है। मगर दूसरी ओर कुछ योजनाएं आधा हितलाभ मरीज़ को और आधा आश्रितों को देती हैं। सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन में इस सम्बन्ध में असंदिग्ध और तर्कयुक्त नियम विहित किया है: हितलाभ में से सिर्फ मरीज़ की परवरिश का खर्च (न कि इलाज का खर्च) काटा जाय।

सामाजिक सुरक्षा की शब्दावली में बीमारी एक अस्थायी दशा है जिसका अन्त

रोगमुक्ति, स्थायी अयोग्यता, या मृत्यु में होता है। बीमा योजनाओं में बीमारी-हितलाभ-अवधि सीमित होने का, पर सहायता योजनाओं में न होने का, मुख्य कारण यह है कि जहां बीमा संस्था पारस्परिक, स्थानीय या व्यवसायिक बीमारी-निधि है वहां उसकी आर्थिक व्यवस्था पद्धति उन मामलों का भार उठाने के अयोग्य है, जो अनिश्चित काल तक चलते रहने के कारण हर साल बढ़ते जायंगे। इसके अलावा ऐसा भी लगता है, यद्यपि यह हर वख्त स्पष्ट रूप से प्रतिपादित नहीं किया जाता, कि ऐसी निधि के सदस्य को किसी परिसीमित रकम से अधिक रकम सार्वजनिक संपत्ति स्रोत कुंड से नहीं लेनी चाहिये। बीमारी हितलाभ अवधि का इस प्रकार परिसीमित होना बीमेदार के लिए कोई वज्रपात नहीं है, क्यों कि बीमारी हितलाभ का हक़ समाप्त कर लेने पर भी यदि वह काम पर नहीं जा सकता, तो वह अयोग्यता पेन्शन ले सकता है। यह बीमारी हितलाभ से कम होती है पर इस प्रयोजन से वित्तपोषित संस्था से अनिश्चित काल तक मिल सकती है। इस समस्या को सुलझाने का यह पारस्परिक तरीका था और अधिकांश देशों में, वहां भी जहां बीमारी बीमे का आर्थिक केन्द्रीकरण हो चुका है, आज यही तरीका चालू है।

अर्धशताब्दी पूर्व पहली जर्मन योजना में बीमारी हितलाभ की अधिकतम मयाद एक बीमारी के लिये १३ हफ्ते थी। फिर अनेक वर्षों तक एक बीमारी के लिये २६ हफ्ते की प्रतिमानित प्रथा बन बैठी। (कुछ योजनाओं में इस नियम का कम अनुकूल रूप है "५२ हफ्तों की किसी अवधि में २६ हफ्ते"।) यह एक सुभीते की तोड़ थी क्यों कि अधिकांश बीमारियां जो इतने अरसे चल सकती हैं संभवतः अनिश्चित काल तक चलती रहेंगी। सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन में भी यही आंकड़ा माना गया है। परन्तु जैसे जैसे पहले असाध्य माने जाने वाले रोगों के सुसाध्य हो जाने का आश्वासन औषधि शास्त्र दे सका, वैसे वैसे सामाजिक बीमे ने भी अपने कर्तव्यों को साधक रूप में देखना शुरू किया। परिणामतः योजना में एक के बाद एक नई शर्तें जोड़ी जाने लगीं जिससे बीमा प्रशासन को उन मामलों में जहां रोगमुक्ति या सुधार की सम्भावना है, डाक्टरी हितलाभ और बीमारी हितलाभ २६ हफ्तों के बाद तक देना संभव होने लगा। यह प्रवृत्ति आज भी चालू है। तो भी अधिकांश योजनाओं में हितलाभ की बढ़ी हुई मयाद भी अतिरिक्त २६ हफ्तों की स्वेच्छाचारी सीमा में बंधी हुई है। क्षय और कुछ दूसरी बीमारियों से अच्छे होने के लिए पूरा एक साल भी अक़्सर पर्याप्त नहीं होता और इसलिये सब से आगे बढ़े हुये देशों में हम हितलाभ अवधि की परिसीमा २ या ३ वर्षों पर निश्चित की हुई पाते हैं। अंत में, तीन चार योजनाएं ऐसी भी हैं जिनमें राष्ट्रीय आर्थिक स्रोतों के भरोसे, इस परिसीमा का बिलकुल ही उच्चाटन कर दिया गया है। यह क्रमिक उन्नति, सामाजिक बीमे से, सामाजिक सुरक्षा में होने वाले तात्विक परिवर्तन का ध्यान देने योग्य उदाहरण है।

करीब करीब सारी बीमारी बीमा योजनाओं में उस व्यक्ति की मृत्यु पर जिसे बीमारी हितलाभ पाने का अधिकार या अन्त्येष्टि कर्म हितलाभ दिया जाता है।

अधिकांश योजनाएं एक माह की मज़दूरी के बराबर हितलाभ देती हैं पर कुछ योजनाएं निश्चित अल्प रकम अधिक पसंद करती हैं। थोड़ी योजनाएं आश्रितों को मृत्यु पर भी ऐसा हितलाभ देती हैं। इंग्लिस्तान में अन्त्येष्टिकर्म-हितलाभ के लिये सारी जनसंख्या का अनिवार्य बीमा है।

प्रसूति हितलाभ

प्रसूति संरक्षण कनवेन्शन, १९१९, अंतर्राष्ट्रीय श्रम परिषद के सबसे पहले अपनाए हुए कनवेन्शनों में से एक था। इस लेख के प्रयोजन, जिसका सन् १९५२ में अनेक ब्योरों में संशोधन हुआ, ये थे:

महिला कर्मचारी का अपेक्षित प्रसव दिवस के पूर्व ६ सप्ताह तक नौकरी से गैरहाजिर रह सकना ;

उसे प्रसूति के बाद ६ सप्ताह तक काम पर न जाने को बाध्य करना;

उसकी सुश्रूषा के लिये डाक्टर या योग्यता-प्रमाण-पत्र प्राप्त दाई की मुफ्त व्यवस्था करना;

उसे सार्वजनिक निधि में से या बीमे के मार्फत नक़दी हितलाभ दिलाना जो ऊपर निर्देशित काम से ग़ैरहाजिर रहने के काल में उसके और उसके बच्चे के भरणपोषण के लिए पर्याप्त हो;

इस विश्रांति काल में या इसके बाद की बीमारी में उसे काम पर से निकालने की मनाई करना;

उसे काम करने के समय में दिन में दो बार बच्चे को दूध पिलाने की सुविधा देना।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के वे सदस्य राष्ट्र जिन्होंने इस कनवेन्शन का अनुमोदन किया है बीमारी बीमा योजना में इन्हें शामिल करके नकदी और जिन्सी प्रसूति हितलाभ, बीमे के तरीके से दिलाते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसे देशों की बीमारी बीमा योजनाओं में भी प्रसूति हितलाभ का स्थान है जिन्होंने इस कनवेन्शन का अनुसमर्थन नहीं किया है, ऐसी भी कई योजनाएं हैं जिनमें आमतौर पर आश्रितों के लिए डाक्टरी हितलाभ की व्यवस्था न होते हुए भी बीमान्वित व्यक्ति की पत्नी को प्रसूति सम्बन्धी सुश्रूषा दी जाती है।

आमतौर पर प्रसूति हितलाभ का हक़ पाने की पात्रता-अवधि बीमारी हितलाभ पाने के लिए लगाई हुई शर्त से कठिन होती है। अक़सर यह विहित किया जाता है कि उस महिला का बीमान्वित व्यक्ति के रूप में पंजीकरण अपेक्षित प्रसव दिवस के कम से कम १० माह पूर्व होना चाहिये।

प्रसूति-हितलाभ की दर बहुधा वही रहती है जो बीमारी हितलाभ की होती है परन्तु कभी कभी वह अधिक भी होती है (संम्भवतः कनवेन्शन की उस शर्त की पूर्ति के लिए जिसके अनुसार हितलाभ "पूर्ण और पौष्टिक भरणपोषण" के लिए पर्याप्त

होना चाहिये।) संशोधित प्रसूति संरक्षण कनवेन्शन में पिछली मज़दूरी के $\frac{2}{3}$ के बराबर हितलाभ की मांग की गई है परन्तु उससे कम महत्वाकांक्षी सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन ४५ प्रतिशत से ही संतुष्ट है।

अधिकांश देश यह काफी समझते हैं कि, साधारण गर्भावस्था तथा प्रसूति में, प्रसूति संरक्षण तथा सामाजिक सुरक्षा इन दोनों कनवेन्शनों में विहित १२ सप्ताह के लिए हितलाभ दिया जाय। मगर कुछ योजनाएं १४, १८ या २० सप्ताह तक हितलाभ देती हैं। दूसरी ओर लैटिन अमेरिका के अनेक देशों में प्रसूति हितलाभ की कुल अवधि कम होती है : सात, आठ, नौ या दस सप्ताह। यह हो सकता है कि इन देशों में प्रसूति, यूरोप की अपेक्षा, अधिक सहज होती है। पर हितलाभ की न्यूनतम अवधि कुछ भी हो, जो महिला उसके समाप्त होते समय बीमार होती है उसे बीमारी हितलाभ मिलता है।

यूरोप और लैटिन अमेरिका, दोनों में उन माताओं को शिशुपोषण हितलाभ देने की आम प्रथा है जो बच्चे को आंचल का दूध पिलाती हैं। उदाहरणार्थ ६ माह तक मज़दूरी का २० प्रतिशत। इसके अतिरिक्त कुछ योजनाएं नवजात शिशु के लिए कपड़े, प्रसाधन सामग्री आदि ख़रीदने के लिए थोड़ा सा अनुदान भी देती हैं। बहुत ही थोड़े देशों में (उदाहरणार्थ जेकोस्लोवाकिया और हँगेरी में) एक बहुत ही अभीष्ट सुधार दिखाई देता है : जब महिला सौरी में होती है उस समय के लिए गृहकृत्यों में मदद करने के लिए नौकरानी की व्यवस्था करना।

चौथे पाठ पर प्रश्न

१. डाक्टरी हितलाभ देने के निम्नलिखित तरीकों में से आपको कौनसा अधिक पसन्द है ? कारण सहित लिखिये।

मरीज़ चाहे जिन सुविधाओं का उपयोग करे परन्तु उसके खर्च की किसी निश्चित हद तक वापसी करने की प्रथा;

या

बीमा फंड द्वारा नियुक्त किये हुए अमले द्वारा डाक्टरी हितलाभ की व्यवस्था।

२. बीमारी हितलाभ की ऊँची दर मरीज़ को चिन्तामुक्त करती है और उसका उचित भरण पोषण होने देती है परन्तु उसे काम से अधिक दिन गैर हाज़िर रहने का प्रलोभन देती है। आप हितलाभ की दर कैसे ठहरायेंगे ताकि अधिकतम पर्याप्तता और मितव्ययिता दोनों हासिल हों ?

३. जहां हितलाभ अधिक समय तक देने से रोगमुक्ति की संभावना है क्या वहां भी बीमारी तथा डावटरी हितलाभों को २६ हफ़्ते तक परिसीमित करने की प्रथा का आप समर्थन कर सकते हैं ?

पाठ ५

हितलाभ (चालू)

पेन्शन

"पेन्शन" उस दीर्घकालीन सामयिक नकदी हितलाभ का सामान्य नाम है जो असमर्थता में, वृद्धावस्था में और कर्त्ता व्यक्ति की मृत्यु होने पर सामाजिक सुरक्षा योजनाओं द्वारा दिया जाता है। इन तीनों सम्भाव्य घटनाओं में एक विशिष्टता के बारे में साम्य है और वह है उस व्यक्ति के कार्यकारी जीवन की समाप्ति। सुरक्षा प्रदान करने का तरीका चाहे सामाजिक बीमे का हो या सामाजिक सहायता का, तर्कसंगत यही है कि पेन्शन के इन तीन प्रकारों में एकसूत्रता रहे।

दूरदर्शी कर्त्तापुरुष यही चाहता है कि उसकी बचत उन सूरतों में से किसी में भी काम आवे जिनमें उसके और उसके आश्रितों की जीविका का साधन उपलब्ध न रहने की संभावना है। इसलिए यह उसके सौभाग्य की बात है कि निजी बीमे की भांति ही सामाजिक बीमे में भी वृद्धावस्था और मृत्यु को एक ही वर्ग में रखना, गणित की दृष्टि से सुविधा है और उनको वैकल्पिक घटनायें मानकर सुरक्षा प्रदान की जाती है याने नियत आयु से अधिक जीवित रहने पर या उसके पूर्व मृत्यु होने पर। सामाजिक बीमा नियोजन में परंपरा से, असमर्थता को अकालीन वृद्धावस्था के समान माना गया है और अयोग्यता पेन्शन के आधार पर वृद्धावस्था और उत्तरजीवियों की पेन्शनों का अंकन किया जाता है। दूसरी ओर कुछ नयी योजनाओं में, असमर्थता को यथार्थ में बीमारी का विस्तृत रूप मान कर, असमर्थता हितलाभ बीमारी बीमे के अन्तर्गत दिये जाते हैं।

यह जरूर है कि सामाजिक सहायता के सन्दर्भ में व्यक्तिगत बचत के आधार पर पेन्शन के हक़दार होने का कोई सवाल नहीं उठता और एक या दो या तीनों प्रकार की पेन्शनों की सुविधा प्रदान की जाय, इसका निर्णय राज्य नीति के अनुसार ही होता है। गरजमंद वृद्धों की बड़ी संख्या, कंगाल वृद्धों के अस्तित्व से उत्पन्न होने वाली समाज के लिए लज्जास्पद स्थिति और प्रशासन की तुलनात्मक सरलता के कारण वृद्धापकालीन पेन्शनों का स्थान पहले आता है। परन्तु जब असमर्थता पेन्शनें इसमें जोड़ी जाती हैं तब उनके नियम निश्चय ही इस प्रकार बनाये जाते हैं कि वे सहज ही बुढ़ापे की पेन्शनों के नियमों से एकरूप हो जायं। इसी प्रकार विधवाओं की पेन्शनों को वृद्धावस्था की पेन्शनों से एक रूप कर दिया जायगा।

सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन में सामाजिक बीमा और सामाजिक सहायता दोनों को प्रतिमान सिद्धि का मार्ग माना गया है। यद्यपि तीनों सम्भावनाओं का वर्णन अलग अलग पाठों में किया गया है तो भी इनके नियमों में अधिक से अधिक एकरूपता रखी गई है ताकि जिन सदस्य देशों में तीनों सम्भावनाएं एक ही योजना के अन्तर्गत हैं उन्हें अनुसमर्थन करने में आसानी हो।

इसलिए अगले तीन विभागों में इन सम्भावनाओं की अलग अलग परिभाषा करने के बाद हम तीनों प्रकार की पेन्शनें प्रदान करने तथा आंकने के नियमों का पृथक्करण एक साथ कर सकेंगे।

असमर्थता

असमर्थता का सम्बन्ध प्रायः हमेशा बीमारी या बुढ़ापे से जोड़ा जाता है परन्तु जन्मतः अपंगता के भी उदाहरण होते हैं। उसका वर्णन इन शब्दों में किया जा सकता है—काम करने की स्थायी असमर्थता निर्माण करने वाली असाध्य, पर स्थिर, रोगावस्था जिसके आर्थिक परिणाम बीमान्वित व्यक्ति के लिए वृद्धावस्था के परिणामों के सदृश हैं। आम तौर पर असमर्थता मध्यम वय के उत्तरार्ध से सम्बन्धित शारीरिक रोगों का परिणाम होती है जैसे हृदय और रक्ताभिसरण विकार और गठिया वात। रोग क्रमशः बढ़ता जाता है और अन्त में मरीज़ साधारण नियमित नौकरी पर टिके रहने में असमर्थ हो जाता है और व्यावहारिक दृष्ट्या वह नौकरी पर रखने लायक नहीं रह जाता, यद्यपि सिद्धांततः वह हल्का काम कर सकता है जो क्वचित ही मिला करता है। कुछ योजनाओं में उस उम्र के बाद जब वृद्धापकालीन पेन्शन ली जा सकती है, असमर्थता से सुरक्षा नहीं की जाती।

इस शर्त के सिलसिले में, सन् १९०० के जर्मन कानून में "असमर्थ" की एक परिभाषा दी गई थी जिसे बाद की अधिकांश असमर्थता योजनाओं ने अंगीकार कर लिया – अंशतः जर्मन कानूनों की प्रतिष्ठा से प्रभावित होकर और अंशतः जीवनांकिक प्राक्कलन (Actuarial estimates) में जर्मनी के अनुभव से लाभ उठाने के लिए। इस परिभाषा के अनुसार किसी बीमान्वित व्यक्ति को असमर्थ तब कहा जा सकता है जब कि वह ऐसी किसी नौकरी में, जो उसकी शक्ति और योग्यता को ध्यान में रखते हुए, उसके प्रशिक्षण और पिछले व्यवसाय के आधार पर उसे दी जा सकती है, सुस्वस्थ पर समान शिक्षण पाये हुए व्यक्ति की साधारण कमाई की एक तिहाई भी न कमा सके। यह ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि इस शब्द रचना में निपुण कर्मचारी की हैसियत की सुरक्षा की गई है। इस कारण से कि वह किसी अनिपुण व्यवसाय में नियमित कमाई कर सकता है या ऐसी कमाई कर रहा है, उसका पेन्शन का हक नहीं छीना जा सकता। परन्तु घोर शारीरिक व्यथा से पीड़ित अधिकांश व्यक्ति कोई नियमित काम कर ही नहीं सकते। दूसरी ओर ऐसे असमर्थता के

मामलों की काफ़ी बड़ी संख्या है जो छोटे बड़े अंग भंग से उत्पन्न होते हैं, परन्तु औद्योगिक चोट योजनाओं के विपरीत, असमर्थता बीमा उपरिनिर्दिष्ट उच्च परिमाण से कम स्थायी असमर्थता में सुरक्षा नहीं देता इसके अपवाद बहुत थोड़े देश हैं (जिनमें अब जर्मनी फैडरल गणराज्य--Federal Republic of Germany--की भी गणना करनी होगी) जहां निम्नलिखित तीन परिमाणों को मान्यता दी गई है:

अपने पिछले व्यवसाय को फिर से शुरू करने की असमर्थता;

किसी भी व्यवसाय में काम करने की असमर्थता;

असहायता की वह अवस्था जिसमें परिचर्या की सतत आवश्यकता हो।

इस आद्य परिभाषा की रचना उस काल में हुई थी जब बेकारी बीमा अस्तित्व में न था या उसका किसी ने विचार तक न किया था और असमर्थता बीमे ने, अपूर्ण असमर्थ व्यक्तियों की नौकरी की मांग न होने के कारण या नौकर रखने की मालिकों की नीति के कारण, उत्पन्न होने वाली बेकारी का उत्तरदायित्व संभालना स्वीकार नहीं किया था। इस दोष को दूर करने के लिये, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम परिषद ने, आम सुरक्षा सिफारिशों में प्रस्ताव किया कि असमर्थता हितलाभ, नौकरी के बाज़ार में हरएक की, व्यक्तिगत परिस्थिति पर अवलंबित रहना चाहिये। यदि काम दिलाऊ सेवा किसी असमर्थ व्यक्ति को उसकी असमर्थता लायक नियमित काम दिलाने में असमर्थ है तो उसे अपंग मानना चाहिये, या, यदि यह संभव है कि शारीरिक और औद्योगिक पुनर्वास के हेतु दिए हुए प्रशिक्षण के बाद वह कोई ऐसा व्यवसाय करने लायक हो जायगा, जिसमें नौकरियों की कमी नहीं है, तो ऐसा प्रशिक्षण होने तक उसे जीविका हितलाभ मिलना चाहिये।

युद्ध में ज़ख्मी होने वाले लोगों के पुनर्वास का प्रश्न सुलझाने का अनुभव और उसके कारण सुधरे हुए तरीके तथा दूसरे महायुद्ध के बाद अभी तक बनी हुई नौकरियों की उपलब्धता के कारण पहले महायुद्ध के पश्चात सोची हुई पुनर्वास योजनाओं को नया बढ़ावा मिला। उदाहरणार्थ इंग्लिस्तान में, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम परिषद द्वारा सिफारिश किए हुए कार्यक्रम के समान कार्यक्रम का समावेश बीवरिज प्लान में किया गया। असमर्थता बीमे में दिलचस्पी दिखाने वाले नये देशों में से अमेरिका का संयुक्त राज्य और स्विटज़रलैंड, पुनर्वास पर बहुत ज़ोर देते हैं। डाक्टरी और बीमारी हितलाभ की अधिकतम मयाद की वृद्धि, जिसका हम पिछले पाठ में उल्लेख कर चुके हैं, अधिकतम पुनः स्वास्थ-प्राप्ति हासिल करने का यही आग्रह बतलाती है। साथ ही मालिकों को, अंशतः असमर्थ व्यक्तियों के लिये कुछ अनुपात में नौकरियां सुरक्षित रखने को लगाकर, कुछ राज्य सरकारों ने उनको नौकरियां मिलने के अवसर प्रदान किये हैं। फिर भी यह हमेशा ख्याल में रखना होगा कि असमर्थता योजना के मुख्य लाभान्वितों के बारे में, याने शारीरिक व्याधियों से पीड़ित वयस्क लोगों के बारे में, पुनर्वास का प्रश्न नहीं उठता।

अपने मर्यादित उद्देश्यों से एकरूपता रखते हुए, सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम

प्रतिमान) कनवेन्शन ने असमर्थता की परिभाषा यों की है : "विहित हद तक, किसी भी लाभदायक कार्य को करने की ऐसी असमर्थता जिसके स्थायी रहने की संभावना है या जो बीमारी हितलाभ समाप्त हो जाने के बाद भी बनी रहती है।" इस शब्दरचना में यह निहित है कि असमर्थतापूर्ण अपंगता से कम हो सकती है।

वृद्धावस्था

जिस संभावना के होने पर वृद्धावस्था की पेन्शन देनी पड़ती है उसकी परिभाषा ऐसे शब्दों में की जाती है जो काफी सरल हैं। अधिकांश योजनाओं में सिर्फ वह न्यूनतम उम्र बताई जाती है जिसे प्राप्त करने पर पेन्शन लेने का हक मिलता है (निवृत्ति-वय) और यह बता दिया जाता है कि पेन्शनयाफ्ता का सेवानिवृत्त होना आवश्यक है या नहीं। परन्तु एक योजना से दूसरी योजना में निवृत्ति-वय भिन्न पाया जाता है और यही भिन्नता सूचित करती है कि "वृद्धावस्था" की कल्पना सरल नहीं है।

इसमें दो विचारधाराएं हर समय दृष्टिगोचर होती हैं। पहली यह है कि वृद्धावस्था ऐसी असमर्थता है जिसका होना अपरिहार्य है बशर्ते कि उतनी आयु तक कोई जीवित रहे। दूसरी विचारधारा यह है कि जिस किसी ने अनेक वर्षों तक किसी संस्था की या उद्योग की सेवा की है उसने सेवानिवृत्ति (पेन्शन) का पारितोषक कमा लिया है। वृद्धावस्था में सुरक्षा दिलाने वाली योजनाओं में दोनों विचारधाराओं का प्रतिबिंब दिखता है और इनमें से पहिली या दूसरी की प्रधानता निवृत्ति-वय, अन्य पात्रता शर्तों तथा पेन्शन के मापदंड की भिन्नता समझने में सहायता करती है।

सारी पेन्शन योजनाओं में एक उम्र निश्चित होती है जिसमें पेन्शन दी ही जाती है चाहे दावेदार उस समय काम करने लायक हो या न हो। यही एक बात है जो वृद्धापकाल में मिलने वाली सुरक्षा की, अयोग्य लोगों को मिलने वाली सुरक्षा से भिन्नता बताती है। निवृत्ति-वय पहले से मालूम होना सिर्फ कर्मचारी के ही हित में नहीं है वरन् यह मालिक के भी फायदे का है जिसे यह जानना आवश्यक है कि वह किसी बूढ़े कर्मचारी को शिष्टता के साथ कब काम पर से बिठा सकता है। निवृत्ति-वय निश्चित करते समय, चाहे कितनी ही अस्पष्टता से क्यों न हो, इस बात की ओर हमेशा ध्यान दिया जाता है कि बढ़ती हुई आयु के साथ कार्यकुशलता क्रमशः घटती जाती है और अयोग्यता के दौरे बढ़ते जाते हैं। अर्थात किसी वयस्क व्यक्ति की काम पर टिके रहने की योग्यता जैसे उस काम में लगने वाली मेहनत पर अवलंबित है वैसे ही उसकी शरीर सम्पत्ति पर भी अवलंबित है। इसीलिये कोई भी तर्कशुद्ध नीति निवृत्ति–वय का सम्बन्ध, व्यवसाय की कठिनाई और उसकी सेवा में बिताये हुए वर्षों से करेगी। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम परिषद ने १९३३ में यही सिफारिश की थी (असमर्थता, वृद्धावस्था और उत्तरजीवियों के बारे में सिफारिशें) और १९४४ में इसी को दोहराया

(आय सुरक्षा सिफारिश)।

वास्तव में सामान्य कर्मचारियों की अधिकांश पेन्शन योजनाएं और सारी सार्वजनिक योजनाएं, वृद्धापकालीन अयोग्यता की शुरुआत सम्बन्धी व्यावसायिक भेदों की ओर, मुख्यतः उस उलझन से बचने के लिए जो अनेक व्यवसायों से परिपूर्ण जीवन क्रमों में पैदा हो जाती है ध्यान नहीं देतीं। परन्तु कुछ ऐसे व्यवसायों के लिए, जिनमें मुख्य योजना की अपेक्षा जल्दी पेन्शन दी जाती है, विशेष योजना बनाकर इस समस्या को कुछ हद तक अक्सर हल कर लिया जाता है।

किसी सामान्य पेन्शन बीमा योजना के अन्तर्गत उचित निवृत्ति-वय निश्चित करने की कसौटी, आय सुरक्षा शिफारिशों में सर्वव्यापी परन्तु संक्षिप्त रूप में इस प्रकार दी गई है :—

"(विहित आयु) ऐसी होनी चाहिये जिसमें आमतौर पर लोग कार्यकुशलता से काम करने के अयोग्य हो जाते हैं, बीमारी और असमर्थता का क्रम बढ़ जाता है और यदि बेकारी आ जाय तो उसके स्थायी होने की सम्भावना रहती है।"

स्वाभाविक ही है, कि लोग इस अवस्था को प्राप्त होना नहीं चाहते। वे जीर्ण-शीर्ण होने और कब्र में पैर लटकाने की उम्र तक रुके रहना नहीं चाहते। जैसा कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर की एक पुस्तक में लिखा है वे एक "आखिरी वैतनिक छुट्टी" की अपेक्षा करते हैं। सौभाग्य से, वयस्क व्यक्तियों को आधुनिक उद्योगों की तीव्र गति का साथ देने में असमर्थ कर देने वाला शक्ति का ह्रास, उनके विश्रांति काल में चैन से पूरा करने के लिए चुने हुए कार्यक्रम में बाधक नहीं होता।

कर्मचारियों को ठीक कितनी जल्दी उनकी सेवाओं से निवृत्त होने का हक दिया जा सकता है यह समस्या एक राजनैतिक मध्यमार्ग को ढूंढकर सुलझाई जाती है, जिसमें उपरिनिर्दिष्ट विचारों का और अन्य कई गौण श्रेणी के घटकों का विरोधाभास प्रायः दूर हो जाता है। इनमें, वयस्क लोगों की संख्या का अन्य वर्गों की संख्या से अनुपात, किसी विहित निवृत्ति-वय पर जीवन अपेक्षा (Expectation of Life), नौकरियों की उपलब्धता का सामान्य स्तर और वित्तीय दायित्व का परिमाण तथा उसका बंटवारा, इन सब का समावेश होता है।

आवश्यकता से अधिक जनशक्ति का अस्तित्व निवृत्ति-वय के चुनाव पर असर डाल सकता है—सिर्फ इसीलिये नहीं कि वयस्क व्यक्तियों को नौकरी मिलने में दिक्कत होती है वरन् इसके विपरीत कारण से भी, याने इसलिये कि जो थोड़े से वयस्क लोग नौकरी पर टिके रहने में सफल होते हैं वे इस प्रकार, अपने से कम उम्र और अधिक कार्यकुशल लोगों को जिन पर संभवतः कुटुंब पोषण की जिम्मेदारी है, नौकरियां मिलने के अवसर कम कर देते हैं। यही कारण था कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम परिषद ने सन् १९३३ में, जब कि सारी दुनियां में मंदी आई हुई थी, बेकारी घटाने के लिए, निवृत्ति-वय कम करने की सिफ़ारिश की थी।

अन्य सामाजिक सुरक्षा हितलाभों के समान यहां भी एक ओर संभावना की

परिभाषा की उदारता और दूसरी ओर हितलाभ के मापदण्ड की उदारता में, वित्तीय कारणों से, संतुलन लाना पड़ता है। निवृत्ति-वय निश्चित करने के पूर्व यह पता लगा लेना आवश्यक है कि किसी मापदंड के अनुसार पेन्शनें देने के लिए कितनी रकम मिल सकती है। सामान्य कर्मचारियों के लिए बनाई हुई योजनाओं में और सार्वजनिक योजनाओं में, अन्य सामाजिक सुरक्षा हितलाभ पाने के लिए जो खर्चा उठाना है उसके अतिरिक्त, अपनी बारी आने पर पेन्शन पाने का हक़ प्राप्त करने के लिए चंदा देने वाले और कर दाता आज क्या देने को तैयार होंगे इसकी एक सीमा है जो बहुत जल्द आ जाती है। तुलनात्मक दृष्टि से मज़दूरों के छोटे समूहों के लिए विशेष योजनाओं की वित्तीय उलझनें इतनी कठिन नहीं होतीं। विशेष योजना या तो ऐसे उद्योग के लिए हो सकती है जिसके कर्मचारियों को राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के हित की दृष्टि से, पेन्शन के बारे में विशेषाधिकार देकर पुरस्कृत करना उचित है या जिसके कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व ऐसे कामगर-संघ के हाथ में है जो विधानसभा पर ज़ोरदार दबाव डालने की शक्ति रखता है। दोनों में से किसी भी सूरत में इस विशेषाधिकार का तात्पर्य यही है कि सारे कर्मचारियों के लिए बनाई हुई पेन्शन योजना का जितना खर्च कर दाताओं पर या उपभोक्ताओं की हैसियत से अन्य कर्मचारियों पर पड़ता, उससे अधिक खर्च उन पर डाल दिया जाय।

४८ देशों की आम कर्मचारियों की योजनाओं या औद्योगिक योजनाओं में और सामाजिक सहायता या सार्वजनिक योजनाओं में विहित किये हुए निवृत्ति-वय का, सन १९५४ में किया हुआ सर्वेक्षण निम्नलिखित वितरण दिखाता है :

आयु		देशों की संख्या
७०		२
६७		२
६५		१५
पुरुष ६५ / स्त्रियां ६०		९
६०		८

आयु		देशों की संख्या
पुरुष ६० / स्त्रियां ५५		९
पुरुष ५५ / स्त्रियां ५०		२
५०		१

यह जानना मनोरंजक है कि हमारी उल्लेख की हुई बातों का संतुलित विचार करने की क्रिया ने, ऐसे देशों के समूह में, जिनके लोक संख्यात्मक संगठन और समृद्धता में बड़ी विभिन्नता है, ६० से ६५ साल की आयु में इतना घना केन्द्रण उत्पन्न किया है। संभवतः इस नतीजे पर पहुँचने में इस बात का भी असर रहा है कि छोटी वयस्क-जनसंख्या वाले अनेक देश इतने गरीब हैं कि वे तुलनात्मक दृष्टि से कम निवृत्ति-वय रखने में असमर्थ हैं। इन ४८ योजनाओं में से सिर्फ २ को छोड़कर बाकी सब में निवृत्ति-वय ५ से बंट सकने वाली संख्या है। यह बात वृद्धावस्था की कल्पना की

अस्पष्टता तथा संसद के वादविवादों की प्रकृति की द्योतक है। तो भी इस ५ साल की मियाद का काफ़ी वित्तीय परिणाम हो सकता है : ६० वर्ष की आयु पर दी जाने वाली पेन्शन, ६५ वर्ष की आयु पर दी जाने वाली उसी पेन्शन की अपेक्षा ४०–५० प्रतिशत महंगी पड़ सकती है जिसका कारण उन उम्रों के बाद जीवित रहने वाले लोगों की संख्या का भेद है। ६७ या ७० साल की उम्र चुनने का कारण विदित है : सामाजिक सहायता या सार्वजनिक योजना के अन्तर्गत सीमित कर दान शक्ति वाले बहुसंख्यक किसान वर्ग को सुरक्षा प्रदान करने वाले देशों में असामान्य रूप में बड़ी वयस्क जनसंख्या का अस्तित्व।

इक्कीस देशों ने पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के लिए कम उम्र निर्धारित की है : हर एक देश में ५ साल कम। इस प्रकार इन्होंने इस चिर-परिचित सत्य का ध्यान रखा है कि आम तौर पर स्त्रियां जो व्यवसाय करती हैं उनमें से बहुत सो में वयस्क स्त्रियों को काम मिलने में बहुत कठिनाई पड़ती है। औरतों की दीर्घायुता के बावजूद, जिससे इस सहूलियत का खर्चा और भी बढ़ जाता है, यह न्यायोचित व्यवस्था जान पड़ती है, क्योंकि उत्तरजीवियों की पेन्शनों के हक़दार आश्रित छोड़कर मरने की उनकी संभावना कम है।

यह विश्व चित्र, आय सुरक्षा सिफारिश में प्रतिपादित निवृत्ति-वय याने पुरुषों के लिए ६५ साल और स्त्रियों के लिए ६० साल—से बहुत कुछ मिलता जुलता है। जैसा उचित ही है दीर्घकाल तक चलने वाला होने और भविष्य में लम्बी आयु वाली जनसंख्या की संभावना से अवगत होने के कारण सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन अपने कार्य में बहुत अधिक सतर्क है, विशेषत: इसलिए कि निवृत्ति-वय एक बार निश्चित होने पर बड़ी कठिनाई से ही बढ़ाया जा सकता है। इसलिए उसे ६५ साल से अधिक निवृत्ति-वय भी स्वीकृत है बशर्ते कि वयस्क व्यक्ति की कार्यक्षमता इसे न्यायसंगत सिद्ध करती प्रतीत हो।

इस पाठ में हम पहले कह चुके हैं कि सिद्धांतत: निवृत्ति-वय, बीमान्वित व्यक्ति के व्यवसाय की कठिनाई पर कुछ हद तक निर्भर रहना चाहिए। अधिकांश देशों में मेहनती या ख़तरनाक व्यवसायों के लिए ख़ास अनिवार्य बीमा योजनाएं बनाकर या मालिकों द्वारा अपने कर्मचारियों के लिए बनाई हुई योजनाओं द्वारा यह अन्तर ध्यान में रखा जाता है। ऐसा एक व्यवसाय कोयले की खदानों में काम करने वालों का है जो मेहनत का भी है और खतरनाक भी और जिनके लिये अनेक यूरोपीय देशों ने विशेष योजनाएं बनाई हैं। इनमें से अधिकांश में निवृत्ति-वय, सारे कर्मचारियों की योजनाओं की अपेक्षा १० वर्ष कम रखा गया है जैसे कि ६० की जगह ५० या ६५ की जगह ५५। अनेक यूरोपीय और लैटिन अमेरिकन देशों में नाविकों और रेल कर्मचारियों के लिए बनाई हुई खास योजनाओं में भी निवृत्ति-वय, आम निवृत्ति-वय से कम रखा गया है। रूस और अधिकाँश लोक-प्रजातंत्र राज्यों में सामान्य पेन्शन बीमा योजना के अन्तर्गत, निवृत्ति-वय के लिए, व्यवसायों के दो भाग किये गये हैं : खदानों

में काम करने वालों के लिए और संभव हो तो कुछ और ऐसे व्यवसायों में काम करने वालों के लिए जो स्वास्थ्य को हानिकारक हैं निवृत्ति-वय ५० वर्ष की आयु पर रखा जाता है : और अन्य सामान्य व्यवसायों के लिए ६० वर्ष (स्त्रियों के लिए ५५ वर्ष)। दूसरे महायुद्ध के बाद से अन्य कुछ देशों में भी, सामान्य पेन्शन बीमा योजनाओं में इस प्रकार की व्यवस्था जोड़ दी गई है। विशेष योजनाओं की गुथी हुई पद्धति के मुकाबले, इस व्यवस्था में कई फायदे हैं (सर्वव्यापकता, ग्रहणशीलता और आर्थिक स्थिरता); परन्तु यह विशिष्ट प्रकृति के पुरातन उद्योगों की व्यापक परम्परा के विरुद्ध है।

निवृत्ति-वय निश्चित करने में चाहे मानी हुई असमर्थता के तत्व की प्रधानता हो या दीर्घकालीन सेवा से कमाई हुई विश्रांति के तत्व की, यह ग्रहीत रहता है कि, आम तौर पर, सेवानिवृत्ति के साथ ही पेन्शन दी जायगी। फिर भी काफी वयस्क लोग निवृत्ति-वय के बाद भी, पेन्शन लेते हुए या पेन्शन लिए बिना, काम करते रहते हैं।

अनेक सामान्य पेन्शन बीमा योजनाओं में—संभवतः ऐसी आधी योजनाओं में—बुढ़ापे की पेन्शनों की पात्रता-शर्तों में सेवानिवृत्ति का कोई उल्लेख नहीं है। अपना कार्य चालू रखते हुए, पेन्शन और वेतन दोनों पाना पेन्शनयाफ़ता की स्वेच्छा पर छोड़ रखने के तीन कारण जान पड़ते हैं। पहला और सबसे महत्वपूर्ण कारण यह है कि, खासकर दूसरे महायुद्ध के पूर्व, वृद्धावस्था की पेन्शनें बहुधा जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त नहीं होती थीं और इसलिये सेवानिवृत्ति पर जोर देना असंभव था। दूसरा कारण यह है कि, जहां निवृत्ति-वय ऊँचा है, बहुत थोड़े कर्मचारी ही उसके बाद अपनी नौकरी कायम रख सकते हैं और बाकी लोगों में से कोई काम तो नहीं कर रहा है इसकी जांच पड़ताल करने का प्राशासनिक खर्च बेकार होगा। तीसरे, एक आध देश में कुछ समय के लिए काम करने वालों की इतनी कमी महसूस हो सकती है कि पेन्शनयाफ्ता लोगों को काम पर वापिस आने के लिए लालच दिखाना पड़े।

सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन में यह माना गया है कि यदि पेन्शनयाफ्ता व्यक्ति कमाई कर रहा हो, या उसकी कमाई किसी नियत रकम से अधिक हो तो वृद्धापकालीन हितलाभ देने में रुकावट डाली जा सकती है। जहां पेन्शन योजना का वित्तपोषण, बीमान्वित व्यक्ति के चन्दों के अतिरिक्त मुख्यतः अन्य स्रोतों से होता है, वहाँ ऐसे व्यक्ति की पेन्शन रोकना स्पष्ट रूप में न्यायोचित है जो सामान्य मज़दूरी कमा रहा है। अर्थात इस नियम को कनवेन्शन की उन शर्तों के साथ ही पढ़ना चाहिये जिनके अन्तर्गत पेन्शन की न्यूनतम दर निश्चित की गई है।

किसी विशिष्ट उद्योग या व्यवसाय के लिए बनाई हुई योजना में सेवानिवृत्ति बहुधा अनिवार्य होती है क्योंकि मालिक और नौकर दोनों की यही इच्छा रहती है कि तरुण लोगों के लिए जगह बनाई जाय। परन्तु पेन्शन उदार मात्रा में होने की सम्भावना है और उस योजना के अन्तर्गत आने वाले उद्योग या व्यवसाय के अतिरिक्त

कहीं भी काम ढूंढने के लिए पेन्शनयाफ्ता स्वतंत्र रहता है। इसी प्रकार लैटिन अमेरिका की कई सामान्य पेन्शन बीमा योजनाओं में पेन्शन देने की शर्तों में बीमा योग्य व्यवसाय से सेवानिवृत्ति अनिवार्य है जिसका परिणाम यह होता है कि कोई भी व्यक्ति उस समय के बाद काम पर नहीं रहेगा जब उसकी कमाई घट कर उसको मिलने वाली पेन्शन के बराबर हो जाय। यूरोपीय सामान्य पेन्शन बीमा योजनाओं का वह अल्पसंख्यक वर्ग, जो पेन्शनयाफ्ता लोगों को नौकर रखने की प्रथा को निरुत्साहित करता है, अपनी कार्य सिद्धि के लिए पेन्शनें कम या बंद कर देता है बशर्ते कि कमाई एक विहित स्तर से अधिक हो।

यूरोप और अमेरिका में हुई परिषदों के लिए तैयार किये हुए निबंधों में, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर ने काम पर बने रहने की योग्यता और इच्छा के व्यक्तिगत भेदों के कारण निवृत्ति-वय के लचीलेपन का प्रतिपादन किया है, यदि कुल पेन्शन और कमाई पर निर्बन्ध लगा दिया जाय तो जो बचत होगी वह निवृत्ति-वय को उस स्तर से नीचे घटाना संभव कर देगी जिस पर शारीरिक कारणों से अधिकांश श्रमिकों को काम से अलग हो जाना होगा। हो सकता है कि उस छोटी आयु पर दी हुई पेन्शन भी मामूली हो, पर पेन्शनयाफ्ता को अभी भी उपयोगी मज़दूरी कमाने की इजाज़त है। दूसरी ओर वह बीमान्वित व्यक्ति जो काम पर बना रहता है और पेन्शन का दावा करना स्थगित कर देता है, सम्भवतः इस प्रकार देर के अनुपात में बढ़ी हुई पेन्शन का हक प्राप्त कर लेगा। इसी तरह की नीतियों की श्री बीवरिज ने सिफारिश की थी और पेन्शन बीमे की अनेक सामान्य योजनाओं में इन्होंने स्थान पाया है।

पोषणकर्ता की मृत्यु

दूसरे पाठ में हमने, बहुत संक्षेप में, आश्रितों के उन वर्गों का उल्लेख किया था जिनका पोषणकर्ता के पेन्शन-बीमे के अन्तर्गत रक्षण होता है। यहां हम इन वर्गों की परिभाषा का अधिक सूक्ष्मता से निरीक्षण करेंगे।

बीमा योजनाओं में, उत्तरजीवियों की पेन्शन, बीमेदार के उत्तरजीवियों को, उस असमर्थता या वृद्धापकालीन पेन्शन का मिल जाने का नाम है जिसे ले सकने के समय तक मृत व्यक्ति जीवित न रह पाया या जो वह मृत्यु के समय ले रहा था।

सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन में कहा गया है कि स्वावलम्बन के लिये असमर्थ मानी जाने वाली और स्कूल छोड़ने की न्यूनतम उम्र से कम उम्र बच्चों को, पेन्शनें दी जानी चाहियें। यह गृहीत है कि स्वावलंबन की असमर्थता में सिर्फ असमर्थता या वृद्धापकाल का ही समावेश नहीं होता, वरन् बच्चा संभालने की ज़िम्मेदारी का भी होता है। यद्यपि आजकल की बहुत सी योजनाएं विधवाओं के प्रति इससे अधिक उदारता दिखाती हैं और बच्चों के प्रति तो प्रायः सभी ऐसा करती हैं, तो भी कनवेन्शन को यह ख्याल में रखना आवश्यक था कि कम उन्नत देशों में शुरू

की जाने वाली पेन्शनों में उत्तरजीवियों की पेन्शनों की बारी बहुधा आखिर में आती है। इस सम्बन्ध में आय सुरक्षा सिफारिशों में दिये हुए सुझाव, यूरोप की औसत प्रथा के अधिक क़रीब हैं और सहायक हितलाभों का रूप धारण करते हैं जो क्रमशः क़ानूनों में प्रवेश कर रहे हैं। वे पूर्णरूप में उद्धृत करने योग्य हैं :

उत्तरजीवियों के हितलाभ

(अ) बीमान्वित पुरुष की विधवा को,

(ब) बीमान्वित पुरुष के या बच्चों का पालन करने वाली बीमान्वित स्त्री के खुदके बच्चों के लिए, सौतेले बच्चों के लिए, गोद लिए हुए बच्चों के लिए और, (बशर्ते कि उनका नाम आश्रितों के रूप में पहले से दर्ज करा दिया जाय), अनौरस बच्चों के लिए, और

(स) ऐसी शर्तों पर जो राष्ट्रीय कानूनों में लगाई जायं, अविवाहित स्त्री को, जिसके साथ मृत व्यक्ति का समागम रहा हो, दिये जाने चाहियें।

विधवा का हितलाभ ऐसी विधवा को दिया जाना चाहिये जो बच्चे के हितलाभ के अधिकारी बच्चे का पालन कर रही हो या जो अपने पति की मृत्यु के समय या उसके बाद असमर्थ हो या वृद्धापकालीन हितलाभ पाने की न्यूनतम आयु पर पहुंच चुकी हो। जो विधवा इनमें से एक भी शर्त पूर्ण नहीं करती उसे कई महीनों की एक न्यूनतम अवधि के लिए विधवा का हितलाभ मिलना चाहिये और उसके पश्चात, अगर वह बेकार हो तो, आवश्यकता हो तो प्रशिक्षण दिलाने के बाद ,उसके लायक नौकरी का मौका उसे दिलाने तक हितलाभ मिलते रहना चाहिये।

बच्चे का हितलाभ ऐसे बच्चे को दिया जाना चाहिये जो स्कूल छोड़ने की न्यूनतम आयु से कम आयु का है या १८ वर्ष से कम आयु का है और अपना सामान्य या औद्योगिक शिक्षण चालू रखता है।

विधवाओं के प्रति अपने बर्त्ताव के अनुसार देश दो हिस्सों में बंट जाते हैं। उनमें से करीब आधे विधवाओं को बिना शर्त पेन्शन देते हैं। हां, यह जरूर है कि कुछ योजनाएं, मृत्युशय्या पर होने वाले विवाहों से या ऐसी ही अन्य घटनाओं से अपना रक्षण कर लेती हैं। यह उदार व्यवहार यूरोपीय योजनाओं का तो अल्पसंख्यक वर्ग ही करता है परन्तु लैटिन अमेरिकन योजनाओं में तो प्रायः सभी का यही व्यवहार है, जहां यह उस परंपरा का अनुसरण करता है जिसके अनुसार विवाहित स्त्रियों को काम पर नहीं जाना चाहिये।

दूसरे समूह के देशों में बिना बच्चे वाली विधवा की पेन्शन मिलने की आयु ४० से ६५ तक होती है। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि या तो वह स्त्रियों के

साधारण निवृत्ति-वय के बराबर होती है या उससे १० वर्ष के करीब कम। इनमें से अधिकांश योजनाओं में यह आवश्यक होता है कि पति के निधन के समय विधवा विहित आयु तक पहुंच चुकी हो या उसके पूर्व ही असमर्थ हो चुकी हो। यह शर्त सख्त साबित हो सकती है क्योंकि विहित आयु से कम उम्र विधवा भी इतनी वयस्क हो सकती है कि बीमा योग्य व्यवसाय करके अपने वृद्धापकाल के लिए पेन्शन पाना उसके लिये असंभव हो। ऐसी बहुत कम योजनायें हैं जो असमर्थता और वृद्धापकाल में ऐसी स्थायी सुरक्षा देती हैं जैसी कि आम सुरक्षा सिफारिशों में तय की गई है। जहां ऐसी सुरक्षा प्रदान नहीं की गई है वहां बिना शर्त पेन्शन न पाने वाली विधवा को, पति की बीमा अवधि को अपनी बीमा अवधि में गिनने का हक़ होना चाहिये बशर्ते कि वह स्वयं बीमायोग्य व्यवसाय करने लगे। वैसे ही (जिस बड़े अनुपात में अविवाहित युगल पाये जाते हैं उसे ध्यान में रखते हुए) आश्चर्यजनक रूप से कम देश, लंबे अरसे से रखी हुई रखैल को वही पेन्शन अधिकारे देते हैं जो पत्नी को दिए जाते हैं। दूसरी ओर कई योजनाओं ने भी बीवरिज के प्रस्ताव का अनुसरण किया है कि तरुण बांझ विधवाओं को अस्थायी भत्ता दिया जाय जिससे उन्हें नौकरी ढूंढ़ने को समय मिल जाय।

बच्चे को बिना शर्त पेन्शन देने का न्यूनतम वय, प्रायः हर जगह १६ या १८ वर्ष है—आधे से कुछ अधिक देशों में इससे नीची सीमा रखी गई है। इस आयु के बाद यदि बच्चे का शिक्षण चालू रहता है तो पेन्शन की अवधि दो, पांच या नौ साल तक बढ़ा दी जाती है। वैसे ही बच्चा अपाहिज होने पर वयोमर्यादा हटा देना प्रायः सर्वभौम है।

अन्य रिश्तेदारों में से, विधुर को बहुधा वही पेन्शन दी जाती है जो विधवा को दी जाती है, बशर्ते कि वह असमर्थ हो या निवृत्ति-वय प्राप्त कर चुका हो और पत्नी उसकी सारी परवरिश करती रही हो। योजनाओं का एक छोटा अल्पसंख्यक वर्ग मातृपितृहीन भाई बहिन, नाती नातिनों को भी बीमेदार के या उसकी पत्नी के बच्चों के समान अधिकार देता है। अन्त में, यदि विधवा और बच्चों की पेन्शनों में उत्तर-जीवियों को मिल सकने वाली सम्पूर्ण पेन्शन समाप्त न हो चुकी हो तो, आधा दर्जन देशों में मृत व्यक्ति पर अवलंबित माता पिता भी पेन्शन के हक़दार होते हैं। जहां पेन्शन बीमे का क्षेत्र तुलनात्मक दृष्टि से संकुचित है या योजना चलाते समय वयस्क हो चुकने वालों के लिये जहां चन्दा रहित पेन्शनों का इंतजाम नहीं किया गया था वहां ऐसी व्यवस्था न्यायोचित ही है।

पाठ ६

हितलाभ (चालू)

पेन्शनें (समाप्त)

पात्रता-अवधियां

पेन्शन योजनाओं का एक अपरिहार्य अंग पात्रता-अवधियां हैं। इन योजनाओं को बिगड़े हुए स्वास्थ्य वाले या निवृत्ति-वय के पास पहुंचे हुए लोगों से बचकर रहना पड़ता है, अन्यथा वे, बीमा योजना के दायरे में आने वाली कोई भी नौकरी—संभवतः नाम मात्र के लिये—करके, या जहां ऐसी योजनाएं न हों उन देशों से ऐसी योजना वाले देशों में आकर, शीघ्र ही पेन्शन प्राप्त करने के हक़दार हो जायेंगे।

वृद्धावस्था, असमर्थता और मृत्यु ये ऐसी सम्भावनाएं हैं जो निवृत्ति-वय तक या क्रमशः ८० और १०० साल की आयु तक (जब असमर्थता और मृत्यु की सम्भावना निश्चिति में परिणित हो जाती है) हर साल एक गति से पास आती जाती हैं या अधिक संभव होती जाती हैं। परिणामतः पेन्शन योजना में भाग लेने वाला नया व्यक्ति तत्सम्बन्धी वय के जितने पास होगा, उतना ही चंदा हितलाभ के बराबर होता जाना चाहिये। परन्तु कुछ व्यवहारिक कारणों से, जिनकी कल्पना आसानी से की जा सकती है, सामाजिक बीमे के चन्दे व्यक्तिगत वयानुसार नहीं बदलते। चंदा ऐसी दर से रखा जाता है जो, वर्तमान और भविष्यकालीन बीमान्वित जनसंख्या के वयोमान के लिए उचित है।

यदि योजना को, अनअपेक्षित रीति से, अनगिनत जीर्ण और वयस्क लोगों के लिये उत्तरदायी बन जाने का खतरा न होता तो पात्रता-अवधि की कोई आवश्यकता न होती। परन्तु यह खतरा वाक़ई में है—विशेषतः उन बीमा योजनाओं में, जिनका क्षेत्र सीमित है। चंदे लेने का दूसरा तरीक़ा, जिसमें कि वे ऐसे परिमाण में लिये जायें कि वयस्क लोग थोड़े से चन्दे देने के बाद वही हितलाभ पा सकें, जो स्कूल छोड़ने के बाद से ही चंदा देते आने वाले लोग पा सकते हैं, न्यायोचित नहीं माना जाता। पात्रता अवधि लगाने से यह निश्चित हो जाता है कि हर एक पेन्शनयाफ्ता ने अपने को मिलने वाले हितलाभों के लिए काफी मात्रा में चन्दे दिये होंगे। वृद्धापकालीन पेन्शनों में पात्रता-अवधि का यही एकमात्र प्रयोजन है। परन्तु असमर्थता और मृत्यु के बारे में इसका प्रयोजन, अधिकतर ऐसे लोगों को बीमे में प्रवेश करने से रोकने का है जिनको ये संभावनाएं शीघ्र होने ही वाली हैं।

असमर्थता और मृत्यु किसी भी आयु पर—जवानी में भी—हो सकती है, परन्तु वृद्धापकाल और उसके कारण आने वाली सेवानिवृति की कल्पना तो व्यक्ति कमाने लगने के समय से ही कर सकता है। यही कारण है कि पहली दो सम्भावनाओं की अपेक्षा इस संभावना के लिए पात्रता अवधि काफी अधिक रखी जाती है: यथार्थ में इतनी लंबी कि संचित चंदे एक छोटी परन्तु उपयुक्त पेन्शन के वित्तपोषण को पर्याप्त होते हैं।

पेन्शन बीमा योजना के वित्तीय आयोजन म यह मान लिया जाता है कि उसमें आने वाले अधिकांश लोग, कोई एक संभावित घटना होने तक, काफ़ी नियमित रूप से चंदे देते रहेंगे। इसलिये अनेक वर्षों की पात्रता अवधि पूर्ण करना ही अकेला पर्याप्त नहीं है। चन्दे चालू रखने चाहियें, अन्यथा पेन्शन न दी जाने की या कम कर दी जाने की सम्भावना है।

यदि बीमान्वित व्यक्ति के स्वेच्छा से योजना का क्षेत्र छोड़ जाने के कारण चन्दे देने में बाधा पड़ गयी है तो किसी निश्चित मयाद तक उसका रक्षण चालू रखना न्यायोचित है, विशेषत: यदि उसने पात्रता अवधि पूर्ण कर ली है। वास्तव में, जहां तक पात्रता अवधि का आशय सिर्फ दुरुपयोग के खतरों को कम करना था, मुफ्त रक्षण की अवधि, प्रथम दृष्टि में तो पात्रता अवधि के बराबर होनी चाहिए। साथ ही उस व्यक्ति को, ऐच्छिक चंदेदार की हैसियत से, बीमा चालू रखने का अवसर मिलना चाहिये। परन्तु यदि वह इस अवसर से लाभ नहीं उठाता और नि:शुल्क-रक्षण-अवधि समाप्त हो चुकी है, तो, यदि वह फिर से बीमे में प्रवेश करे तो पात्रता अवधि फिर से पूरी करने को बाध्य करना न्यायोचित है।

परन्तु चन्दे की अदायगी में बाधा पड़ना, बीमारी या बेकारी के कारण अधिक सम्भव है और इन सम्भावनाओं की सम्पूर्ण अवधि में रक्षण चालू रहना चाहिए। परन्तु यह सुधार वहीं व्यावहारिक हो सकता है जहां बीमारी या बेकारी बीमा अस्तित्व में हों और पेन्शन योजना से उनका एकसूत्रीकरण हो।

जहां पेन्शन योजनाओं में पात्रता अवधि छोटी है वहां, चन्दे देने में अधिक नियमितता की शर्त लगाकर संतुलन लाया जाता है। इसके विपरीत जहां पात्रता-अवधि लंबी है (जैसे कि १५ साल, जो, जहां तक पेन्शन योजनाओं का सम्बन्ध है, आम है) वहां बकाया चंदे दिये बिना सिर्फ अवधि-पूर्ति ही, अंत में एक छोटी सी पेन्शन देने के लिए, पर्याप्त मानी जा सकती है।

तो, पेन्शन बीमा योजनाओं में आम तौर से विहित पात्रता-अवधि-प्रथा की कारण-परंपरा, सामान्य शब्दों में इस प्रकार है। यह स्वाभाविक ही है कि इस परम्परा का प्रतिबिम्ब सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कन्वेन्शन की तत्सम्बन्धी धाराओं में पाया जाय।

मर्यादित क्षेत्र की बीमा योजनाओं के लिए कन्वेन्शन में अधिकतम पात्रता अवधि की दो जोड़ियां दी हैं जिनमें से कोई एक जोड़ी चुनी जा सकती है। हर जोड़ी में

अनियत रक़म की छोटी पेन्शन का अधिकार पाने के लिए छोटी अवधि दी गई है और न्यूनतम प्रतिमान के अनुसार पेन्शन पाने के लिए बड़ी अवधि दी गयी है। हमारा प्रयोजन अभी जिससे है वह छोटी अवधि है याने :

असमर्थता और उत्तरजीवियों की पेन्शनों के लिए :

चन्दे के पांच वर्ष या नौकरी के पांच वर्ष :

वृद्धापकालीन पेन्शनों के लिए :

चन्दे के १५ वर्ष या नौकरी के १५ वर्ष।

सहायता या सर्वभौम योजनाओं के सम्बन्ध में, जिनकी सारी पेन्शनें जीविका स्तर की होती हैं, कन्वेन्शन में पात्रता अवधियों की एक ही जोड़ी दी गयी है, याने :

असमर्थता और उत्तरजीवियों की पेन्शनों के लिए दस वर्ष का निवास, वृद्धापकालीन पेन्शनों के लिए बीस वर्ष का निवास।

प्रायः सारी सामान्य कर्मचारियों की पेन्शन बीमा योजनाएं, असमर्थता और उत्तरजीवियों की पेन्शनों के लिए चंदे के या नौकरी के पांच वर्षों की पात्रता अवधि से सन्तुष्ट हैं और एक से चार साल तक की अवधि अक़सर पाई जाती है।

असमर्थता और उत्तरजीवियों के हितलाभों के बारे में दूसरे महायुद्ध के पश्चात, एक के बाद एक अनेक देशों ने, संभावित घटना होने के समय व्यक्ति की आयु के अनुसार बदलते हुए नौकरी के अरसे की पात्रता-अवधि की युक्ति प्रयोग में लाई है : जैसे २५ वर्ष की या उससे कम आयु पर ३ वर्ष और क्रमशः बढ़ते बढ़ते ४० वर्ष की या उससे अधिक आयु पर ७ वर्ष।

कन्वेन्शन के अन्तर्गत बीमा योजनाओं में वृद्धापकालीन पेन्शनों के लिए दी हुई १५ वर्ष की अधिकतम पात्रता अवधि का अतिक्रमण दो या तीन देशों में ही किया गया है। चार, पांच या दस वर्ष की पात्रता अवधियां भी अपवादात्मक नहीं हैं।

जो बीमा योजना, वृद्धापकालीन पेन्शन के लिए १५ वर्ष की पात्रता अवधि रखती है, वह योजना शुरू होते समय, निवृत्ति-वय के करीब पहुंचती हुई पीढ़ी को कोई सुरक्षा नहीं प्रदान करती। इसलिये कन्वेन्शन में, राज्यसरकारों को सुझाव दिया गया है कि इस पीढ़ी के लिए पात्रता शर्तों में ढिलाई रखी जाय। इसके लिए अनेक युक्तियां उपयोग में लाई गई हैं। एक तो यह है कि पात्रता अवधि को, व्यक्ति की योजना के आरम्भ के समय की आयु के अनुसार बदला जाय, ताकि निवृत्ति-वय के करीब पहुँचे हुए लोगों के लिए २ या ३ वर्षों की अवधि से बढ़ते हुए उस समय के मध्यम वय के लोगों के लिए वह अपने सामान्य अंक पर पहुँच जाय। रूस और अधिकांश लोक प्रजातंत्र राज्यों में, पात्रता अवधि नौकरी के अरसे में गिनी जाती है जिसमें बीमा योजना शुरू होने के पूर्व की नौकरी का भी समावेश होता है। जहां योजना का क्षेत्र बहुत विस्तृत है वहां इस शर्त के अनुसार अधिकांश वयस्क लोगों को आवश्यक सुरक्षा प्राप्त हो जायगी परन्तु अनेक वर्षों पूर्व की नौकरी का सबूत देने में कठिनाई पड़ सकती है।

पेन्शन के सूत्र

जब हम बीमारी हितलाभ का विचार कर रहे थे तब हमने देखा था कि उसके दो मुख्य प्रकार हैं—एक तो हितलाभ पाने वाले की पिछली मज़दूरी के प्रतिशत के रूप में हितलाभ की दर रखना और दूसरा ऐसा भत्ता देना जो जीविका के लिए पर्याप्त माना जाता हो। हमने यह भी देखा कि आश्रितों का ख्याल रखते हुए पहले की कभी कभी और दूसरे की हमेशा पूर्ति की जाती थी। पेन्शनों के ढांचे में भी हमें व्यक्तिगत मज़दूरी तथा जीविका, आश्रितों के पूरक हितलाभों सहित या रहित, बुनियाद के रूप में मिलते हैं। परन्तु बीमा योजनाओं के अन्तर्गत पेन्शनों का हिसाब लगाने में एक और बात हमेशा आती है : दिये हुए चंदों की संख्या और दर। यदि कुटुंब भत्तों की बीमा या सार्वभौमिक योजना अस्तित्व में है तो पेन्शनयाफ्ता को ये मिलते रहेंगे--कभी कभी पहले की अपेक्षा अधिक दर से भी मिलते रह सकते हैं।

अधिकांश बीमा योजनाओं द्वारा अपनाये हुए सूत्र में दो तत्व होते हैं जिनमें आश्रितों के पूरक हितलाभ जोड़े जा सकते हैं—बहुधा सिर्फ बच्चों के लिए। आय सुरक्षा सिफारिशों का अनुसरण करते हुए, योजनाओं का एक अल्पसंख्यक वर्ग सतत परिचर्या की आवश्यकता वाले अपाहिजों के लिए भी पूरक हितलाभ देता है।

पहला तत्व तो वह मूल रक़म है जिसे पाने का अधिकार तभी प्राप्त होता है जब संभावित घटना ऐसे समय पर हो जब पात्रता अवधि की पूर्ति की जा चुकी है। अधिकांश योजनाओं में, यह रक़म उस औसत मज़दूरी के शतांशों के रूप में होती है जिस पर चंदा दिया गया था। या तो प्राशासनिक सरलता की दृष्टि से या नक़दी मज़दूरी के बढ़ने की आम प्रवृत्ति के लिए गुंजायश रखने की दृष्टि से, बहुधा आखिरी पांच या दस वर्ष की मज़दूरी ही हिसाब में ली जाती है। यह प्रतिशत २५ और ६५ प्रतिशत के बीच होते हैं। मूल रकम एक न बदलने वाली रकम भी हो सकती है परन्तु यह प्रथा बहुत कम प्रचलित है।

दूसरा तत्व बढ़ती का है याने औसत सालाना मज़दूरी का नियत शतांश (जैसे १ प्रतिशत या २ प्रतिशत) जो प्रति चंदे के वर्ष के हिसाब से मूल रकम में जोड़ा जाता है या जहां मूल रकम बड़ी है वहां पात्रता-अवधि के वर्षों को छोड़ कर बाद के वर्षों में जिन वर्षों में चन्दा दिया गया है उनमें से हर एक के बारे में चंदा जोड़ा जाता है।

पेन्शन चाहे असमर्थता के लिए हो या वृद्धापकाल के लिए, उसका हिसाब एक ही सूत्र से लगाया जाता है। परिणामतः निवृत्ति-वय के कुछ समय पूर्व ही दी हुई असमर्थता पेन्शन करीब करीब उतनी ही होगी जितनी वृद्धापकालीन पेन्शन होती। न्यूनतम पेन्शन उस मूल रकम के बराबर होती है जिसमें पात्रता-अवधि से सम्बन्ध जोड़ा जाता है।

ऐसे पेन्शन सूत्र का उदाहरण नीचे दिया जाता है :

(अ) असमर्थता और वृद्धापकालीन पेन्शनें :

(i) मूल रकम—बुनियादी मज़दूरी (याने पिछले ५ वर्षों की औसत मज़दूरी) की २५ प्रतिशत ।

(ii) बढ़ती—पहले १५० हफ्ते छोड़कर, जिनमें चंदा दिया गया है ऐसे हर ५० हफ्ते पीछे बुनियादी मज़दूरी की १ प्रतिशत ।

(iii) पूरक—हर बच्चे के प्रति (i) और (ii) के जोड़ का १० प्रतिशत ।

अधिकतम पेन्शन—बुनियादी मज़दूरी की ८५ प्रतिशत ।

(ब) उत्तरजीवियों की पेन्शनें :

(i) विधवा : अ (i) और (ii) के जोड़ का ४० प्रतिशत ।

(ii) प्रति बच्चा : उसी का २० प्रतिशत ।

(iii) प्रति अनाथ (मां बाप दोनों मृत) : उसी की ३० प्रतिशत अधिकतम—उसी की १०० प्रतिशत ।

जिन थोड़ी सी पेन्शन बीमा योजनाओं का प्रसार कमाने वाली समस्त जनसंख्या तक है, उनमें, स्कूल छोड़ने के बाद से बीमे में दाखिल होने वाले लोगों के बारे में, दिये हुए चन्दों की रकम में और पेन्शन की दर में बिल्कुल ठीक अनुपात रखा जाता है और यह न्यायोचित ही है। उदाहरणार्थ पेन्शन, चंदे के हर एक वर्ष के लिए उस साल की मज़दूरी का १ प्रतिशत हो सकती है या यदि पेन्शनयाफ्ता विवाहित हो तो १½ प्रतिशत। बीमा सिद्धांत का उपयोग करते हुए भी, ऐसी विस्तृत योजना, कमाने वाली जनसंख्या के सदस्यों को उदार अन्तर्कालीन पेन्शनें दे सकती है, जो योजना शुरू होते समय ही वयस्क हो चुके थे क्योंकि वह वृद्धों के पोषण का खर्च, हाल में कमाती हुई सारी जनता में बांट सकती है।

सहायता या सार्वभौम योजनाओं में पेन्शनें स्वभावतः ही उपजीविका प्रकार की होती हैं जिसे पेन्शनयाफ्ता और उसके आश्रितों की असली या मानी हुई आवश्यकताओं से नापा जाता है। अर्थात पति पत्नी दोनों ही स्वतंत्र रूप से इस पेन्शन के हक़दार हैं; परन्तु स्वतंत्र पेन्शन लेने के वय से पत्नी के कुछ वर्ष छोटी होने पर भी, पेन्शनयाफ्ता पति को उसके प्रती पूरक हितलाभ दिया जा सकता है। इस प्रकार की अधिक प्रगतिशील योजनाओं ने अन्य विशिष्ट आवश्यकताओं के लिए भी पूरक हितलाभ देना शुरू कर दिया है जैसे कि अयोग्य पेन्शनयाफ्ता की पत्नी और बच्चों की परवरिश के लिए, शहर में रहने के अधिक खर्च के लिए और जाड़ों के वास्ते ईंधन का इन्तजाम करनें के लिए।

सहायता और सार्वभौमिक, इन दोनों प्रकार की योजनाओं में, ये पूरक हितलाभ, साधन-प्रमाण देने पर ही दिये जाने की संभावना है। दूसरी ओर, यदि किसी सहायता योजना को सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन का पालन करना है तो उसे साधन-प्रमाण में से बचत की काफी रकम को विमुक्त करना होगा, और दो देशों में तो वृद्धापकालीन पेन्शन के लिए साधन-प्रमाण एक विशिष्ट आयु तक ही देना पड़ता

है। इस प्रकार, यथार्थ में, शुद्ध सहायता या सार्वभौमिक योजनाएं अस्तित्व में ही नहीं हैं परन्तु यह दोनों, अपने कुछ हितलाभों के लिए, एक दूसरे के सिद्धांतों का आश्रय लेती हैं। फिर भी, विशेषत: वृद्धापकालीन पेन्शनों के बारे में, प्रवृत्ति मूल पेन्शन की एक रूपता की ओर ही है। मितव्ययिता को हतोत्साहित करने की प्रवृत्ति, जो साधन-प्रमाणों का अपरिहार्य परिणाम है, उसका गम्भीर दोष लगता है विशेषत: इसलिए कि आजकल सहायता योजना का मूल्य उद्योगी जनता में विस्तृत रूप से बांटा जाता है।

किसी पेन्शन सूत्र के मूल्यांकन की सच्ची कसौटी तो सँभावित घटना होने के अधिकांश मामलों में वास्तव में दी जाने वाली पेन्शन है, न कि तुलनात्मक दृष्टि से क्वचित ही होने वाले बहुत बिगड़े हुए मामलों में दी जाने वाली पेन्शन। इसी कारण, सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन का प्रयत्न यह सुनिश्चित करने का रहा है कि, योजना का प्रकार और क्षेत्र कुछ भी हो, पेन्शन, अधिकतर जीविका के लिए पर्याप्त होनी चाहिए। इसलिए उसमें निम्नलिखित मौकों पर कम से कम किस दर से पेन्शन दी जाय यह विहित किया गया है: (१) वृद्धापकालीन पेन्शनों के लिए, जब कि पेन्शनयाफ्ता की पत्नी भी निवृत्ति-वय की है और उसने ३० वर्षों के चन्दे की या नौकरी की या (सहायता या सार्वभौम योजनाओं में) २० वर्ष तक वास्तव्य की पात्रता अवधि पूर्ण की है; (२) असमर्थता पेन्शन के लिए, जब कि पेन्शनयाफ्ता के पत्नी और २ बच्चे हैं और उसने १५ वर्षों के चन्दे या नौकरी की या (सहायता या सार्वभौम योजनाओं में) १० वर्ष वास्तव्य की पात्रता-अवधि पूर्ण की है; और (३) उत्तरजीवियों की पेन्शनों के लिए जहां उत्तरजीवी विधवा और दो बच्चे हैं और उनके पोषण कर्त्ता ने वही शर्तें पूर्ण की हैं जो अयोग्यता पेन्शन के लिए ऊपर दी गयीं हैं।

कनवेन्शन के अनुसार, इनमें से हर एक पेन्शन (विमुक्त रकम से अधिक साधनों को मिलाकर) किसी प्रतिमानित मज़दूरी की कम से कम ४० प्रतिशत होनी चाहिए। जहां पेन्शन, सिर्फ़ या मुख्यत:, व्यक्ति की मूल मज़दूरी पर आंकी जाती है वहां, वह, उन सब मज़दूरों के लिए, जिनकी मज़दूरी, योजना-क्षेत्र में आने वाले उद्योगों के प्रतिनिधिक उद्योग के एक निपुण कर्मचारी की मज़दूरी के बराबर या कम है, उस मज़दूरी के ४० प्रतिशत तक पहुँच जाना चाहिये। परन्तु, दूसरी ओर, जहां पेन्शन जीविका के मूल्य पर आधारित है वहां इस ४० प्रतिशत का हिसाब, प्रतिनिधिक अनिपुण कर्मचारी की मज़दूरी पर लगाया जाता है।

कनवेन्शन बनाने की तैयारी के सिलसिले में, सन् १९५१ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ़्तर ने, कनवेन्शन में दी हुई परिस्थितियों में आश्वासित पेन्शनों की पर्याप्तता की दुनिया के विभिन्न प्रादेशिक विभागों के बीस एक देशों की प्रमुख योजनाओं के अन्तर्गत, अच्छी तरह जांच की। इसके परिणामों का सारांश निम्नलिखित सारिणी में प्रस्तुत किया गया है जिसमें यह बताया गया है कि कितने देशों में पेन्शनें उचित प्रतिमानित मज़दूरी के किसी दिए हुए प्रतिशत तक (जो बायें खाने में दिया है) पहुंच पाई हैं; (अ)

खाने में दी हुई संख्या उन देशों की द्योतक है जहां प्रतिशत निपुण मज़दूर की मज़दूरी पर आंका गया है और (ब) खाने में दी हुई संख्या उनकी है जहां प्रतिशत अनिपुण मज़दूर की मज़दूरी पर आंका गया है।

प्रतिमानित मज़दूरी का प्रतिशत	देशों की संख्या					
	वृद्धापकालीन पेन्शन		असमर्थता पेन्शनें		उत्तरजीवियों की पेन्शन	
	(अ)	(ब)	(अ)	(ब)	(अ)	(ब)
३१	—	१	—	—	४	२
३१–४०	२	—	२	—	३	१
४१–५०	६	४	६	—	२	३
५१–६०	२	२	२	२	१	—
६१–७०	१	२	—	—	—	—
७१–८०	—	२	१	२	—	—
८० से अधिक ...	—	—	—	१	—	—

जीविका लायक हितलाभ देने के सिद्धांत पर चलने वाले देशों में [खाना (ब)] कुशलता पर आधारित मज़दूरी के भेद कम हैं। साथ ही इन में से अधिकांश देश समृद्ध भी हैं। परिणामतः इनकी पेन्शनें अधिक आकर्षक हैं। कनवेन्शन में विहित ४० प्रतिशत का आंकड़ा, सम्भवतः वृद्धापकालीन और असमर्थता पेन्शनों के लिए बहुत छोटा है परन्तु उत्तरजीवियों के लिए यह कुछ अधिक जान पड़ता है। लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय श्रम परिषद ने जानबूझ कर यह तय किया था कि उत्तरजीवियों की पेन्शनों के लिए यही प्रतिशत रखा जाय। यह ध्यान में रखा जाय कि तीसरे बच्चे की पेन्शन का समावेश करने पर अनेक योजनाओं की उत्तरजीवियों की पेन्शनें न्यूनतम प्रतिमान तक पहुँच जातीं।

कई पेन्शन बीमा योजनाओं में बीमान्वित व्यक्ति को, निवृत्ति-वय के ५ वर्ष पूर्व ही कम दर से पेन्शन लेने का मौका दिया जाता है। परन्तु दूसरी ओर निवृत्ति-वय पर पहुँचे हुए लोगों को अपना बीमा चालू रख कर दावा देर से करने को प्रोत्साहन

देने की प्रथा बढ़ रही है। देर के प्रति वर्ष पीछे २, ३ या ४ प्रतिशत तरक्की के रूप में रखा जाता है।

अन्त में यह देखकर बड़ा प्रोत्साहन मिलता है कि कनवेन्शन के बाद बनी हुई या संशोधित सारी प्रमुख महत्वपूर्ण पेन्शन योजनाओं में जीविका के मूल्य के अनुसार पेन्शनों के नियमित रूप से बदलते रहने की व्यवस्था की गई है।

पांचवें और छठवें पाठों पर प्रश्न

१. सामाजिक सुरक्षा पद्धिति की विभिन्न शाखाओं में एकसूत्रीकरण की आवश्यकता, अयोग्यता सम्बन्धी उदाहरण देकर बताइये।

२. किन परिस्थितियों में, वृद्धापकालीन पेंन्शन पाने वालों को लाभदायक कार्य करने की मुमानियत करना न्यायोचित है ?

३. आपके मतानुसार विधवाओं के किन वर्गों को पेन्शन मिलनी चाहिये ?

४. मर्यादित क्षेत्र की पेन्शन बीमा योजनाओं में चन्दे की पात्रता-अवधि के क्या उद्देश्य हैं वृद्धापकालीन पेन्शनों की अपेक्षा, अयोग्यता और उत्तरजीवियों की पेन्शनों के लिए यह अवधि छोटी क्यों होनी चाहिये ?

५. मर्यादित क्षेत्र की पेन्शन बीमा योजनाओं में पेन्शनों में साधारणतः कौन कौन से तत्व होते हैं ?

६. निवृत्ति-वय में कुछ हद तक प्रसरणशीलता रखना और पेन्शन की दर में तत्सम्बन्धी फेर बदल करना क्यों उचित है ? कारण सहित लिखिये।

—✦✦—

पाठ ७

हितलाभ (चालू)

औद्योगिक चोट हितलाभ

औद्योगिक चोट की संभाव्य घटना में सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा की सबसे पुरानी शाखा है और आज दुनियां के करीब हरएक देश में मिलती है। अपने पुरानेपन के कारण, सिर्फ एक शक्तिशाली प्राशासनिक संस्था के रूप में ही नहीं, वरन, इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात तो यह है कि एक कानूनी सिद्धांत के व्यावहारिक उपयोग के रूप में भी, जिससे ऐसी सुरक्षा को कर्मचारी के असन्दिग्ध हक़ का स्थान प्राप्त हुआ है, औद्योगिक चोट योजनाएं मज़बूत पाये पर स्थापित हो गई हैं।

कोई भी औद्योगिक चोट योजना उन संभाव्य घटनाओं में जो बीमारी, अपंगता तथा मृत्यु के कुल मामलों का एक अंश मात्र है, विशेष डाक्टरी तथा बीमारी हितलाभ और विशेष अपंगता तथा उत्तरजीवियों के हितलाभ दिलाने की एक साधन मात्र है। सामाजिक दृष्टिकोण से ये अपेक्षाकृत रूप में महत्वहीन हैं। आजकल औद्योगिक चोट योजनाएं, चाहे वे श्रमिकों की क्षतिपूर्ति के रूप में हों या सामाजिक सुरक्षा की एक शाखा के रूप में, अपने आपको सामाजिक सुरक्षा की मुख्य पद्धति से आच्छादित और मुकाबला करते पाती हैं। यह मुख्य पद्धति भी औद्योगिक चोटों के समान ही सामाजिक आवश्यकताएं निर्माण करने वाली सम्भाव्य घटनाओं में सुरक्षा देती है। भेद सिर्फ यही है कि घटना का व्यक्ति के व्यवसाय से सम्बन्ध नहीं रहता। इसलिये सामाजिक सुरक्षा के निर्विकार वृत्ति के अभ्यासक औद्योगिक चोट योजनाओं के स्वतंत्र अस्तित्व की उपयुक्तता के बारे में सशंक होने लगे हैं और पूंछने लगे हैं कि इन्हें मुख्य पद्धति में ही क्यों न समाविष्ट कर दिया जाय ?

ऐसे अनेक कारण हैं जिनके सबब से ये योजनायें अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये हुए हैं और रहना चाहिये परन्तु यहां सिर्फ एक निर्णयात्मक कारण देना काफी होगा; आम तौर पर औद्योगिक चोट हितलाभ बीमारी और पेन्शन बीमे के वैसे ही हितलाभों के मुकाबले अधिक उदार होते हैं। ये हितलाभ मुख्यतः इसलिये अधिक हो सकते हैं कि हितलाभ की आवश्यकता पड़ने वाले मामले कम होते हैं और इसलिये उनका वित्तपोषण अपेक्षाकृत रूप से सरल है। फिर भी मुख्य पद्धति के हितलाभों की, पात्रता शर्तों और दरों के बारे में, बढ़ती हुई उदारता संभवतः अन्त में दोनों हितलाभ समूहों को एक बराबर कर देगी और इस प्रकार शारीरिक संभाव्य घटनाओं के

सामाजिक बीमे के एकीकरण और सुगमकरण की मुख्य बाधाओं को दूर कर देगी। थोड़े से देशों में यह क्रम प्रायः पूर्णता को पहुंचा हुआ जान पड़ता है। परन्तु, आमतौर पर, औद्योगिक चोट योजनाएं इतना उच्च प्रतिमान स्थापित कर रही हैं और कुछ देशों में यह अभी भी बढ़ता जा रहा है—कि वह उनकी बीमारी और पेन्शन बीमा योजनाओं की पहुंच के परे है।

औद्योगिक चोट हितलाभ पाने का हक़ कहीं भी कोई पात्रता-अवधि पूरी करने पर अवलंबित नहीं है, चाहे वह मालिक की ओर से दिया जाता हो या सामाजिक बीमे की ओर से। इतना ही काफ़ी है कि चोट लगते समय चोट खाने वाले व्यक्ति को, जिस कार्य-स्थल पर यह घटना हुई वहां, कर्मचारी की प्रतिष्ठा प्राप्त थी। यदि जिस संभाव्य घटना में सुरक्षा करनी है वह उस घटना के शिकार के इच्छाधीन नहीं है, और घटना काल और स्थल का पता लगाया जा सकता है तो बीमारी और पेन्शन बीमा योजनाओं में बुरे खतरों की दूर रखने के लिए जो प्रतिबन्ध लगाने पड़ते हैं उनकी आवश्यकता नहीं रहती।

संभाव्य घटना की परिभाषा

औद्योगिक चोटों से संरक्षण का प्राथमिक प्रकार वह था जो मज़दूरों की क्षति-पूर्ति के कानून ने स्थापित किया था और जिसके अन्तर्गत मालिक के आदेशानुसार काम करते समय कर्मचारी को लगी हुई आकस्मिक चोट की क्षतिपूर्ति के लिए महज़ मालिक को वैयक्तिक रूप में ज़िम्मेवार माना जाता था। बाद में कुछ व्यावसायिक बीमारियों को भी दुर्घटनाओं के समान माना जाने लगा। इस संभावित घटना का दुहरा रूप स्पष्ट करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर ने "औद्योगिक चोट"[1] (employment injury) नामक पदावली का आविष्कार किया जिसकी आय-सुरक्षा सिफारिश में निम्नलिखित परिभाषा की गयी है :

"शरीर में दूषित अवस्था निर्माण करने वाली चोट या बीमारी जिसका उद्गम व्यवसाय में है और जो पीड़ित व्यक्ति ने जानबूझ कर या गंभीर और स्वेच्छाचारी दुराचरण से निर्माण नहीं की है तथा जिसका परिणाम अस्थायी अपंगता, स्थायी अपंगता या मृत्यु हैं।"

चूंकि उस प्रारंभिक स्थिति मे हितलाभ देने के लिये मालिक स्वयं ज़िम्मेवार था, वह (या अधिकतर उसकी बीमा-कंपनी) "दुर्घटना" के उन व्यापक अर्थों का भरसक विरोध करते थे जो दावेदार के वकील ज़ोर से पेश करते थे और परिणामस्वरूप अंधाधुंद मुक़दमेबाज़ी हुई और बहुत सी नज़ीरे बन गयीं तथा इस विषय के विद्वता-पूर्ण विवेचनों की भी बाढ़ सी आ गयी। परन्तु जब इस संभावित घटना से सुरक्षा

[1] " damage physique due fait de Lemploi"

सामाजिक-बीमे द्वारा मिलने लगी, जैसी कि अब अधिकांश देशों में मिलती है, तो मुक़दमेंबाजी न्यूनतम हो गई। वैसे भी मुकदमेबाजी कुछ काल बाद संभवतः गिर जाती; कम से कम इस कारण कि तब तक जितने प्रकार के मामलों की कल्पना की जा सकती है उन सबसे सामना हो चुकता और उनका फैसला करने के लिये नियम मिल जाते। अन्य बहुत सी बातों की तरह मज़दूरों को मिलने वाली क्षतिपूर्ति की कहानी, सामाजिक सुरक्षा–सिद्धांत की जगह भरने के लिए मालिकों के उत्तरदायित्व के तत्व की अपर्याप्तता का एक आदर्श उदाहरण है।

१९वीं शताब्दी के कानून बनाने वालों के ख्याल में जो दुर्घटनाएं थीं वे ऐसी थीं जो कारखानों में, खदानों में या अन्य ख़तरनाक उद्योगों में काम करने वाले मज़दूरों को अपने काम के नित्यक्रम में हुआ करती थीं। वे अपना श्रम मालिक को किराये पर देते थे, जो कि उन्हें औज़ार देता था और वे उसके हाते में उसके निर्माण किए हुए मानवी और भौतिक वातावरण में काम करते थे। उस समय की परिस्थिति में, जब कि सुरक्षा के उपायों की ओर ध्यान भी नहीं दिया जाता था, मालिकों के उत्तरदायित्व का तत्व प्राथमिक न्याय की मांग का मूर्तिमान रूप जान पड़ता था।

इस सिद्धांत के उन व्यवसायों तक के विस्तार को जो निवास-स्थान क्रीड़ा-मैदान, और यहां तक कि, रास्ते से, भी कहीं अधिक सुरक्षित हैं, यह कानून बनाने वाले अवश्य ही अतिशयोक्ति मानते। और किसी कारण से नहीं तो कम से कम, ख़तरनाक व्यवसाय और अन्य व्यवसायों के बीच की सीमा निश्चित करने की व्यावहारिक कठिनाई के कारण यह प्रवृत्ति बनी। औद्योगिक चोट योजनाओं के क्षेत्र में यात्रा करने वाले सेल्समैनों को भी शामिल करना अब आम हो गया है और एक और दिशा में विस्तार होने के कारण, जिसका सम्बन्ध आधुनिक काल में रास्ते के ख़तरे बढ़ने से है, काम पर आते जाते समय होने वाली दुर्घटनायें भी इसमें समाविष्ट हो गई। परन्तु अनिवार्य मोटरगाड़ी-बीमे के प्रसार के कारण औद्योगिक चोट योजनाओं के लिए यह संभव होना चाहिये कि ऐसी दुर्घटनाओं पर होने वाले व्यय का काफी भाग वसूल कर सकें।

यह स्पष्ट दिखाई देता है कि उन सब दुर्घटनाओं में, जिनका सम्बन्ध चोट खाये हुये व्यक्ति के व्यवसाय से है, मालिकों के उत्तरदायित्व के तत्व का आश्रय लेना पड़ता है चाहे उन्हें रोकना मालिक के बस में हो या न हो। इससे भी आगे, सन् १९२६ के एक जर्मन सुधार का, जिसके अन्तर्गत दुर्घटनाओं में दूसरों को बचाने का प्रयत्न करते हुए चोट खाने वालों को क्षतिपूर्ति की जाती है, (जो सचमुच ही बहुत सराहनीय उपाय है) एक के बाद एक देश में अनुकरण किया जा रहा है।

कुछ थोड़े से देशों में, जिनकी संख्या बढ़ रही है, स्वतन्त्र कार्यकर्त्ताओं को भी औद्योगिक चोट योजनाओं में शरीक होने का मौका दिया जा रहा है। स्विटज़रलैंड में काफी लम्बे अरसे से हर प्रकार की दुर्घटनाओं के लिये, वे चाहे किसी भी कारण से हों, कर्मचारियों का अनिवार्य बीमा किया जाता है परन्तु यह एक ऐसा देश है जहां बीमारी बीमा ऐच्छिक है और उसके नकदी हितलाभ भी बहुत ही अल्प हैं। गौटेमाला में भी

अनिवार्य बीमे के अन्तर्गत सारी दुर्घटनाएं आती हैं।

औद्योगिक बीमारियों से संरक्षण औद्योगिक दुर्घटनाओं के बाद मिला। इसका कारण अंशतः यह है कि ये रोग कम हुआ करते हैं और अंशतः यह है कि डाक्टरी और सांख्य की गवेषणा ने तब तक इनके औद्योगिक उद्गम का भेद नहीं खोला था। आम तरीका, कानून में ऐसे रोगों की सूची जोड़ देने का रहा है जो, निर्विवाद रूप से उन सूरतों में औद्योगिक उत्पत्ति के हैं, जिनमें रोगी कुछ समय तक ऐसा काम करता था जिसमें उसका सान्निध्य इस रोग को उत्पन्न कर सकने वाले पदार्थों से आता था। सन १९२५ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम परिषद सिर्फ तीन रोगों के बारे में एकमत पर पहुंच सकी कि इन्हें निश्चित रूप से व्यवसायिक प्रकार का माना जा सकता है और ये क्षतिपूर्ति करने लायक महत्व रखते हैं: सीसे का ज़हरीला असर, पारे का ज़हरीला असर, और प्लीहज्वर संसर्ग। परन्तु औद्योगिक रसायन शास्त्र की प्रगति के साथ साथ नये खतरे भी बढ़ते जाते हैं। इसलिये नौ साल बाद इसमें ६ और रोग जोड़े गये जिनमें उर्जाविकरण (radiation of energy) के परिणाम भी थे। आजकल इंग्लिस्तान में, जो व्यावसायिक रोगों की क्षतिपूर्ति में अग्रगण्य रहा है, इस सूची में कोई ४० प्रकार के रोग हैं।

डाक्टरी हितलाभ

कम से कम सिद्धांत में औद्योगिक चोट योजनाओं के अन्तर्गत दिया जाने वाला डाक्टरी हितलाभ, बीमारी योजनाओं के अन्तर्गत दिये जाने वाले डाक्टरी हितलाभ से अधिक उदारता से दिया जाता है। इस भेद का प्रतिबिंब सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन में दिये हुये औद्योगिक चोट सम्बन्धी स्वतंत्र प्रतिमानों में भी दिखता है जिनके अन्तर्गत इलाज के मूल्य का हिस्सा बांटा नहीं हो सकता, इलाज के लिये आवश्यक हर प्रकार की सुश्रूषा देना लाज़मी है (बनावटी उपकरण देने और उन्हें बदलते रहने की ज़िम्मेवारी सहित) और डाक्टरी सुश्रूषा की अवधि की कोई सीमा निश्चित करने की इज़ाजत नहीं है। इस आखिरी शर्त को छोड़कर—डाक्टरी हितलाभ क्वचित ही साल भर से अधिक दिया जाता है—बाकी शर्तों का अधिकांश योजनाएं पालन करती हैं।

उन देशों में जहां औद्योगिक चोट बीमा और बीमारी बीमा (या राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा) एक ही सामाजिक सुरक्षा पद्धति के अंतर्गत साथ साथ चल रहे हैं, पहले द्वारा दूसरे की डाक्टरी सेवाओं का जो हर जगह मिल सकती हैं उपयोग करने की आम प्रथा है परन्तु चुने हुये मामलों में औद्योगिक चोट योजना यह जिम्मेदारी अपने ऊपर ले सकती है और उनका इलाज अपने वैशिष्ट्य पूर्ण अस्पतालों में कर सकती है। परन्तु जहां डाक्टरी हितलाभ देने की ज़िम्मेदारी मालिक या बीमा कंपनी की होती है, स्थानीय डाक्टरों और अस्पतालों से व्यवस्था करना आवश्यक हो जाता है और यह बहुत

मंहगी सिद्ध हो सकती है।

विशेषतः दूसरे महायुद्ध के पश्चात्, औद्योगिक चोट हितलाभों में डाक्टरी और व्यवसायिक पुनर्वास की व्यवस्था का समावेश करने की स्पष्ट प्रवृत्ति रही है। यथार्थ में डाक्टरी पुनर्वास सुधरते हुए मरीज़ की विशिष्ट सुश्रूषा द्वारा जिसमें व्यवसायिक काम करना और व्यायाम सम्मिलित हैं, पूर्ण किये हुये इलाज के अलावा कुछ भी नहीं है। परन्तु अधिकांश देशों के लिए व्यवसायिक पुनर्वास एक नई चीज़ है। इसमें विशेषज्ञों द्वारा व्यवसायिक मार्गदर्शन, नये व्यवसाय के लिए (भरण पोषण सहित) प्रशिक्षण और नौकरी दिलाने का समावेश होता है। यह नीति, आज के सामाजिक सुरक्षा आन्दोलन का सबसे सुखदायी लक्षण है जिसकी सफलता के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि देश में नौकरियों की पूर्ण उपलब्धता बनी रहे।

अस्थायी अपंगता हितलाभ

औद्योगिक चोट योजनाओं की शब्दावली में "अस्थायी अपंगता" का ठीक वही स्थान है जो उस "बीमारी" का है जिसके लिए नक़दी बीमारी हितलाभ देय है। इसलिए पाठ चार में बीमारी हितलाभ के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है उसका काफ़ी भाग यहां भी लागू है। सच तो यह है कि दर्जन भर देशों में बीमारी योजना की, औद्योगिक चोट के शिकार बने हुये व्यक्तियों के बारे में वही जिम्मेवारी है जो अन्य बीमार लोगों के प्रति है, यद्यपि जहां इन दो शाखाओं का वित्तपोषण स्वतन्त्र है वहां निश्चित अवधि (जैसे ६ सप्ताह) से अधिक काल तक दिये हुए हितलाभ की पूर्ति औद्योगिक चोट योजना ने बीमारी योजना को करनी होती है।

अधिकांश योजनाओं में छोटी सी प्रतीक्षा अवधि रखी जाती है। सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन में इसकी अधिकतम सीमा ३ दिन रखी गयी है। कई योजनाओं में, जिनमें रूस और लोक-प्रजातंत्र राज्यों की योजनाएं भी शामिल हैं, यह हितलाभ अयोग्यता के पहले दिन से देने की व्यवस्था है। उपरिनिर्दिष्ट देशों में यह विशेष सुलभ है क्योंकि हितलाभ संबन्धी निर्णय और उसका भुगतान कार्य-स्थल पर ही होते हैं।

दो तीन देशों को छोड़ कर बाकी सारे देशों में अस्थायी अपंगता हितलाभ की दर, व्यथित व्यक्ति की, दुर्घटना से थोड़े समय पहले तक की औसत मज़दूरी के अनुपात में होती है। अधिकांश योजनाओं ने ५०, ६६$\frac{2}{3}$ या ७५ प्रतिशत में से एक दर चुनी है। जिन देशों में औद्योगिक चोट और बीमारी सुरक्षा एक दूसरे से बिलकुल स्वतंत्र योजनाओं द्वारा दी जाती है वहां औद्योगिक चोट के लिए हितलाभ बहुधा दोनों में से जो अधिक होता है वह दिया जाता है जैसे ५० प्रतिशत के मुकाबले ६६$\frac{2}{3}$ प्रतिशत सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन में ५० प्रतिशत न्यूनतम निर्धारित किया गया है याने बीमारी के न्यूनतम से ५ प्रतिशत अधिक। कुटुंब हितलाभ चोट

लगने के पहले जैसे ही चालू रहते हैं।

आम तौर पर अस्थायी अपंगता हितलाभ की अधिकतम म्याद वही होती है जो बीमारी हितलाभ की होती है जैसे ६ माह या एक वर्ष। जब डाक्टरी सुश्रूषा की की म्याद समाप्त हो जाती है तब यदि कुछ अयोग्यता बाकी हो तो उसे स्थायी मान लिया जाता है।

स्थायी अपंगता हितलाभ

औद्योगिक चोट बीमे का स्थायी अपंगता हितलाभ, पेन्शन योजनाओं के असमर्थता हितलाभों से कई आवश्यक बातों में भिन्न है। वह बीमायोग्य व्यवसाय की अवधि के साथ घटता बढ़ता नहीं, वह अपंगता की मानी हुई गंभीरता के अनुसार निश्चित किया जाता है और आम तौर पर अधिक होता है।

मज़दूरों की क्षतिपूर्ति जैसी बिलकुल ही प्राथमिक योजनाओं ने एकमुश्त रकम दे देना ही स्थायी अपंगता हितलाभ देने का साधारण तरीका बना रखा है। जहां असमर्थता पूर्ण है वहां यह रकम आमतौर पर ३ वर्ष के वेतन के बराबर होती है जिसमें से अस्थायी अपंगता हितलाभ के रूप में दी हुई रकम काट ली जाती है। यह तरीका, जो इंग्लिस्तान के "कामन ला" (Common Law) के अन्तर्गत दिए जाने वाले हरजाने का भी है, उस सूरत में अधिक पसंद किया जाता है जब पेन्शन देने के लिए और अयोग्यता के अस्तित्व की समय समय पर जांच करने के लिए कोई संस्था अस्तित्व में न हो।

जहां असमर्थता अधिक है वहां सामाजिक दृष्टिकोण से इस पद्धति में गंभीर दोष हैं। आम तौर पर यह रकम इतनी नहीं होती कि उससे वार्षिकी (annuity) खरीदी जा सके, और अनुभव यह बतलाता है कि वह साधारणतः साल दो साल में में उड़ा दी जाती है और फिर वह व्यक्ति लोगों की दया का भिखारी बन जाता है। दूसरी ओर, जहां असमर्थता नाममात्र है या थोड़ी है और परिणामस्वरूप पेन्शन भी थोड़ी सी होगी वहां दोनों पक्षों की सुविधा इसी में है कि पेन्शन के बदले उसके मूलधन के बराबर रकम दे दी जाय। सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन ने इस प्रक्रिया का अनुमोदन किया है।

फिर भी आजकल अधिकांश औद्योगिक चोट योजनाओं में स्थायी अपंगता हितलाभ का साधारण रूप, कमानें की शक्ति कम होने के तथा दुर्घटना से पिछले वर्ष की औसत आमदनी के अनुपात में दी हुई पेन्शन है।

सिद्धांततः पेन्शन देने का कारण मोटे तौर से, एकसा है, चाहे वह किसी असमर्थता योजना के अन्तर्गत दी जा रही हो या औद्योगिक चोट योजना के अन्तर्गत याने पीड़ित व्यक्ति की, उसके योग्य किसी भी व्यवसाय में, उतना कमाने की असमर्थता जितना वह घटना से पहले कमाता था। परन्तु जहां अधिकांश असमर्थता योजनाओं ने द्रव्या-

र्जन शक्ति घटने की एक ही स्थिति को माना है वहां औद्योगिक चोट योजनाओं के बारे में ऐसा माना जाता है कि वे घाटे का नाप (अक्सर एक एक प्रतिशत बढ़ाते हुए) ५, १० या १५ प्रतिशत न्यूनतम से १०० प्रतिशत तक करती है। मगर रूस और अनेक लोक-प्रजातंत्र देशों में, असमर्थता के सिर्फ ३ स्तर हैं,—चाहे उसका कारण कुछ भी हो।

किसी व्यक्ति की द्रव्यार्जन शक्ति कितनी कम हुई है यह नापने का प्रयत्न व्यवहार में क्वचित ही किया जाता है। नापे तोले न जा सकने वाले मनोवैज्ञानिक प्रश्नों, तथा नौकरियों के बाजार की सदा बदलती हुई तेजी मंदी के कारण सच्चा मूल्यांकन असंभव बन जाता है। बहुधा आधिकारिक या अनधिकारिक सारिणा का आसरा लिया जाता है जिसमें सिर्फ यही विहित होता है कि अंगभंग के हरएक मुख्य प्रकार के लिए कितनी अपंगता मानी जायगी। कभी कभी व्यक्तिगत परिस्थिति का ख्याल रखते हुए अपंगता के परिमाण में थोड़ा बहुत बदल करने की गुंजायश होती है। वास्तव में कानून बनाने वाले एक पत्थर से दो पक्षी मारने का प्रयत्न करते रहे हैं—एक तो शारीरिक अपंगता के लिए आर्थिक सांत्वना देना चाहते हैं और साथ ही भविष्य में कम होने वाली कमाई की क्षतिपूर्ति भी करना चाहते हैं; इंग्लिस्तान और फिनलैंड ने अपने हाल में बनाये हुए कानूनों में इन दो प्रयोजनों को अलग रखा है : चोट के आर्थिक परिणाम कुछ भी हों, दोनों देशों में एक ही आर्थिक सांत्वना दी जाती है जो पेन्शन का एक भाग है और पेन्शन का दूसरा भाग चोट के आर्थिक परिणामों का ध्यान रखते हुए व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार जोड़ा जाता है।

अधिकांश योजनाओं के अन्तर्गत स्थायी पूर्ण अपंगता की पेन्शन पीड़ित व्यक्ति की दुर्घटना पूर्व १२ महीनों की औसत मज़दूरी का ६६$\frac{2}{3}$ या ७५ प्रतिशत होती है परन्तु इससे कम और अधिक दर भी अस्तित्व में हैं। पूर्ण पेन्शन बहुधा वही होती है जो अस्थायी अपंगता हितलाभ की होती है परन्तु कभी कभी, कानून बनाने वालों के मतानुसार, इससे कम या अधिक भी हो सकती है। यदि अपंगता इतनी अधिक हो कि काम पर वापिस जाने की सम्भावना ही न हो तो कुटुंब हितलाभ, जो सिद्धांततः कर्मचारियों के लिए ही है, देना चालू रहता है।

सन् १९२५ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम परिषद ने मज़दूरों की क्षतिपूर्ति (दुर्घटना) कनवेन्शन में, ऐसे व्यक्तियों को अतिरिक्त हितलाभ देने का आदेश देने वाले प्रतिबंध का समावेश किया जिन्हें गंभीर चोट के कारण एक सहायक की हमेशा आवश्यकता हो। इसके बाद आने वाले २५ वर्षों में बीस एक देशों ने, जिनमें अधिकांश यूरुपीय थे, इस मानवोचित और अल्पव्ययी सुधार को अपनाया। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कुछ देशों ने ऐसा ही पूरक हितलाभ असमर्थता के लिए भी दिया है।

उत्तरजीवियों के हितलाभ

औद्योगिक चोट योजनाओं में उत्तरजीवियों के हितलाभ का स्वरूप वही होता है और अधिकतम रकम या दर संबन्धी प्रतिबंध भी वही होते हैं जो स्थायी पूर्ण-अपंगता हितलाभ के होते हैं। अस्तु, अब भी कुछ योजनाएं हैं जो मृत्यु होने पर एक मुश्त रकम देती हैं जब कि बाकी सारी योजनाएं पेन्शनें देती हैं। पेन्शन के अतिरिक्त, अन्त्येष्टि कर्म हितलाभ भी प्रायः हमेशा दिया जाता है जिसकी रकम बहुधा एक माह की मजदूरी के बराबर होती है।

औद्योगिक चोट से मृत्यु होने पर हितलाभ का हिस्सा पाने वाले उत्तरजीवियों की परिभाषा, अन्य कारणों से मृत्यु होने पर पेन्शन योजना के हितलाभ पाने के लिए विहित परिभाषा से अधिक विस्तृत होने का कारण सम्भवतः दीवानी कानून का प्रभाव है जिसके अन्तर्गत चाहे जितने दूर के रिश्तेदार—आश्रितों को हरजाना दिया जाता था।

विधवा को हमेशा पेन्शन का अधिकार होता है—उसकी उम्र, कार्यक्षमता या बच्चों की जिम्मेवारी चाहे कुछ भी हो, परन्तु विधुर को यह अधिकार तभी होता है जब वह स्वयं अपंग हो। उत्तरजीवियों का अधिकतम हितलाभ यदि विधवा और बच्चों के दावे चुकाने में समाप्त नहीं होता तो अवलंबित माता पिता भी अक्सर छोटी पेन्शनों के हकदार होते हैं; अनेक योजनाओं में नाती, नातिनें और भाई बहिनों को भी हक दिये हैं बशर्ते कि वे अभी भी बच्चे हों। बच्चों की पेन्शन देते रहने की वयोमर्यादा, आमतौर पर, औद्योगिक चोट योजना और पेन्शन योजनाओं में एक सी होती है जैसे १६ या १८ वर्ष तक जो शिक्षण चालू रहने पर या बच्चा अपङ्ग होने पर बढ़ाई जा सकती है।

पेन्शन की प्रायः ये दर होती हैं: मजदूरी का ३० प्रतिशत विधवा को, १५ प्रतिशत हर बच्चे को और २० प्रतिशत हर एक अनाथ को बशर्ते कि कुल हितलाभ ६० या ७५ प्रतिशत से अधिक न होगा। सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन ने विधवा और दो बच्चों के लिए हितलाभ की एक ही न्यूनतम दर निश्चित की है याने मूल मजदूरी का ४० प्रतिशत—मृत्यु चाहे औद्योगिक चोट के कारण हो या अन्य कारणों से।

बेकारी हितलाभ

पहिले महायुद्ध के बाद इंग्लिस्तान ने बड़े परिमाण पर बीमा पद्धति की अनिवार्य बेकारी हितलाभ योजना चलाने तक बेकार लोगों को हितलाभ देने की योजनाएं चाहे वो बीमे के तत्व पर हों या सहायता के—अस्तव्यस्त और प्रयोगात्मक थीं। इस योजना ने जो प्रणाली स्थापित की उसका अगले ३० वर्षों में बीस एक औद्योगिक देशों

में अनुकरण हुआ। रूस और लोक-प्रजातंत्र राज्यों को बेकारी योजनाएं चलाने की आवश्यकता नहीं पड़ी है।

सामाजिक सुरक्षा की सारी शाखाओं में से, बेकारी में सुरक्षा देने के लिए जो शाखा जिम्मेदार है, उसका, काम चलाने लायक कार्यपटुता से संगठन और प्रशासन सबसे अधिक कठिन है। जब तक नौकरियां दिलाने की कोई व्यवस्था अस्तित्व में न हो और उस में काम करने वाले अमले को कुछ अनुभव न प्राप्त हो जाय तब तक बेकारी योजना स्थापित नहीं की जा सकती। फिर यह किसी काम की भी नहीं यदि मज़दूर वर्ग अधिकतर अनिपुण है। और यह उसी देश में चल भी सकती है जिसमें आर्थिक उन्नति इतनी हो कि उसका मज़दूर वर्ग कौशल्यों की विविधता का प्रतीक हो।

दूसरे महायुद्ध के पश्चात, पहले महायुद्ध के समान विस्तृत और दीर्घकालीन बेकारी नहीं आई थी बल्कि इसके विपरीत तब से अधिकांश औद्योगिक जगत में मनुष्यबल की तीव्र कमी बनी रही है। इस परिस्थिति में बेकारी योजनाओं के लिये बहुत कम काम बचा है और १९५० के बाद कोई नई योजना नहीं चली है। हर राज्य सरकार की यही नीति रही है कि काम मिलने का स्तर ऊँचा बना रहे परन्तु इस नीति को इतनी सफलता मिलेगी यह उन देशों ने शायद कभी न सोचा होगा जहां औद्योगिक क्षेत्र पूर्णतः राज्य के हाथ में नहीं है। जहां तक यह सफलता मुद्रास्फीति बने रहने पर निर्भर है (जैसा कि कई देशों में जान पड़ता है) वहां तक इसके अमर्यादित समय तक बने रहने की आशा नहीं की जा सकती और संभव है कि बज्राघात के रूप में न सही मगर फिर भी बेकारी अपना सिर काफी उठा ले। संक्षेप में, अभी यह मानने का समय नहीं आया है कि बेकारी योजनाओं की कार्यक्षमता समाप्त हो चुकी है।

बेकारी योजनाओं में दो प्रकार के हितलाभों की आवश्यकता होती है: बेकारी हितलाभ, जो कि सामायिक नक़दी देन होती है और कामदिलाऊ सेवा का जिन्सी हितलाभ जिसके अन्तर्गत नौकरियां दिलाने का और आवश्यकता पड़ने पर नया व्यवसाय सिखाने का समावेश होता है। यह तो ख्याल में आ गया होगा कि यह नक़दी हितलाभ बीमारी हितलाभ के सदृश्य है और कामदिलाऊ सेवाओं की उपाय योजना राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा से मिलती जुलती है। काम दिलाऊ सेवा सारी जनता को मुफ्त में मिलती है, पर बेकारी हितलाभ, बहुत थोड़े देशों को छोड़कर, अन्य देशों में सिर्फ उन्हीं को मिलते हैं जो नियमित रूप से कुछ काल नौकरी कर चुके हों।

संभाव्य घटना की परिभाषा

सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोणों से बेकारी के तीन प्रकार कहे जा सकते हैं। पहले तो वह विस्तृत बेकारी है जो औद्योगिक देशों में पिछले सौ सालों में समय

समय पर सिर उठाती रही है। इसका आखिरी दौरा सन १९३० में आया था जब ये सारी दुनियां भर फैली थी। इस विस्तृत बेकारी का कारण परम्परा की छानबीन और उसे रोकने के उपाय सोचने में अर्थशास्त्रज्ञ सतत लगे रहे हैं और उनके अध्ययन के फल राज्य सरकारों को, वैसे ही या अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ़्तर के या अन्य अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरणों के मार्फत, जिन्होंने इनमें से महत्वपूर्ण और अधिकारयुक्त सिद्धांतों को सुसंगत रूप में पेश करके उनकी ओर ध्यान आकर्षित किया, मार्गदर्शन के लिए उपलब्ध रहे हैं। यहाँ इतना ही कहना काफी है कि विस्तृत बेकारी का पहला कारण है उत्पादित वस्तुओं की मांग घट जाना और इसे रोकने के लिये सरकार द्वारा अनावर्त्तक खर्च को उत्तेजन देकर माल खरीदने वाली जनता के हाथ में खरीदशक्ति देना आवश्यक है। ऐसा करने के अनेक तरीके हैं जिनमें ब्याज की दर और कर कम करना, सरकारी खर्च बढ़ाना और बेकारी हितलाभ देना सम्मिलित है। विस्तृत बेकारी का एक विशिष्ट प्रकार है जो उन देशों में हो सकता है जिनकी समृद्धि विदेशी व्यापार पर बहुत अवलंबित हो: निर्यात का बाजार खो बैठना इतने जोर का धक्का दे सकता है कि उससे सारी अर्थव्यवस्था डगमगा जाय। इस सूरत में संभवतः एक ही उपाय है और वह यह है कि प्रतिस्पर्धा-जन्य जागतिक मूल्यस्तर के साथ हो लिया जाय।

बेकारी का दूसरा प्रकार वह है जिसे अक़सर "संघर्षात्मक" बेकारी कहा जाता है। यह आमतौर पर उत्पादन के तरीकों में तांत्रिक सुधार होने के कारण या फ़ैशन के अनुरूप बदलती हुई मांग के कारण उत्पन्न होती है। इसके परिणामस्वरूप मज़दूर को कभी कभी अपना व्यवसाय बदलना या संभवतः नया व्यवसाय सीखना आवश्यक हो जाता है। परन्तु चूंकि कुल मांग नहीं घटती है इसलिए नौकरियां मिलने के नये मार्ग शीघ्र ही खुलने की काफी संभावना रहती है। बेकारी का यह प्रकार औद्योगिक आविष्कारों और तत्परता का स्वाभाविक और अपरिहार्य परिणाम है।

मौसमी बेकारी, जो तीसरा प्रकार है, कुछ व्यवसाय-शाखाओं में स्वाभाविक है: सिर्फ कृषि में ही नहीं वरन मच्छी मारी, होटेल-व्यवसाय आदि में भी यह मौजूद रहती है। अन्य कुछ शाखाओं में, जैसे कि आतिशबाजी या बर्फ बनाने में, यद्यपि मांग मौसमी होती है तो भी उत्पादन बारहों महीने चालू रह सकता है। इन व्यवसायों में काम करने वाले लोगों को यह पता रहता है कि उनका व्यवसाय मौसम के बाद नहीं चलेगा। या तो बाकी साल के लिए दूसरा काम ढूंढने के वे आदी होते हैं या उनके पास कोई दूसरा चरितार्थ साधन होता है और वे दूसरी नौकरी की खोज में नहीं रहते।

चन्दों से वित्तपोषित और निश्चित दर से हितलाभ देने का आश्वासन देने वाली बेकारी योजनाएं संघर्षात्मक बेकारी तथा अल्पकाल के लिए कम होने वाले उत्पादन को संभालने के लिए सुसज्ज होती हैं। परन्तु वे दीर्घकालीन विस्तृत बेकारी को, जो मज़दूर वर्ग के चतुर्थांश या तृतीयांश तक पर असर करती देखी गई है, संभालने में

असमर्थ हैं। ऐसी परिस्थिति में सरकार द्वारा वित्तपोषित सहायता और निवारण कार्य के लिये चलाई हुई आपात योजनाओं का सहारा लेने के सिवा कोई चारा नहीं है। संभवतः यह माना जा सकता है कि आजकल हर एक राज्य सरकार (न कि सिर्फ वही राज्य सरकारें जिनके नियंत्रण में उनकी समस्त राष्ट्रीय वित्तयोजना है) ऐसे बज्राघात को रोकने का भरसक प्रयत्न करेंगी।

हितलाभाधिकार प्राप्त करने के लिए बनाई हुई बेकारी की परिभाषा पेचीली है, परन्तु वह ऐसी भी है जिसमें भिन्न योजनाएं एकरूपता के समीप पहुँची हुई दिखाई देती हैं। इस परिभाषा का विकास ब्रिटिश कानूनों में हुआ है और, एक दूसरे सिलसिले में, इसने वही कार्य किया है जो जर्मनी की अयोग्यता की परिभाषा ने। उसके महत्वपूर्ण अंगों का बेकारी कनवेन्शन १९३४, आय-सुरक्षा सिफारिश और सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन में समावेश हुआ। यह सहज विदित होगा कि इसका हरएक घटक न्यायोचित तथा व्यवहारोपयोगी है।

प्रथम, बेकारी अनैच्छिक होनी चाहिये : ऐसा न हो कि अच्छी नौकरी पाने के लिये नौकर ने पहली नौकरी छोड़ दी हो या उसे दुराचरण के लिये पदच्युत कर दिया गया हो। दूसरी ओर, नौकरी छोड़ने के लिये उचित कारण होना चाहिये जैसे निवासस्थान से काम करने की जगह का बहुत दूर हटाया जाना।

दूसरे, दावेदार का साधारण चरितार्थ-साधन वैतनिक नौकरी होना चाहिये : इस शर्त की पूर्ति पात्रता-अवधि से परखी जाती है जिसका हम आगे उल्लेख करेंगे। जो लोग, मौसमी काम के अतिरिक्त नौकरी नहीं करते वे अपने आपको पात्रता-अवधि की पूर्ति न कर सकने के कारण हितलाभ से वंचित पायेंगे।

तीसरे, दावेदार काम करने योग्य होना चाहिए, क्योंकि, यदि वह अयोग्य है तो वह बेकारी हितलाभ और बीमारी हितलाभ या असमर्थता पेन्शन लेगा। कुछ देशों में बेकारी हितलाभ और बीमारी हितलाभ की दर भिन्न है इसलिये जिन व्यक्तियों की प्रकृति संदिग्ध है वे जो भी हितलाभ अधिक हो वह लेने का प्रयत्न करते हैं। फिर भी, जिनकी काम करने की शक्ति कम हो गई है परन्तु जो फिर भी किसी साधारण नौकरी में कार्यकुशलता से काम कर सकते हैं, उन्हें बेकारी हितलाभ देना मना नहीं किया जाना चाहिये : मना करने का अर्थ होगा कि उन्हें पूर्णरूप से अपङ्ग करार दिया जाय। यह स्पष्ट है कि इस सम्बन्ध में बेकारी योजना का बीमारी, अयोग्यता तथा अपङ्गता योजनाओं से घनिष्ट एकसूत्रीकरण अपरिहार्य है।

चौथे, दावेदार पूर्णकालिक नौकरी के लिए उपलब्ध होना चाहिए : उसे नौकरी की सिर्फ आवश्यकता ही न होनी चाहिए, वरन वह नौकरी करने के लिए स्वतंत्र भी होना चाहिये। उदाहरणार्थ फिलहाल वह स्वतंत्र व्यवसाय में न लगा होना चाहिए या जहां सरलता से पहुँचा नहीं जा सकता ऐसी किसी दूर जगह में नहीं होना चाहिए या उसके पास नौकरी के लिए कुछ इने गिने घंटे ही खाली न होने चाहियें।

पांचवें, कोई भी "उचित नौकरी" लेने की उसकी इच्छा होनी चाहिये। किसके

लिये कौन सी नौकरी उचित है यह बेकारी योजनाओं के प्रशासन का संभवतः सबसे नाज़ुक प्रश्न है। आमतौर पर, यदि नौकरी व्यक्ति के व्यवसाय, योग्यता और शारीरिक समर्थता के अनुरूप है और उसका पारिश्रमिक भी ऐसे काम के लिए आमतौर पर मिलने वाली मज़दूरी से कम नहीं है, तो उसे उचित कहा जा सकता है। तो भी जहां यह स्पष्ट है कि दावेदार के पूर्व-व्यवसाय में निकट भविष्य में जगह खाली होने की संभावना नहीं है, वहां दूसरे प्रकार की या उससे हल्की नौकरी भी उचित मानी जा सकती है। नकारात्मक परिभाषा में वह नौकरी उचित नहीं है जिसमें काम करने की ज़गह दावेदार के घर से दूर है और उस बस्ती में घर नहीं मिलते या काम दिलाऊ सेवा घर बदलने का खर्च उठाने में सहायता नहीं करती। और फिर ऐसी नौकरी भी उचित नहीं है जो औद्योगिक विवाद के कारण खाली हुई हो।

काम दिलाऊ सेवा के कार्य

डाक्टरी सेवा के समान ही, कामदिलाऊ सेवा को भी अपने सेवा-पात्रों को अपने पैर पर खड़े होने की योग्यता की पुनःस्थापना करनी है। बेकार व्यक्ति को हितलाभ तभी दिया जाता है जब वह पहिले स्थानीय कामदिलाऊ दफ़्तर में जाकर रिपोर्ट करे और अपने व्यवसायिक जीवन का इतिहास बतला आवे। दफतर उसकी योग्यता को, नौकरियां खाली होने की, मालिकों से आई हुई सूचनाओं से मिलता है और जैसे ही उसके लायक कोई नौकरी खाली हुई कि उसे उस मालिक के पास मुलाकात के लिये भेज देता है। यह जानने के लिए कि उसके लायक कोई ज़गह खाली हुई या नहीं और, प्रसंगवश, यह भी सिद्ध करने के लिए कि इस दरम्यान उसने स्वयं कोई नौकरी तो नहीं खोज ली है, दावेदार को थोड़े मध्यांतर से बारम्बार दफ्तर में हाज़िर होना पड़ता है। हितलाभ पाने के लिए या पाते रहने के लिए दफ्तर ही उसे समय समय पर प्रमाणपत्र देता है कि वह बेकार है।

पूर्ण विकसित कामदिलाऊ सेवा मालिकों का विश्वास संपादन कर लेती है और वे उसे नियमित रूप से अपनी नौकरों की मांग सूचित करते रहते हैं। वह स्वयं भी, देश के विभिन्न भागों में खाली होने वाली नौकरियों का पता रखती है और दावेदारों को उनके साधारण व्यवसाय में या उसके समान दूसरे व्यवसाय में काम मिलने की संभावना के बारे में सलाह दे सकती है। वह चाहे तो किशोर, स्त्रियों या अपङ्ग लोगों के लिये और व्यावसायिक मार्गदर्शन तथा नौकरियां दिलाने के लिये ख़ास विभाग खोल सकती है। जिन लोगों को उनके पुराने व्यवसाय में नौकरी मिलने की संभावना नहीं है उन्हें प्रशिक्षण दिलाने की जहां सुविधा मिल सके ऐसी संघटना चलाना या उस तक पहुँच रखना उसके लिये आवश्यक है। प्रशिक्षण के काल में दावेदारों की परवरिश करना आवश्यक है और इसलिए उन्हें नकदी हितलाभ, जो आमतौर पर बेकारी हितलाभ ही होगा, देना होगा। अगर उन्हें घर बदलना पड़े

तो उसमें भी सहायता की आवश्यकता पड़ सकती है ।

हितलाभ की दर तथा पात्रता की शर्तें

बेकारी योजनाओं द्वारा दिया जाने वाला नक़दी हितलाभ, उसकी पात्रता और प्रतीक्षा अवधियां तथा हितलाभ मिलने की अधिकतम मयाद में बीमारी योजनाओं की ऐसी शर्तों से बहुत साम्य है । परन्तु मेहनत की अपेक्षा आलस्य को अधिक पसंद करने की प्रवृत्ति का नैतिक खतरा, बीमारी से बेकारी में अधिक गंभीर और नियंत्रण के लिये अधिक कठिन माना जाता है ।

बीमे के तत्व पर चलाई जाने वाली सारी बेकारी योजनाएं और बहुत थोड़ी योजनाओं को छोड़कर बाकी सारी सहायता योजनाएं दावेदार को नौकरी की पात्रता-अवधि पूर्ण करने पर बाध्य करती हैं । यह तो सही है कि सिर्फ नौकरी पेशे वाला ही नौकरी खो सकता है परन्तु यह भी जरूरी माना गया है कि उस व्यक्ति की स्थिरता से काम करने की इच्छा और शक्ति के प्रमाण-रूप में यह आवश्यक रखा जाय कि यह नौकरी काफ़ी समय तक चलती रही हो । प्रसंगवश इस शर्त का परिणाम यह होता है कि स्वतन्त्र कार्यकर्त्ता या दुकानदार जिन्होंने अपना व्यवसाय बंद कर दिया है तथा विधवाएं, जिन्हें पेन्शन नहीं मिल सकती, इस हितलाभ के क्षेत्र से बाहर हो जाते हैं यद्यपि यह संभव है कि इनमें से बहुतों को मज़दूर-वर्ग में स्थान प्राप्त करने के लिये सहायता की या प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़े । ऐसी सूरतों में रक्षण सिर्फ उन थोड़ी सी सहायता योजनाओं में मिलना है जिनमें कोई पात्रता-अवधि नहीं है ।

आमतौर से पात्रता-अवधि, दावे से पिछले १२ महीनों में ६ महीनों की नौकरी के बराबर होती है । एकआध दूसरी योजना में किशोरों के लिए यह अवधि छोटी रखी गई है । थोड़ी सी योजनाओं में इससे लम्बी अवधि रखी गई है जैसे पिछले १०४ सप्ताहों में से ५२ सप्ताह ।

आमतौर पर बीमारी हितलाभ की अपेक्षा बेकारी हितलाभ की प्रतीक्षा-अवधि बड़ी होती है । ऐसे अनेक कारण हैं जो इस भेद पर प्रकाश डाल सकते हैं । जिस नैतिक खतरे का हम अभी उल्लेख कर चुके हैं वह संभवतः इसका मुख्य कारण है । साथ ही यह भी कारण है कि बेकारी हितलाभ के दावे की कार्यवाही अधिक विस्तृत और इसलिए अधिक महंगी होती है । इसलिये यदि, जैसा कि अक्सर हो सकता है, कामदिलाऊ दफ्तर में रिपार्ट करने से थोड़े दिनों के भीतर ही, दावेदार को नौकरी दिला दी जाय तो यह कार्यवाही बेकार हो जायगी ।

दूसरी ओर लंबी प्रतीक्षा-अवधि दावेदार को अल्पकालिक काम स्वीकार करने से परावृत्त कर सकती है क्योंकि वह समाप्त होने पर उसे फिर से प्रतीक्षा-अवधि बितानी होगी । इसीलिए यदि बेकारी कुछ हफ्तों के अन्दर या साल भर में भी दोबारा आ जाय, तो अधिकांश ऐसी योजनाओं में, जिनमें सात दिन तक की प्रतीक्षा-अवधि रखी

गई है, यह शर्त फिरसे पूरी नहीं करनी पड़ती । सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन में जिसके अन्तर्गत सात दिन तक की प्रतीक्षा-अवधि लगाने की इज़ाज़त है, यह विहित किया गया है कि अल्पकालीन नौकरी के आगे पीछे के दिन बेकारी के एक ही दौरे में गिने जायेंगे ।

बेकारी योजनाएं होने वाले बीसएक देशों की बेकारी हितलाभ दरों का पुनर्विलोकन यह बतलाता है कि अधिकांश देशों में वह हितलाभपात्र की कौटुंबिक जिम्मेदारियों के साथ घटती बढ़ती है । इसका कारण यह है कि बेकारी योजनाएं सिर्फ औद्योगिक देशों में ही हैं जिनमें से, एक दो को छोड़ कर बाकी सबने कुटुंब भत्तों की व्यवस्था की है । कुछ योजनाओं में सामान्य कुटुंब भत्तों के बदले बेकारी हितलाभ के साथ, अधिक दर से, आश्रितों के लिए पूरक हितलाभ दिए जाते हैं । अधिकांश योजनाएं सिर्फ बच्चों के लिए ही नहीं वरन् ग्रहिणी के लिए भी हितलाभ बढ़ाती हैं । करीब एक तिहाई देशों में बेकारी हितलाभ की दर बीमारी हितलाभ की दर के बराबर ही होती है । अनेक योजनाओं में हितलाभ मूल मज़दूरी के अनुपात में होता है परन्तु (आश्रितों के पूरक हितलाभ को छोड़कर) मज़दूरी की बाढ़ के साथ साथ यह अनुपात घटता जाता है । यह व्यवस्था जिसमें, बीमान्वित व्यक्तियों को मज़दूरी के अनुसार भिन्न समूहों में बांटना पड़ता है, जीविका चलाने लायक एक जैसा हितलाभ और व्यक्तिगत पिछली मजदूरी के एक जैसे प्रतिशत के अनुपात में हितलाभ, के बीच की समझौते की स्थिति है ।

अधिकांश देशों में—ऐसे व्यक्ति के लिये जिसके कोई आश्रित न हो बेकारी हितलाभ की नाममात्र दर, याने वह दर जो उस मज़दूरी पर दी जाती है जो विहित अधिकतम मज़दूरी से ज्यादा न हो, ५० या ६० प्रतिशत होती है । परन्तु जहां बढ़ती हुई मजदूरी के साथ दर घटने की व्यवस्था है, वहां सब से अधिक मज़दूरी वाले समूह के लिए यह दर ३५ प्रतिशत तक गिर सकती है । सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन के अनुसार, कुटुंब भत्ते सहित, कुल हितलाभ व्यक्तिगत पिछली आमदनी का ४५ प्रतिशत होना चाहिये या जहां किसी कौटुंबिक ज़िम्मेदारी स्तर के सारे लोगों के लिए हितलाभ की एक ही दर है वहां अनिपुण मज़दूर की मज़दूरी का यही भाग होना चाहिये । जैसा कि हम बीमारी हितलाभ के सिलसिले में देख चुके हैं, यह प्रतिमान निश्चित ही बहुत नीचा है, विशेषतः जब यह औद्योगिक देशों को लगाया जाता है ।

परन्तु हम देश देश में जो सबसे अधिक भिन्नता पाते हैं वह है बेकारी हितलाभ की अधिकतम मयाद निश्चित करने में । करीब एक तिहाई योजनाएं १२ महीनों में लगभग ६ महीने हितलाभ देती हैं । इन में पात्रता-अवधि भी इसी प्रकार दावे के पिछले १२ महीनों में ६ महीनों की है । इस तरह, यदि किसी ने वर्ष के पहले आधे हिस्से भर काम किया हो तो वह दूसरे आधे हिस्से भर हितलाभ पा सकता है । दूसरी ओर, थोड़ी-सी योजनाएं, जिनमें से कुछ बीमा पद्धति की हैं, असीमित हितलाभ देती हैं । अनेक

देशों में, जहां बेकारी हितलाभ देने का साधारण ज़रिया बीमा योजना है, सहायता योजना भी होती है जो साधन प्रमाण देने पर हितलाभ देना चालू रखती हैं।

सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन के अन्तर्गत बीमा योजनाओं के लिए १३ सप्ताह का हितलाभ और सहायता योजनाओं के लिए २६ सप्ताह का हितलाभ न्यूनतम प्रतिमान के रूप में रखा गया है। परन्तु आय सुरक्षा सिफारिश ने प्रस्ताव किया था कि बीमा योजनाओं में भी हितलाभ की म्याद पर कोई बंधन न रखा जाय। परन्तु यदि हितलाभ-पात्र ऐसा काम लेने से इन्कार कर दे, जिसे करने को वह समर्थ है, पर जिसकी मज़दूरी, वैसे काम की चालू मज़दूरी से कम न होते हुये भी, उस व्यक्ति की पिछली मज़दूरी से कम है, तो इस सिफारिश में उसका हितलाभ रोकने की इज़ाज़त थी।

सच तो यह है कि बेकारी योजनाएं अपना कार्य ठीक तरह से करती हुई तब तक नहीं मानी जा सकतीं जब तक कि वे काम करने योग्य और काम करने के इच्छुक सारे लोगों के भरण पोषण की जिम्मेवारी न ले लें। यह तो ऐसी शर्त दिखती है कि हर प्रकार की राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में इसकी पूर्ति करना, सामाजिक न्यायानुसार आवश्यक है। परन्तु, जब तक कोई ज़बरदस्त मंदी न आ जाय, हितलाभ की ६ महीने की मयाद अधिकांश मामलों में बहुत काफी है। इसके अलावा यह भी पक्का समझिये कि ऐसे आपातकाल में, व्यक्तिगत बेकारी की सच्चाई की जांच करने का, बेकारी बीमा योजना द्वारा किया हुआ इंतजाम बह जायगा और, यदि कोई सहायता योजना अस्तित्व में नहीं है तो किसी भी तरह यह योजना खड़ी करनी पड़ेगी।

सातवें पाठ पर प्रश्न

१. यदि बीमारी असमर्थता या मृत्यु औद्योगिक चोट का परिणाम हो तो क्या आप की राय में, अन्य मामलों की अपेक्षा अधिक दर से हितलाभ देना उचित है ?

२. स्थायी अपंगता पेन्शन, पेन्शन पाने वाले की घटी हुई द्रव्यार्जन शक्ति के अनुपात में होती है, ऐसा माना जाता है। यथार्थ में इस घाटे का अंकन कैसे होता है ?

३. भिन्न प्रकार की बेकारी के भेद बताइये।

४. हितलाभ पाने के लिए जो बेकारी की परिभाषा है उसकी पांचों शर्तों का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

५. क्या बेकारी और बीमारी की पात्रता-अवधि, प्रतीक्षा-अवधि, हितलाभ की दर और हितलाभ की अधिकतम मयाद एकसी न होने के आपको कोई पर्याप्त कारण दिखते हैं ?

पाठ ८

सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का वित्तपोषण

इस और अगले पाठ में हम पहले तो भिन्न संभावनाओं में दियें जाने वाले हितलाभों की वारंवारता तथा कालमात्रा का विचार करेंगे और फिर उनके परिणाम-स्वरूप होने वाले व्यय को काल खंडों में और लोकसंख्या के भिन्न वर्गों में बांटने के तरीकों का अध्ययन करेंगे।

यह तो सांख्यिकों, जीवनांकिकों तथा अर्थशास्त्रज्ञों का क्षेत्र है—ऐसा क्षेत्र जिसमें सामान्य मनुष्य अपनी जोखिम पर कदम रखता है, चूंकि यह अकुशल और असावधान व्यक्ति को गिराने लायक गड्ढों से परिपूर्ण है। जो सामाजिक सुरक्षा योजनाएं (विशेषतः पेन्शनों का वायदा करने वाली) जीवनांकिक तैयारी के बगैर या नेतागिरी के उद्देश्यों से, जीवनांकिक आवश्यकताओं को जानबूझकर ठुकराकर स्थापित की गई हैं उन्होंने, अंत में, उनके आकांक्षी हितलाभ-पात्रों को निराश ही किया है—जीवनांकिक जिसकी अपेक्षा न कर सका ऐसी मुद्रास्फीति के सामान्य परिणाम इसके अतिरिक्त हैं। इसी कारण सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन राज्य सरकारों को, सामाजिक सुरक्षा की आस्तियां (Assets) और दायिताओं (Liabilities) का सामयिक मूल्यांकन करने पर बाध्य करता है जिससे उनकी शोध-क्षमता बनी रहे और हितलाभ और चन्दे जीवनांकिक प्राक्कलन के आधार पर निश्चित रहें।

फिर भी जो सामान्य व्यक्ति अपने आपको सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के नियोजन, सुधार या सामान्य दैनिक प्रशासन में उत्तरदायित्वपूर्ण स्थान में फंसा पाता है उसे सामाजिक सुरक्षा का मूल्य निश्चित करने वाले घटकों की विशालता का अंदाज़ा होना चाहिए और इस मूल्य के आज के और भविष्य के वितरण पर परिणाम-कारक होने वाली दशाएं समझते बननी चाहिए।

विभिन्न देशों की योजनाओं में, हितलाभों की परिभाषा में साम्य होते हुए भी, उन देशों के मज़दूरी-स्तर के अनुपात में हितलाभों का मूल्य एकसा होना आवश्यक नहीं है; उनकी वारंवारता तथा कालमात्रा पर अन्य परिस्थितियों का परिणाम होगा जैसे कि जनसंख्या का स्वास्थ्य और आयु वितरण, नौकरियों की नियमितता, कार्यस्थल की सुरक्षितता और सामाजिक सुरक्षा प्रशासन की उदारता या अनुदारता।

हितलाभों की वारंवारता और कालमात्रा

आखिर "सामाजिक सुरक्षा के मूल्य" से हम क्या समझते हैं? हमें जो उत्तर एकाएक सूझता है वह यह है : "वह रकम जो हितलाभ देने के लिए और प्रशासन के खर्च के लिए आवश्यक है।" यह रकम साल दर साल बदलती रहेगी चूंकि पेन्शनों का खर्च काफी लंबे अरसे तक नियमित रूप से बढ़ते रहने के हिसाब से रखा जाता है और अधिकांश दूसरे हितलाभों का खर्च एक संकुचित मर्यादा के अन्दर चढ़ता उतरता रहेगा—चलन के मूल्य में जो फर्क पड़े वह अलग। अगले पाठ में हम देखेंगे कि सामाजिक सुरक्षा योजनाओं की आमदनी किस प्रकार आंकी जाती है ताकि वह, संभावित औसत खर्च के लिए, किसी वर्ष—श्रेणी पर—जो छोटी हो या बड़ी—पर्याप्त रहे। इस पाठ में हम हितलाभदायक भिन्न संभावनाओं में गृहीत बुनियादी असलियतों का विचार करेंगे और हितलाभों की वारंवारता तथा कालमात्रा का, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर की **श्रम सांख्यकी की वार्षिक पुस्तक** (I.L.O. Year Book of Labour Statistics) से तथा क्वचित अन्य स्रोतों से लिए हुए उदाहरणों के आधार पर चित्रण करेंगे।

कुटुम्ब भत्ते

कुटुम्ब भत्तों के रूप में पड़ने वाले वार्षिक भार का हिसाब, हितलाभ-पात्र आश्रितों के हर एक वर्ग की व्यक्ति-संख्या को, हर एक वर्ग की वार्षिक भत्ते की दर से गुणा करके, लगाया जा सकता है। सरलता की दृष्टि से, हम यहां सिर्फ १५ वर्ष से छोटे बच्चों को दिए जाने वाले भत्तों का विचार करेंगे। किसी बिरादरी में किसी वर्ष में बच्चों का अनुपात, उस वर्ष की और उसके पिछले १४ वर्षों की, बच्चों की जन्म-दर और मृत्यु-दर पर अवलंबित है। अर्थात् जहां जन्म-दर कम है वहां बच्चों की संख्या कम होने की प्रवृत्ति होगी और इसके विपरीत परिस्थिति में परिणाम भी विपरीत होगा।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर के लगाए हुए एक अंदाज़े पर से यह जान पड़ता है कि आर्थिक दृष्ट्या विकसित देशों में बच्चों का कमानेवाली जनसंख्या से अनुपात ०.४४५ : १ से ०.७८५ : १ तक है। हिसाब ऐसा बैठता था कि यदि कुटुम्ब के पहले बच्चे के प्रति भत्ता न दिया जाय, तो आमतौर पर कुटुम्ब छोटे होने के कारण खर्च प्रायः आधा रह जायगा। कम उन्नत देशों में, विशेषतः मध्य अमेरिका में, बच्चों का, काम करने की उम्र वाले लोगों से अनुपात, यूरोप के आम अनुपात से बहुत अधिक था, यहां तक कि कहीं कहीं वह दोगुना था। साथ ही यह भी प्रायः निश्चित है कि इन देशों में यूरोप की अपेक्षा कम महिलाएं धनोपार्जन करती हैं। परिणामतः भत्ते के मूल्य का अंशदान देने योग्य कमाने वालों की संख्या, काम

करने की उम्र वाली जनसंख्या का और भी छोटा अनुपात रह जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर की **श्रम सांख्यकी वार्षिक पुस्तक** १९५६ में में प्रकाशित आंकड़ों के आधार पर हम, बाल-हितलाभाधिकारियों का अनुपात (आम वयोमर्यादा १५ या १६ वर्ष है) सार्वभौमिक क्षेत्र की योजनाओं में आर्थिक उद्योग में लगी हुई जनता से या किसी वर्गों तक मर्यादित योजनाओं में बीमान्वित जनता से निम्नलिखित उदाहरणों में देखें:—

(अ) **सार्वभौमिक योजनाएं**

(क) सारे बच्चों को दिए जाने वाले भत्ते :

	अनुपात
कनाडा और न्यूज़ीलैंड	१.० : १
आस्ट्रेलिया	०.८ : १
फिनलैंड	०.७ : १
स्वीडन	०.६ : १

(ख) दूसरे और उसके बाद के बच्चों को दिए जाने वाले भत्ते :

नार्वे	०.३५ : १
इंग्लिस्तान	०.२५ : १

(ब) **बीमा योजनाएं**

सारे बच्चों को दिए जाने वाले भत्ते :

अलजीरिया	१.१५ : १
बेल्जियम और इटली	०.६ : १

इंग्लिस्तान के कम अनुपात का कारण जितना वहां की कम जन्म-दर है उतना ही वहां के कमाने वालों का बड़ा अनुपात भी हैं।

बीमारी हितलाभ

स्वाभाविक ही है, कि बीमारी के अधिकांश मामले छोटी कालमात्रा के होते हैं। एक बड़ी आंग्ल मित्रता समिति ("इन्डिपेन्डेन्ट आर्डर आफ आडफेलोज़, मैन्चेस्टर सिटी") का अनुभव, जिसके आधार पर १९वीं शताब्दी के अन्त में ब्रिटिश बीमारी बीमा योजना के जीवनांकिक प्राक्कलन बनाये गये, यह था कि (जहां हितलाभ की अधिकतम कालमात्रा २६ सप्ताह की थी वहां) बीमारी के कुल दिनों

में से ८१ प्रतिशत दिन १३ सप्ताह तक की बीमारियों के मामलों के थे। २६ सप्ताह से अधिक चलने वाली बीमारियां, बहुत अधिक काल तक चलती रहने की संभावना है और उन्हें बीमारी बीमे से अयोग्यता बीमे में बदल देने का यह महत्व-पूर्ण कारण है। औषधोपचार की प्रगति देखते हुए, बीमारी की बारंबारता क्रमशः कम होते जाने की अपेक्षा की जा सकती थी परन्तु यह अपेक्षा सफल नहीं हुई है। इस सम्बन्ध में यह ध्यान में रखना मनोरंजक है कि "बीमारी" की कल्पना प्रसरणशील तथा प्रशासनिक नियंत्रण योग्य है। किसी भी योजना के डाक्टरी निरीक्षकों की प्रवृत्ति साधारण बीमारी दर की एक कल्पना बना लेने की होती है। वे भरसक प्रयत्न करेंगे कि डाक्टरों की प्रमाणपात्र देने की आदतें इस कल्पना से सुसंगत रहें, परन्तु इसकी दर को पारंपरिक स्तर के नीचे उतारने का प्रयत्न वे क्वचित ही करेंगे। परन्तु साथ ही यह भी ध्यान में रखना होगा कि उनके पूर्वजों की अपेक्षा आधुनिक लोगों को ध्यान में यह बात अधिक लाई जाती है कि स्वास्थ्य एक परीक्षण योग्य आस्ति है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर की श्रम सांख्यकी की वार्षिक पुस्तक और अन्य स्रोतों से हमने निम्नलिखित उदाहरण लिए हैं जो सब ऐसी योजनाओं के हैं जिनमें ३ दिन की प्रतीक्षा अवधि विहित है और अधिकतम हितलाभ अवधि आमतौर पर २६ सप्ताह की है। नीचे दिए हुए तीन खाने (१) मामलों की प्रतिशत बीमान्वित व्यक्ति बारंबारता, (२) एक मामले के औसत हितलाभ दिवस और (३) प्रति बीमान्वित व्यक्ति औसत हितलाभ दिवस (याने कुल हितलाभ दिवसों का कुल बीमान्वित व्यक्तियों से भागाकार) बताते हैं।

बीमारी हितलाभ की बारंबारता तथा कालमयात्रा

देश	मामलों की संख्या प्रतिशत बीमान्वित व्यक्ति	प्रति मामले औसत दिवस	प्रति बीमान्वित व्यक्ति औसत दिवस
आस्ट्रिया ...	६४	२३	१५
जर्मनी (फेडरल रिपब्लिक) ...	६५	१९	१२
तुर्किस्तान ...	४१	२०	८
वेनीजुईला ...	२५	२४	६

अंतिम दो योजनाओं द्वारा अनुभावित प्रतिशत बीमान्वित व्यक्ति बीमारी की दर कम होने का कारण, अंशतः, जहां उद्योग हाल में शुरू हुए हैं, ऐसे देशों के मज़दूर

वर्ग की कम औसत उम्र और उच्च जन्म-दर, हो सकता है। ब्रिटिश अनुभव यह बतलाता है कि ३० साल के व्यक्ति की अपेक्षा ४५ साल का व्यक्ति सालाना ५० प्रतिशत अधिक दिन बीमार हो सकता है।

प्रसूति हितलाभ

गर्भावस्था तथा प्रसूति और उनके परिणामों के कारण दिये जाने वाले नक़दी हितलाभों में प्रसूति हितलाभ का हमेशा समावेश होता है। यह प्रसूति पूर्व और अनंतर के काल में बीमान्वित महिला को दिया जाने वाला भत्ता है। परन्तु अनेक योजनाएं इसके अतिरिक्त या तो शिशु-पोषण भत्ता या नवजात शिशु के लिये कपड़े लत्ते, प्रसाधन सामग्री आदि खरीदने के लिए अनुदान या ये दोनों देती हैं और आमतौर पर ये बीमान्वित पुरुष की पत्नी तथा बीमान्वित महिला इन दोनों को मिलते हैं।

यह तो स्पष्ट है, कि प्रति बीमान्वित व्यक्ति प्रसूति हितलाभ का मूल्य, बीमान्वित महिलाओं के प्रसूति-दर तथा कुल बीमान्वित जनसंख्या से उनके अनुपात के अनुसार बदलता रहेगा। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर की **श्रम सांख्यकी की वार्षिक पुस्तक** तथा अन्य स्रोतों से जान पड़ता है कि जिसके प्रति प्रसूति हितलाभ देना पड़ता है, ऐसी सालाना जन्मसंख्या, बीमान्वित जनसंख्या की निम्नलिखित प्रतिशत थी:—

	प्रतिशत
फ्रांस	१.८
वेनीजुईला	१.७
जर्मनी (फेडरल रिपब्लिक) ...	१.४
बेल्जियम	१.१

बच्चों को आंचल का दूध पिलाने वाली माताओं को मिलने वाले शिशु-पोषण भत्ते के बारे में जर्मन (फेडरल रिपब्लिक) के निम्नलिखित आंकड़े उदाहरण का काम दे देंगे। यह भत्ता बीमान्वित महिला तथा बीमान्वित पुरुष की पत्नी दोनों को हर प्रसूति के लिए औसतन १४ सप्ताह तक दिया जाता है: पहिली के लिए न्यूनतम दर मज़दूरी का २५ प्रतिशत है और दूसरी के लिए इससे कुछ कम। इन भत्तों की सन् १९५५ की कुल कालमात्रा प्रति बीमान्वित व्यक्ति ३.४ दिन के बराबर थी।

असमर्थता पेन्शनें

राष्ट्रीय अनुभव आने के पूर्व, कर्मचारी वर्ग में असमर्थता के परिमाण का अंदाज़ बहुत ही मोटे तौर पर लगाया जा सकता है। परन्तु काम चलाने के लिए कोई जीवनांकिक आंकड़ा मिल जाने पर, असमर्थता योजनाओं के प्रशासक, असमर्थता के प्रमाणपत्र देने वालों पर, संभवतः इतना दबाव डाल सकते हैं कि पंचाटों (Awards) की संख्या उस आंकड़े के अन्दर बनी रहे।

असमर्थता पेन्शनें सिर्फ उनको ही नहीं दी जातीं जो निश्चय ही असाध्य रोगों से ग्रस्त हैं वरन् उनको भी दी जाती हैं जिनकी बीमारी उस अधिकतम काल-मात्रा से जिसतक बीमारी हितलाभ दिया जा सकता है, अधिक चल चुकी है और जिनका असमर्थता बीमा लंबे अरसे तक इलाज कर सकता है। पहले समूह के लोगों के लिये पेन्शनें, सिद्धान्ततः स्थायी होती हैं। फिर भी वृद्धापकालीन पेन्शन प्राप्त करने की उम्र तक इनका पुनर्विलोकन किया जा सकता है; परन्तु दूसरे समूह के लोगों की पेन्शन सिर्फ, उपचार या पुनर्वास की क्रिया समाप्त होने पर डाक्टरों का फैसला मिलने तक के लिए, अन्तर्कालीन भत्ता है।

डाक्टरी प्रमाणपत्र देने वाले अधिकारी का कार्य सचमुच नाजुक है। उसे यह तय करना पड़ता है कि दावेदार के करने लायक कोई उचित काम है या नहीं और यदि है, तो उसमें वह क्या कमा सकेगा। बेकारी योजनाएं न होने वाले देशों में जब जोरदार बेकारी आ जाती है तब प्रमाणपत्र देने वाले प्राधिकारी को निर्धारणा के नियम कम सख्ती से लगाने का मोह हो सकता है। दूसरी ओर, समृद्धिकाल में, शारीरिक व्यंग वाले लोगों का, जिन्हें नौकरियां दिलाई जा सकती हैं, अनुपात बढ़ेगा और नियमों का पालन अधिक सख्ती से होगा।

असमर्थता की प्रायिकता (probability) आयु के साथ तेज़ी के साथ बढ़ती है। वह १६ और ४० वर्ष की आयु के बीच में तिगुनी हो सकती है और ४० और ६० के बीच फिर से तिगुनी हो सकती है। परिणामस्वरूप जिन बीमान्वित लोकसंख्याओं की औसत आयु बड़ी हो उन्हें अधिक असमर्थता का अनुभव होने की संभावना है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर की **श्रम सांख्यकी की वार्षिकपुस्तक** से, कुछ योजनाओं के बारे में, जो अनेक वर्षों से चल रही हैं, निम्नलिखित आंकड़े लिए गये हैं। ऊपरी वयोमर्यादा के आंकड़े उस उम्र के द्योतक हैं, जब असमर्थता पेन्शन, वृद्धापकालीन पेन्शन में परिणत कर दी जाती है। यह बता देना आवश्यक है कि स्वीडन की योजना में १६वें वर्ष से, बचपन में आई हुई असमर्थता के लिए भी सुरक्षा मिलती है।

असमर्थ व्यक्तियों का बीमान्वित जनता से अनुपात

देश	वर्ष	असमर्थ लोगों का बीमान्वित जनता से अनुपात	ऊपरी वयोमर्यादा
डेनमार्क ...	१९५३	१.५	६०
फ्रांस ...	१९५५	२.४	६०
स्वीडन ...	१९५४	२.९	६७

वृद्धापकालीन पेन्शनें

कर्मचारियों के लिए सामान्य योजना या सार्वभौमिक योजना में किसी निवृत्तिवय पर कितने पेन्शन पाने वाले रहेंगे, और काम करने की उम्र वाली जनसंख्या जिसमें से कमाने वाले निकलते हैं कितनी रहेगी यह, देश की लोकसंख्यात्मक परिस्थिति और उम्मीदों पर निर्भर है । अधिकांश यूरोप में तथा अंग्रेजी बोलने वाली दुनिया में बूढ़े लोगों का काम करने की उम्र वाले लोगों से अनुपात पिछली अर्धशताब्दी से बढ़ रहा है और उम्मीद है कि यह प्रवृत्ति अभी कुछ दशक तो बनी ही रहेगी । यह सही है कि साथ ही, इन देशों में से अधिकांश में बच्चों का अनुपात घटने की प्रवृत्ति है जिससे कि बूढ़े और बच्चे मिलाकर, कुल आश्रितों के अनुपात में कम फर्क पड़ता है । परन्तु, वास्तव में एक बच्चे के मुकाबले एक वृद्धापकालीन पेन्शनयाफ्ता के परवरिश की कीमत कई गुनी होती है । इन प्रवृत्तियों के उदाहरणस्वरूप जनगणना के कुछ आंकड़े और पूर्वानुमान प्रस्तुत हैं:

प्रति १,००० जनसंख्या में भिन्न भिन्न आयु के लोग

	इंग्लिस्तान		पुर्त्तगाल		मध्य अमेरिका	
	१९५१	१९७१	१९५१	१९७१	१९५१	१९७१
१५ वर्ष से छोटे बच्चे ...	२२४	१९८	२९५	२८१	४२८	४०६
६५ वर्ष से छोटे पुरुष और ६० वर्ष से छोटी स्त्रियां	६४१	६२५	६१६	६१४	५३२	५४९
वृद्ध व्यक्ति	१३५	१७७	८९	१०५	४०	४५
	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००

यदि, अब हम अ० श्र० द० की श्रम सांख्यकी की वार्षिक पुस्तक से आर्थिक क्षेत्र में कार्यक्षम जनसंख्या (२० से ६४ वर्ष आयु की) का पता लगा लें तो हमें मालूम होगा कि वृद्ध लोगों की संख्या का, उन लोगों की संख्या से जिनको उनकी परवरिश करनी है, अनुपात मोटे तौर पर इंग्लिस्तान में १ : २९, पुर्तगाल में १ : २३ और मध्य अमेरिका में १ : ११ है।

जिन योजनाओं में चन्दों का संचय किया जाता है उनमें चक्रवृद्धि ब्याज के परिणामों के अतिरिक्त भी, निवृत्ति-वय घटाने या बढ़ाने से, पेन्शनों के मूल्य पर इतना बड़ा प्रभाव होता है कि सामान्य व्यक्ति सम्भवतः उसकी कभी अपेक्षा नहीं करेगा। यदि वय बढ़ा दिया जाय तो वृद्धापकालीन पेन्शन पाने वाले ही कम न होंगे, वरन् चन्दा देने वालों की संख्या भी बढ़ जायगी और चन्दे की दर दोतर्फा कम हो जायगी। दूसरी ओर असमर्थता पेन्शन पाने वालों की संख्या बढ़ जायगी। यदि वय कम कर दिया जाय तो इसके विपरीत परिणाम होंगे। निम्नलिखित काल्पनिक उदाहरण में हम इन परिणामों को १००० चन्देदार और पेन्शन पाने वालों के समूह पर देख सकते हैं।

निवृत्तिवय और पेन्शन पाने वालों की संख्या

निवृत्ति-वय	पेन्शन पाने वालों की संख्या		चन्दा देने वालों की संख्या	कुल पेन्शन पाने वाले—चन्देदारों के प्रतिशत के रूप में
	वृद्धापकालीन	असमर्थता (निवृत्ति-वय से छोटी आयु वाले		
५०	३३३	१५	६५२	५३
५५	२५५	२३	७२२	३९
६०	१८३	३५	७८२	२८
६५	१२१	५६	८२३	२२
७०	७०	८०	८५०	१८

यद्यपि किसी देश की प्रतिव्यक्ति आमदनी सालाना थोड़े से प्रतिशत से बढ़

रही हो—और औद्योगिक देशों में ऐसे ही बढ़ रही है—तो भी उसकी निवृत्ति-वय कम करने की योग्यता पर, पिछले दस-बीस वर्षों में सुधरी हुई स्वास्थ्य सेवाओं के परिणामस्वरूप, जिन्होंने आयु की अपेक्षा कुछ बढ़ा दी है, उस वय के पश्चात् जीवित रहने वालों की संख्या की वृद्धि के कारण, प्रतिबन्ध लग जाता है। इस परिस्थिति में, निवृत्तिवय कम करने की प्रवृत्ति अब हमें नहीं दिखाई देती। फिर भी, आयु की बढ़ी हुई अपेक्षा—जो, मान लीजिये कि पिछली अर्ध-शताब्दी में ६५ वर्ष की आयु पर २० प्रतिशत है—उस अवधि में २-३ साल से निवृत्ति वय कम करने के बराबर है। आज जो व्यक्ति ६० वर्ष की आयु पर पेन्शन लेता है उसे, यूरोप और अमेरिका में, उसका उपभोग १२ से १५ वर्ष तक मिलने की सम्भावना है और यदि पेन्शन ६५ वर्ष की आयु पर दी जाती है तो १० से १४ वर्ष तक। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां अधिक वृद्धापकाल तक जीवित रहती हैं और इसलिये उनकी आयु की अपेक्षा साल दो साल अधिक है।

विधवाओं और अनाथों की पेन्शनें

बीमान्वित व्यक्तियों के उत्तरजीवी विधवाओं और अनाथों की संख्या का अंदाजा लगाने के आधार राष्ट्रीय जनगणना और जन्म, विवाह और मृत्यु सम्बन्धी सांख्यकी हैं। जिन देशों में विधियुक्त विवाह आम नहीं हैं और उनकी जगह रखेली की प्रथा ने ले रखी है, वहां भविष्य के उत्तरजीवियों की संख्या का अंदाजा लगाना अत्यंत कठिन है।

सन् १९३८ की जर्मन सांख्यकी के अनुसार ६५ वर्ष से अधिक आयु की या असमर्थ विधवाओं की संख्या, बीमान्वित लोकसंख्या की ३.६ प्रतिशत थी। यह १९५५ तक ५ प्रतिशत तक बढ़ने की अपेक्षा की जाती थी। इसी वर्ग की विधवाओं की संख्या फ्रांस में, सन् १९५५ में क्रियान्वित जनता की ३.७ प्रतिशत थी। बेल्जियम में, जहां बीमान्वित व्यक्तियों की सारी विधवाएं पेन्शन पाती हैं, १९५५ का आंकड़ा ८.५ प्रतिशत था। इंग्लिस्तान में, युद्धोत्तर अधिनियमों के अन्तर्गत पेन्शन पाने वाली विधवाओं के सम्बन्ध में (परन्तु इससे पहले के अधिनियमों के अन्तर्गत अभी तक पेन्शन पाते रहने वालों के सम्बन्ध में नहीं) हमें बीमान्वित जनसंख्या के प्रतिशत के रूप में पेन्शनयाफ्ता विधवाओं का निम्नलिखित वितरण मिलता है :—

	प्रतिशत
६० वर्ष से बड़ी विधवाएं	५.३
६० वर्ष से छोटी विधवाएं जिनके १ आश्रित बच्चा है ...	०.४
४० वर्ष से बड़ी या असमर्थ	०.८
	६.५

इन सारे आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश पेन्शनयाफ्ता विधवाओं का समावेश वृद्ध जनसंख्या में होता है।

कुछ देशों के बारे में, जिन सब में जन्म-दर कम है, हम पेन्शन पाने वाले बच्चों का, जिनके पिता, या माता-पिता दोनों का स्वर्गवास हो चुका है, बीमान्वित जनसंख्या से अनुपात देते हैं:

				प्रतिशत
इंग्लिस्तान	...	१९३६	...	१.५
जर्मनी	...	१९३८	...	१.६
स्विट्ज़रलैण्ड	...	१९५४	...	२.०

औद्योगिक चोट हितलाभ

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, औद्योगिक चोट बीमा यथार्थ में बीमारी, असमर्थता और उत्तरजीवियों के बीमे की ही एक विशेष योजना है जो जो मुख्य सामान्य योजनाओं के मुकाबले बहुत थोड़ी संभावनाओं में सुरक्षा प्रदान करती है, परन्तु जिसके अन्तर्गत मिलने वाले हितलाभ बहुधा अधिक उदार परिमाण में होते हैं। यह तो याद होगा कि हितलाभ चार प्रकार के होते हैं: अस्थायी अपंगता भत्ता; स्थायी अपंगता पेन्शन; उत्तरजीवियों की पेन्शन; डाक्टरी हित-लाभ।

विभिन्न व्यवसायों में औद्योगिक चोट के खतरे की संभावना में बड़ा भेद होता है और आर्थिक उद्योगों में, उनके अन्तर्गत आने वाले व्यवसायों में खतरनाक व्यवसायों की प्रधानता के अनुसार यह बदलती जाती है। उदाहरणार्थ इटली की सन् १९५४ की प्रीमियम की अनुसूची में वेतन-पत्र (Wage Bill) के ०.५ प्रतिशत से २३.१ प्रतिशत तक ६५७ विभिन्न दरें थीं। परिणामतः अपंगता की वारंवारता तथा तीव्रता और प्राणघातक दुर्घटनाओं की वारंवारता, एक देश से दूसरे देश में, बीमान्वित जनसंख्या में आर्थिक उद्योगों की विभिन्न शाखाओं के प्रतिनिधित्व के अनुपात में बदलती जाती है। देश-देश में यह भेद एक ही शाखा में भी, प्रचलित यंत्र सामग्री के प्रकारों तथा सुरक्षा साधनों के अनुसार पाये जाते हैं। अन्त में योजना द्वारा दी जाने वाली डाक्टरी सुश्रूषा की अच्छाई तथा डाक्टरी निरीक्षकों की सस्ती के अनुसार भी देश देश में इनमें भिन्नता पाई जाती है।

अ० श्र० द० की **श्रम सांख्यकी की वार्षिक पुस्तक** के आधार पर और, मैक्सिको और स्विट्ज़रलैण्ड के बारे में, अन्य स्रोतों के आधार पर हम यह निष्कर्श निकाल सकते हैं कि सन् १९५३ या १९५४ का कुल प्रीमियम, बीमान्वित व्यक्तियों की औसत मूल आमदनी के निम्नलिखित प्रतिशत के बाराबर था:

			प्रतिशत
बेल्जियम			२.६
स्विट्ज़रलैंड	...	...	२.१
मैक्सिको	...	....	१.८५
नीदरलैंड	...	...	१.५
जापान	....	..	१.१
ऑन्टेरियो	...	...	१.०

इन योजनाओं के अन्तर्गत आने वाले उद्योगों में इतनी विभिन्नता है कि इन्हें, समस्त औद्योगिक क्षेत्र का नहीं, तो काम से कम, शहरों के आर्थिक उद्योगों का प्रतीक माना जा सकता है। परन्तु जहां पहली चार में पूर्ण अपंगता के लिए हितलाभ की दर मूल मज़दूरी के ७५ से १०० प्रतिशत तक है और कोई प्रतीक्षा-अवधि नहीं है, वहां, अन्तिम दो में हितलाभ की दर कम है और ७ दिन की प्रतीक्षा अवधि भी है।

प्रतीक्षा-अवधि लगा देने से ऐसे मामलों की संख्या, जिनमें नकदी हितलाभ देना पड़ता है एकदम गिर जाती है। उदाहरणार्थ ऑन्टेरियों में ७ दिन से कम चलने वाले मामलों की संख्या, डाक्टरी हितलाभ की जिनमें आवश्यकता है ऐसे बाकी के कुल मामलों से ढाई गुनी है; स्विट्ज़रलेंड में ३ दिन से कम चलने वाले मामले, बाकी सारे मामलों से १½ गुने हैं।

जिन घटनाओं के प्रति, ३ से ७ दिन तक की प्रतीक्षा अवधि के उपरान्त अस्थायी अपंगता भत्ता देय होता है, उनकी बारंबारता, १०० बीमान्वित व्यक्तियों पीछे ५ के करीब जान पड़ती है, और, जिन मामलों में अन्त में स्थायी, अपंगता आ जाती है उनको भी हिसाब में लेते हुए, भत्ते की औसत कालमात्रा आमतौर पर, ३ सप्ताह के करीब दिखती है। जहां प्रतीक्षा अवधि नहीं है वहां बारंबारता अधिक होने के कारण, औसत कालमात्रा कम है।

स्थायी अपंगता की तुलनात्मक बारंबारता तथा तीव्रता की जांच करने में भी हमें वैसी ही कठिनाई का सामना करना पड़ता है, जैसी कठिनाई का उल्लेख हम अस्थायी अपंगता के सम्बन्ध में कर चुके हैं; नाममात्र, परन्तु स्थायी चोट के मामले बहुत अधिक संख्या में होते हैं और अपंगता की किस न्यूनतम मात्रा के लिए पेन्शन या एक मुश्त रकम ही दी जायगी इस सम्बन्ध में देश-देश की प्रथा भिन्न

है। किसी न्यूनतम मात्रा का बन्धन न रखने वाली दो योजनाओं के स्थायी अपंगता के मामलों का, तीव्रता के अनुसार, वितरण प्रस्तुत है :

अपंगता की मात्रा (प्रतिशत)	कुल स्थायी अपंगता के मामलों का प्रतिशत	
	इंग्लिस्तान	ऑन्टेरियो
०–१९	५४.३	८६.०
२०–३९	३२.८	६.१
४०–५९	७.८	२.३
६०–७९	२.६	१.६
८०–९९	०.८	०.५
१००	१.७	३.५
	१००.०	१००.०

ये आंकड़े मामूली चोटों की प्रधानता ही नहीं दिखाते, वरन् अपंगता की मात्रा ठहराने की कसौटी की भिन्नता भी दिखाते हैं। वास्तव में, इंग्लिस्तान में, क्षतिपूर्ति, धनोपार्जन शक्ति ह्रास नहीं की जाती, वरन् शारीरिक सम्पूर्णता की कमी की जाती है; यदि चोट के कारण कोई व्यक्ति नौकरी पर रखने लायक ही न रहे तो उसे पूरक हितलाभ दिया जा सकता है।

प्राणघातक घटनाओं की प्रतिशत बीमान्वित व्यक्ति बारंबारता, देश-देशों में, आश्चर्यकारक हद तक भिन्न है जैसे कि सारे कर्मचारियों को सुरक्षा प्रदान करने वाली यूरूपीय योजनाओं में सन् १९५४ या १९५५ में ०.०१ (१०,००० बीमान्वित व्यक्ति पीछे एक मृत्यु) से .०३५ तक।

अन्त में हमें डाक्टरी हितलाभ का भी उल्लेख करना चाहिये जो कि औद्योगिक चोट योजनाओं के खर्च में एक महत्वपूर्ण मद है। सन् १९५४ या १९५५ में डाक्टरी हितलाभ पर खर्च किये हुए प्रीमियम आमदनी के प्रतिशत के निम्नलिखित कुछ उदाहरण हैं:

	प्रतिशत
ऑन्टेरियो	२०
स्विट्ज़रलैंड	१६
फ्रांस	१६
नीदरलैण्ड	१३
बेल्जियम	११

यह ध्यान में रहे कि सबसे अधिक प्रतिशत, सबसे कम प्रीमियम की दर वाली योजना का है और इसका उलटा भी सही है। इसी कारण मीमांसा दिलचस्प होगी, परन्तु हम यह प्रयत्न न करेंगे।

बेकारी हितलाभ

शारीरिक सम्भावनाओं के विपरीत, बेकारी में कोई ऐसी सांख्यकिक नियमितता नहीं पाई गई है, कि मामूली फर्क के बावजूद, उसके भार की पूर्वदृष्टि वर्षों पहले से प्राप्त हो सके। यह तो सही है कि संघर्षणात्मक बेकारी की एक न्यूनतम मात्रा जिसे कम नहीं किया जा सकता, हमेशा बनी रहेगी, परन्तु यदि यही सब कुछ होता, तो बेकारी बीमा योजनाओं की आवश्यकता ही न पड़ती। महायुद्ध के पूर्वकाल में, समय समय पर, विस्तृत आर्थिक मन्दी के साथ साथ, बेकारी अंधाधुंध बढ़ जाती थी। परन्तु जिस प्रकार बीमारी बीमे के नियोजन में अब प्लेग की चिन्ता नहीं की जाती, क्योंकि लोक-स्वास्थ्य प्राधिकारी उसका प्रतिबंध करने में समर्थ हैं, उसी प्रकार संभव है कि वे राज्य सरकार, जो स्वयं उत्पादन की व्यवस्था नहीं करती, ऐसे उपायों से जो सर्वसम्मत हों, मंदी की शुरुआत होने से पहले ही रोकना सीख जायं।

चलन का मूल्य स्थायी मानते हुए, उस न्यूनतम बेकारी का अंदाजा, जिसे कम नहीं किया जा सकता, श्रमिक संख्या के २ प्रतिशत के करीब लगाया जा सकता है। परन्तु ५ प्रतिशत से अधिक बेकारी असह्य मानी जा सकती है।

जीवनांकिक पशोपेश के बावजूद, बेकारी बीमा योजनाएं फिर भी अस्तित्व में आ ही गई हैं, और उनके स्थापकों को, सुरक्षा की जिसमें आवश्यकता पड़ेगी ऐसे खतरे के वैपुल्य की, कम से कम किसी अन्तर्कालीन धारणा पर चलने के लिए मजबूर होना पड़ा है। ऐसी योजनाओं के काफी जीवनक्षम होने का मर्म उस तरीके में है, जिससे विस्तृत क्षेत्र की योजना में सुरक्षित बेकारी का वितरण आर्थिक उद्योगों की विभिन्न शाखाओं में और विभिन्न व्यक्तियों में होता है। इस सम्बन्ध में इंग्लिस्तान के दोनों महायुद्धों के बीच के काल के अनुभव की ब्यौरेवार सांख्यकिक छानबीन उद्‌बोधक है।

सन् १९३२ में, जब कि सबसे अधिक मंदी थी, बीमान्वित जनसंख्या की २३ प्रतिशत बेकार थी, और अर्थव्यवस्था की मुख्य शाखाओं में बेकारी की दर इस प्रकार थी :

खदानें	...	...	४० प्रतिशत
कारखाने	...	...	३० ,,
परिवहन	...	...	२० ,,
दूकानें	...	...	१० ,,
दूसरे वाणिज्य, बैंक आदि		...	५ ,,

कुछ शाखाओं में बेकारी हितलाभ की मांग के केन्द्रीयकरण का अर्थ है कि ऐसे बीमान्वित लोग बहुत अधिक संख्या में थे जो हितलाभ का हक़ समाप्त कर चुकने पर दुबारा हितलाभ-पात्र न बन सकने के कारण सुरक्षा के अधिकारी न रह सके। दूसरी ओर अधिक भाग्यशाली शाखाओं में ऐसे अनेक लोग थे, जो नियमित रूप से नौकरी में बने रहे। इस प्रकार बीमा योजना ने बुरे खतरों को दूर कर दिया और सामान्य मात्रा के खतरों को बचा लिया। मंदी के ज़माने में उद्योग और वाणिज्य में बेकारी का असमान वितरण औद्योगिक देशों का आम अनुभव रहा है। यही घटना है जो यह समझने में सहायता करती है कि बेकारी बीमा कैसे ऋण-शोध-क्षम बना रहा है: असाध्य मामलों को सहायता योजना या दारिद्रय निवारण योजनाओं के भरोसे छोड़कर।

बेकारी की कालमात्रा प्रतिकृति, कुछ अतिशयोक्ति के साथ, बीमारी से मिलती जुलती है तथा दीर्घकालीन बेकारी का असमर्थता से साम्य है—सादृश्य के कारण ही नहीं, वरन् नौकरी मिलने की योग्यता पर वैयक्तिक व्यंगों के परिणामों के कारण भी। ढाई साल की अवधि में, जब औसत बेकारी १० प्रतिशत थी (याने साल में ५ हफ्ते), बीमान्वित जनसंख्या के कुल ३० प्रतिशत ही लोग ऐसे थे जिन्होंने कोई हितलाभ लिया हो और इनमें से सिर्फ चतुर्थांश ने १०० दिन से अधिक हितलाभ लिया। सन् १९२८ में भी जब बीमारी की दर १० प्रतिशत थी हितलाभ पाने वालों का (न कि बीमान्वित जनसंख्या का) वितरण नीचे दिये अनुसार था :

बेकारी की कालमात्रा		पुरुष	स्त्रियां
३ महीनों से कम	...	३१.१	५०.५
३ से ६ महीनों तक	...	२८.८	३०.५
६ ,, ९ ,, ,,	...	१९.७	१२.०
९ ,, १२ ,, ,,	...	१४.९	५.८
१२ महीने और उससे अधिक	...	५.५	१.२
		१००.०	१००.०

प्रति व्यक्ति बेकारी के दौरों की संख्या थी:
पुरुष, २.४, स्त्रियां २.० ।

डाक्टरी हितलाभ

जिस सम्भावना में डाक्टरी हितलाभ की आवश्यकता पड़ती है उसकी वारंवारता, व्यवहार में, बहुत हद तक, हितलाभाधिकारी व्यक्ति की वृत्ति पर अवलंबित

रहती है। आमतौर पर, हर एक सुरक्षित व्यक्ति जितने बार चाहे उतने बार अपने डाक्टर के यहां जा सकता है, बशर्ते कि डाक्टर के पास, अन्य लोगों को देखने के बाद इतना समय हो। डाक्टर भी अपनी तरफ से यह तय करने के लिये स्वतंत्र है कि किसी इलाज की आवश्यकता है या नहीं। परन्तु यह स्वाभाविक ही है कि अधिकतर वह किसी न किसी रोग का निदान करके दवा का नुस्खा लिख देगा। इसी कारण डाक्टरों से परामर्श की वारंवारता और नुस्खों की वारंवारता एक दूसरे से संबद्ध है और इन पर देश के सुरक्षित व्यक्तियों की अपने स्वास्थ्य की स्थिति समझने की योग्यता का काफी बड़ा प्रभाव होता है। परन्तु एक बार निदान हो चुकने पर चिकित्सा का प्रकार और उसकी कालमात्रा मुख्यतः डाक्टर ही निश्चित करता है और उसका निर्णय अनेक विचारों से प्रभावित होगा—मरीज की आदर्श आवश्यकताओं से ही नहीं वरन् योजना के आर्थिक स्रोतों का ध्यान रखते हुए, उसके देने की समर्थता से और अस्पताल में स्थान की उपलब्धता से भी।

जो टूटी फूटी सांख्यकी आगे प्रस्तुत है, वह यहां वहां के जमा की गई है, ताकि यह बताया जा सके कि भिन्न बीमान्वित जनसंख्याओं की, डाक्टरी हितलाभों के बारे में, कितने भिन्न प्रकारों की मांग रहती है।

डाक्टरी हितलाभ की वारंवारता तथा कालमात्रा

देश	वर्ष	प्रति सुरक्षित व्यक्ति डाक्टरी परामर्शों की संख्या	प्रतिशत बीमान्वित, व्यक्ति अस्पताल में दाखिलों की संख्या	अस्पताल चिकित्सा की औसत कालमात्रा दिनों में	प्रति सुरक्षित व्यक्ति औषधियों के नुस्खों की संख्या
जर्मनी (फेडरल रिपब्लिक)					
बीमान्वित	१९५५	—	९.५५	२४	—
व्यक्ति आश्रित		—	९.२	२०	—
इंग्लिस्तान	१९५०	५.५	—	—	५.३
इटली	१९५२	२.८	४.९	१२.५	३.२
मैक्सिको	१९५२	५.५	४.८	—	—
पेरु	१९५३	४.५	७.०	२०	७.५
यूगोस्लाविया	१९५३				
बीमान्वित		२.५	२८.३	१४.४	२.९
व्यक्ति आश्रित			४.०	१५.०	

सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के अन्तर्गत और विशेषतः बीमारी बीमे के अन्तर्गत, डाक्टरी हितलाभ का वार्षिक मूल्य, यह हिसाब लगाकर निकाला जा

सकता है कि योजना की कितनी आमदनी, याने बीमे के चन्दे और राज्य उपदान, यह हितलाभ देने में खर्च हुई है। परन्तु इसमें इस सत्य की उपेक्षा होती है कि अनेक देशों में बीमारी बीमे को गुप्त उपदान प्राप्त होता है; उसके मरीज़, खुद के स्वतंत्र अस्पतालों में नहीं, वरन् लोक प्राधिकारों के चलाये हुए अस्पतालों में भरती कराये जाते हैं और इसके प्रति उन अस्पतालों को बनाने और चलाने के खर्च का अंश मात्र ही दिया जाता है। साथ ही कुछ यूरोपीय देशों में, बीमान्वित व्यक्ति की हैसियत से दिये हुए चन्दों के अतिरिक्त, हितलाभ पात्र से कुछ सेवाओं का अंशतः मूल्य भी लिया जाता है। आमतौर पर इसका कुल हिस्सा छोटा सा होता है, जैसे कि नकली दांत, चश्मे या बनावटी अंगों के मूल्य का कुछ भाग। परन्तु बेल्जियम, फ्रांस, जर्मनी (फेडरल रिपब्लिक) और इंग्लिस्तान में मरीज़ को दवाइयों के मूल्य का भी २० से २५ प्रतिशत तक देना पड़ता है (पहले दो देशों में वह डाक्टर के बिल का भी यही भाग देता है)।

बीमारी बीमा योजनाओं के लेखे, वास्तव में अपनी आय में से होने वाला खर्च ही बताते हैं। अ० श्र० द० की **श्रम सांख्यकी की वार्षिक पुस्तक** से और अन्य स्रोतों से हमने हिसाब लगाया है, कि जिस मूल मज़दूरी पर चन्दे लिए गए थे, उसका कितना अनुपात प्रसूति सुश्रूषा सहित डाक्टरी हितलाभ देने में कुछ योजनाओं में १९५४ या १९५५ में लगाया गया। इन सारी योजनाओं में बीमान्वित व्यक्ति के आश्रित भी सुरक्षित हैं, गो कि कभी कभी उसके बराबर विस्तृत रूप में नहीं; इसलिये प्रति बीमान्वित व्यक्ति आश्रितों की संख्या का असर उन योजनाओं के अन्तर्गत दिये जाने वाले डाक्टरी हितलाभ के मूल्य पर पड़ता है।

मूल मजदूरी के प्रतिशत के रूप में डाक्टरी हितलाभ (प्रसूति सुश्रूषा सहित) का मूल्य

देश	प्रति बीमान्वित व्यक्ति मूल्य प्रतिशत	प्रति सुरक्षित व्यक्ति मूल्य (बीमान्वित व्यक्ति तथा उसके आश्रित) प्रतिशत
मेक्सिको	७.४	२.७
फ्रांस	६.३	२.५
बेल्जियम	४.७	२.०
जापान	४.७	१.३
जर्मनी (फेडरल रिपब्लिक) ...	३.६	२.०

इंग्लैंड और वेल्स में राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा का मूल्य, राष्ट्रीय आय को, आर्थिक क्षेत्र में उद्योगी जनसंख्या में, जो अन्य देशों की बीमान्वित जनसंख्या के प्रतिरूप मानी जा सकती है, बांटकर, उसके प्रतिशत के रूप में बताया जा सकता

है। यह प्रतिशत सन् १९५४ में ३.४ थी और, चूंकि आर्थिक क्षेत्र में प्रत्येक उद्योगी व्यक्ति पीछे एक ही आश्रित था, प्रति सुरक्षित व्यक्ति मूल्य, उस आमदनी का १.७ प्रतिशत के करीब था। यदि यह योजना बीमे के सिद्धान्त पर होती तो उसके लिए जो चन्दा लगता, उससे इस मूल्य की तुलना बड़ी चित्ताकर्षक होगी। १९५२-५३ के वित्तीय वर्ष में योजना का कुल मूल्य, नौकर वर्ग तथा स्वतंत्र व्यवसायी वर्ग की अन्दाजिया आमदनी का ७.७ प्रतिशत था।

मेक्सिको उन थोड़े से देशों में से एक है, जिनमें बीमान्वित व्यक्ति तथा उसके आश्रितों की डाक्टरी सुश्रूषा की पूरी कीमत बीमारी बीमा देता है, अस्पताल की सुश्रूषा की प्रायः पूरी कीमत फ्रांस की योजना सहन करती है, परन्तु बेल्जियम और जर्मनी (फेडरल रिपब्लिक) की योजनाएं सिर्फ दो तिहाई के करीब देती हैं।

राष्ट्रीय सांख्यिकियों में, डाक्टरी हितलाभ की भिन्न मदों पर होने वाले खर्च का ब्यौरा तुलनात्मक रूप में नहीं दिया जाता। परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर ने, सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) में विहित प्रकार की डाक्टरी और प्रसूति सुश्रूषा पर अनेक यूरोपीय देशों ने सन् १९५१ में किये हुए खर्च की जांच की थी। उस में, मूल्य का विभिन्न मदों पर वितरण, मोटे तौर पर, नीचे दिये अनुसार पाया गया :

	प्रतिशत
सामान्य व्यवसायी डाक्टर द्वारा चिकित्सा तथा अस्पताल के बाहर विशेषज्ञ द्वारा चिकित्सा ...	२७
अस्पताल में सुश्रूषा	४१
औषधि संभरण	१८
दांत बचाये रखने की दृष्टि से उनकी हिफाजत ...	९
प्रसूति सुश्रूषा	५
	१००

आठवें पाठ पर प्रश्न

१. सामाजिक सुरक्षा योजनाओं से जिन संभावित घटनाओं में सुरक्षा प्रदान की जाती है उनका, योजना के कार्य का प्रत्यक्ष अनुभव आने के पूर्व जिनके भार का विश्वासनीय प्राक्कलन जीवनांकिक कर सकता है, और नहीं कर सकता ऐसा वर्गीकरण कीजिये।

२. चिकित्सा शास्त्र की प्रगति के बावजूद, प्रति बीमान्वित व्यक्ति बीमारी के औसत दिन दस बीस वर्षों में भी कम नहीं होते, इससे क्या निष्कर्ष निकल सकते हैं ?

३. निवृत्तिवय कम करने के साथ साथ, किसी नियत दर से दी जाने वाली वृद्धापकालीन पेन्शनों की कीमत इतनी तेज़ी से क्यों बढ़ती जाती है ?

पाठ ६

सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का वित्तपोषण (चालू)

ब. मूल्य का आवर्ती वितरण

जब तक इस बात की युक्तियुक्त निश्चितता न हो, कि, सामाजिक सुरक्षा योजना के आश्वासित हितलाभ नियत समय पर दिये जाते रहेंगे, तब तक वह इस नाम के लिए पात्र न होगी। यह पर्याप्त नहीं है, कि कोई राज्य सरकार घोषणा कर दे कि, चाहे मूल्य कुछ भी हो, वह (या ऐसा कहिये कि उसके उत्तराधिकारी) योजना की शोध-क्षमता का ज़िम्मा लेती है। आर्थिक क्षेत्र में उद्योगी लोक संख्या से, बाकी के लोगों के हितार्थ पैसे झटकने की भी एक व्यावहारिक सीमा है, और यह सीमा आ जाने पर या तो नाममात्र मूल्य घटाने के कारण या स्फीति के कारण हितलाभ छंट जाएंगे। इसलिये किसी योजना को कानून का स्वरूप देने के पूर्व, प्रस्तावित हितलाभ के वित्त-पोषण की समस्या की पूर्ण रूप से जांच हो जानी चाहिये और कोई व्यवहारोपयोगी हल निकाल लेना चाहिये। जैसा कि हम पिछले पाठ में कह चुके हैं, सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन का इस बात पर बड़ा जोर है।

चाहे वे बीमान्वित व्यक्ति हों, या मालिक हों या करदाता हों, वे कम से कम मोटी तौर से जानना चाहते हैं कि सामाजिक सुरक्षा के लिये होने वाले अनिवार्य खर्च के लिए उनकी कितनी आमदनी लग जायगी, क्यों कि इसमें एकाएक वृद्धि होने से उनकी जीवनचर्या में गड़बड़ मच जायगी। यह अपरिहार्य है कि जब कोई सामाजिक बीमा योजना चलायी जाती है, तब, चन्दे दारों पर, इस कल्याणकारक कार्य का परिणाम, शल्य क्रिया के झटके के समान होता है। परन्तु विभिन्न शाखाएं, एक के बाद एक स्थापित करके यह कम किया जा सकता है और बहुधा किया भी जाता है। तो सामाजिक बीमा योजनाओं का वित्तपोषण इस प्रकार आंका जाना चाहिये कि चन्दे की दर स्थिर रहे और यदि भविष्य में वह बढ़नी भी हो, तो राष्ट्रसम्पति की अपेक्षित वृद्धि के अनुपात में या सम्भवतः कुछ अधिक बढ़े। सामान्य कर राजस्व से जिनका पोषण होता है, ऐसी सामाजिक सुरक्षा योजनाओं की तांत्रिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याएं, उनसे काफ़ी भिन्न होती हैं, जिनकी हल मुख्यतः चन्दे के भरोसे पर चलने वाली योजनाओं को निकालनी पड़ती है। आगामी चर्चा में हमारा प्रयोजन मुख्यतः चन्दों पर चलने वाली योजनाओं से है।

सामाजिक सुरक्षा की सारी शाखाओं में चन्दे की दर स्थिर रखने के प्रयत्नों को

इस निष्ठुर सत्य से टक्कर लेनी पड़ती है कि न तो आमदनी और न खर्च बिल्कुल पूर्वकल्पनानुसार निकलेगा। हमेशा एक तरफ या दूसरी तरफ कुछ फर्क पड़ेगा। उदाहरणार्थ यदि बेकारी बढ़ जाय तो, सारी शाखाओं की आमदनी तो एकदम गिर जायगी पर खर्च सिर्फ बाद में बढ़ेगा। इसलिये हर एक योजना को, अपूर्वकल्पित खर्चे की वृद्धि या आमदनी की कमी संभालने के लिये रक्षित निधि संचय करने की आवश्यकता है। सामान्यतः चन्दे का थोड़ा सा भाग अलग रख कर यह निधि बनाई जायगी। जब पर्याप्त निधि संचय हो जाय और जब तक वह पर्याप्त बनी रहे, यह भाग हितलाभ बढ़ाने के लिये खर्च किया जा सकता है। यह विचलन पूर्वकल्पना के परे होने के कारण ही, अनुभव प्राप्त होने के पहले यह बतलाना असंभव है कि यह निधि कितनी बड़ी होनी चाहिये। बीमारी बीमे के लिए कुछ महीनों का चंदा पर्याप्त हो सकता है, परन्तु इससे बहुत बड़ी रकम का आधार मिले बिना बेकारी निधि अपने आप को सुरक्षित न समझ सकेगी।

सामाजिक सुरक्षा योजनाओं द्वारा सुरक्षित संभावनाओं में से कुछ तो स्वभावतः अपने आपात में बड़ी नियमित हैं, परन्तु यह सम्भव है कि अनेक वर्षों की अवधि में धीरे धीरे फर्क पड़ता हुआ दिखने लगे। ये वह घटनायें हैं जो जीवन समंको (Vital Statistics) में दर्ज की जाती हैं, याने जन्म और मृत्यु। यही कारण है कि जंचकियों की वार्षिक संख्या और वर्षानुवर्षों तक हर साल में कितने आश्रित बच्चे, निवृत्तिवय के लोग, विधवाएं तथा अनाथ बच्चे जीवित होंगे इसका पूर्वानुमान जीवनांकिक, काफी सूक्ष्म मर्यादा के अन्दर, कर सकता है।

इसी तरह, मृत्यु के समान ही, बीमारी और अयोग्यता सें भी आपात की स्वाभाविक नियमितता होती है। परन्तु किसी मामले का हितलाभ योग्य माना जाना डाक्टरी प्रमाण देने वाले प्राधिकार के निर्णय पर अवलंबित होता है और इनकी कसौटी कुछ हद तक प्रसरणशील है। इस प्रसरणशीलता का उपयोग, एक ओर तो पंचाटों की संख्या बढ़ा कर उन्हें जीवनांकिक के पूर्वानुमान के करीब पहुंचाने की ओर हो सकता है और दूसरी ओर उदारता दिखाने की सुविधा के रूप में हो सकता है।

औद्योगिक चोट के कारण उत्पन्न होने वाली बीमारी, अपंगता और मृत्यु के आपात में, एक व्यवसाय और दूसरे व्यवसाय में, बड़ी भिन्नता है, परन्तु समस्त व्यवसायों के आंकड़े एक साल से दूसरे साल तक काफी स्थिर रहते हैं।

बेकारी का, बीमारी और असमर्थता से, साम्य इसमें है कि हितलाभ प्रदान करने या न करने के निर्णय में, कुछ हद तक, प्रातीतिक अधिमूल्यन आ जाता है, परन्तु हितलाभों के परिमाण पर इसका प्रभाव बहुत ही थोड़ी मात्रा में होता है। जिस अर्थ-व्यवस्था में निजी पूंजी तंत्र का वर्चस्व है, या किसी भी देश में (अर्थव्यवस्था पद्धति कुछ भी हो) जहां विदेशी व्यापार महत्वपूर्ण है, हितलाभ के भार में बड़े उतार चढ़ाव संभव हैं। सहायता योजनाओं को तो तीव्र बेकारी का सारा रोष सहन करना पड़ता है परन्तु बीमा योजनाएं, पिछले पाठ में उल्लिखित अपनी अन्दरूनी प्रतिकार शक्ति का

आश्रय लेकर सबसे अधिक घातक परिणामों से अपनी सुरक्षा कर लेती हैं।

स्वाभाविक ही है, कि व्यवहार में, हितलाभों का मूल्य काम करने के अयोग्य, वृद्ध या बेकार बीमान्वित जनता या उसके आश्रितों की संख्या पर अवलंबित न रह कर, इनमें से ऐसे लोगों की संख्या पर, जिनको हितलाभ प्रदान किये गये हों और हितलाभ की औसत दर पर अवलंबित रहता है।

कोई भी योजना जिसका क्षेत्र सार्वभौमिक है, परिभाषानुसार उन सब व्यक्तियों को हितलाभ प्रदान करेगी, जो उस संभावना के परिणाम भुगत रहे हैं जिससे सुरक्षा करना उसका कर्तव्य है। उदाहरणार्थ, स्वीडन में कुटुंब भत्ता योजना चालू होने के दिन से, उस समय जो बच्चे अस्तित्व में थे उन सबको वह लागू हो गई और पेन्शन योजना शुरू होते ही उस समय के सारे असमर्थ और वृद्ध लोग पेन्शन पाने के हक़दार हो गये।

परन्तु जहां योजना बीमे के रूप की है, वहां पात्रता-अवधि की शर्त लगा देने के कारण, जो औद्योगिक चोट शाखा को छोड़कर बाकी सब शाखाओं में आम है, कम से कम शुरुआत में, हितलाभ-पात्रों की संख्या कम हो जाती है। इस प्रकार जब चन्दे लेना शुरू होता है उस समय जो व्यक्ति बीमार या बेकार हो, उसे नौकरी से अनुपस्थिति के इन दिनों के प्रति कोई हितलाभ न मिल सकेगा और उस दिन जो लोग असमर्थ, विधवा या अनाथ हों वे कभी भी हितलाभ-पात्र न हो सकेंगे, परन्तु यह सम्भव है कि ऐसा वृद्ध मनुष्य जो कुछ साल और काम कर सके, अंत में पेन्शन का हक़ प्राप्त करले।

पात्रता-अवधि का, हितलाभ-पात्रों की संख्या की वृद्धि में देर करने का और कुछ मात्रा में उसे मर्यादित करने का परिणाम, वास्तव में, उसकी कालमात्रा के अनुसार बदलता जाता है। अल्प अवधि का सम्बन्ध अस्थाई भत्तों से है और लंबी अवधि का पेन्शनों से। अपवाद सिर्फ यह है कि योजना लागू करते समय जो लोग वृद्धावस्था के करीब हैं उनके लिए पेन्शनों की अन्तर्कालीन व्यवस्था में पात्रता-अवधि बिल्कुल ही कम रखना आम है। एक बार पात्रता-अवधि इतने काल तक योजना चल चुकने पर, शुरुआत में जो लोग दाखिल हुए थे, उन्हें संभावित घटना होने पर हित-लाभ मिल सकते हैं। कुटुंब भत्ता बीमे के अतिरिक्त बाकी में, आकार और घटकों की दृष्टि से स्थिर बीमान्वित जनसंख्या में, हितलाभ-पात्रों की संख्या स्थायी स्तर पर पहुँचने में जो काल लगता है वह हितलाभ की अधिकतम कालमात्रा पर अवलंबित रहता है।

कुटुंब भत्ता बीमे के अन्तर्गत उन बीमान्वित व्यक्तियों को, जिन्होंने पात्रता-अवधि, जो बहुधा बहुत छोटी होती है, पूर्ण कर ली है, उनके आश्रित बच्चों के प्रति, जो उस समय जीवित हों या बाद में पैदा हों, हितलाभ दिये जाते हैं। इस कारण हितलाभ-पात्रों की तथा बच्चों की संख्या, योजना चालू होने के कुछ महीने बाद ही अपने सामान्य स्तर पर पहुँच जाती है।

बीमारी और बेकारी बीमे में, हितलाभ के एक दौरे की अधिकतम कालमात्रा आमतौर पर ६ महीने होती है: जब इतनी कालमात्रा तक हितलाभ लिया जा चुकता है तब पात्रता-अवधि दुबारा पूर्ण करनी पड़ती है। किसी भी वर्ष के पूर्वार्ध में हितलाभ-पात्रों में कुछ थोड़े से ऐसे लोग होंगे (जिनकी संख्या हम स्थिर मान सकते हैं) जो पिछले वर्ष के उत्तरार्ध से हितलाभ लेते चले आ रहे हैं; परन्तु वार्षिक औसत निकालने के लिए लगातार दो वर्षों के आंकड़े ले कर इस विकृति को टाला जा सकता है। योजना के आरम्भ काल से दूसरे वर्ष में, इस प्रकार निश्चित की हुई, बीमारी और बेकारी हितलाभ-पात्रों की संख्या का स्तर बाद में योजना की आयु के कारण न बदलेगा।

दूसरी ओर पेन्शन बीमे में, पात्रता-अवधि समाप्त होने पर भी अनेक वर्षों तक पेन्शनयाफ्ता लोगों की संख्या बढ़ती रहती है। हर साल पेन्शनयाफ्ता लोगों की नई फसल आती है और इनमें से हर एक व्यक्ति (अनाथों को छोड़कर) संभवतः अपने बाकी के जीवन भर पेन्शन पाता रहेगा।

सबसे सरल, याने वृद्धापकालीन पेन्शनयाफ्ता का उदाहरण प्रथम लेते हुए हम यह मानलें कि वार्षिक फसल में के कुछ लोग हर साल मरेंगे और इनमें का अन्तिम व्यक्ति २० साल बाद मरेगा। यदि पहिले वर्ष में १०० पेन्शनयाफ्ता हैं तो (मान लीजिये) कि दूसरे वर्ष में १९६ हो सकते हैं, तीसरे में २८८, दसवें में ८०० और बीसवें वर्ष में १००० होंगे। इस स्थूल उदाहरण से यह दिखेगा कि शुरुआत में यह संख्या सालाना दो गुनी होती जाती है और उसके बाद इसकी बाढ़ प्रति वर्ष घटते घटते कोई २० साल में यह प्रारम्भिक आंकड़े के अधिक से अधिक दस गुने तक पहुँचती है।

असमर्थता पेन्शन पाने वालों की संख्या की वक्र रेखा, छोटी पात्रता अवधि के कारण संभवतः पहले शुरू होते हुए भी, ऐसा ही मार्गक्रमण करती है, क्योंकि यद्यपि ये लोग औसतन मध्यमवय के उत्तरार्ध में हितलाभ लेने लगते हैं तो भी इनकी आयु की अपेक्षा ६५ वर्ष वाले व्यक्ति की अपेक्षा से अधिक नहीं होती। जहां तक असमर्थ और प्रौढ़ विधवाओं का सम्बन्ध है, पेन्शन पाने वाली विधवाओं की संख्या का विकास भी इसी प्रकार होता है।

यदि बीमान्वित जनसंख्या की वृद्धि उसमें छोटे आयु समूह के लोगों के आगमन से हो रही है तो इस बढ़ी हुई बीमान्वित लोक संख्या में पेन्शनयाफ्ता लोगों का अनुपात और भी धीरे बढ़ेगा। इसके विपरीत, नई भरती में तरुण लोगों की कमी पेन्शनयाफ्ताओं के अनुपात को बढ़ा देगी। जनसंख्या में बढ़ी हुई आयु वालों की प्रधानता की यह एक सूरत है जो कुछ विकसित देशों में घबड़ाहट उत्पन्न कर रही है।

औद्योगिक चोट हितलाभों में अल्पकालीन भत्ते तथा पेन्शन दोनों का समावेश होता है। सांख्यकिक दृष्टि से पहले का अनुभव बहुत कुछ बीमारी हितलाभ जैसा

होगा और अस्थायी अपंगता के मामलों के वार्षिक बोझ में नाम मात्र विविधता होगी। दूसरी ओर पेन्शनों की संख्या, पेन्शनयाफ्ता लोगों की पहली फसल के मरने तक, साल दर साल बढ़ती जायगी। चूंकि सभी वय समूहों में दुर्घटनाओं का वितरण प्रायः एकसा होता है, इन पेन्शनयाफ्ता लोगों की औसत उम्र, पेन्शन बीमे के (असमर्थता, वृद्धापकालीन तथा उत्तरजीवियों की बीमा योजनाओं के) हितलाभ-पात्रों की औसत उम्र से कम होगी। साथ ही, दुर्घटना में लगी हुई चोट के कारण आयु-अपेक्षा घटने की सम्भावना, शारीरिक व्याधियों के मुकाबले, जो असमर्थता के कारणों में सबसे प्रमुख हैं, कम है। इन कारणों से यह माना जा सकता है कि पेन्शन बीमे के हित-लाभ-पात्रों की संख्या की अपेक्षा, औद्योगिक चोट बीमे की स्थायी अपङ्गता पेन्शनों की संख्या अधिक समय तक बढ़ती रहेगी।

अब हम हितलाभ के भार पर उसकी दर या उसके सूत्र के परिणाम का विचार करने की ओर बढ़ते हैं। जैसा कि सहज ही समझ में आ जायगा, इस विचार धारा का महत्व सिर्फ पेन्शन के सम्बन्ध में है। अस्थायी स्वरूप के सारे हितलाभ या तो रकम की दृष्टि से एकरूप होते हैं या, जैसा कि बहुधा होता है, बीमान्वित व्यक्ति की हाल की मूल मज़दूरी के अनुपात में होते हैं ताकि, सिद्धांततः सालाना चन्दे की दर स्थिर रखी जा सके। क्वचित यदि कमी पड़ जाय, तो वह रक्षित निधि से पूरी की जा सकती है।

यह तो स्पष्ट है कि यदि सारे पेन्शन पाने वालों की पेन्शन की दर एक हो तो पेन्शन का भार उसी गति से बढ़ेगा, जिस गति से पाने वालों की संस्था बढ़ती है और करीब २० साल में स्थिर स्तर पर पहुंच जायगा, परन्तु यदि, जैसा कि अधिकांश पेन्शन बीमा योजनाओं के अन्तर्गत होता है, उसके न्यूनतम घटक के अतिरिक्त बाकी पेन्शन की दर, व्यक्तिगत चन्दों की संख्या और रकम के अनुपात में बढ़े, तो दी जाने वाली पेन्शनों की औसत दर हर साल बढ़ती जायगी। पेन्शनों का भार स्थिर स्तर पर पहुँचने के पहले जो काल बीतेगा वह २० वर्षों से बहुत अधिक होगा। सच तो यह है कि यदि चन्दे १५ वर्ष की आयु से दिये जाने लगे और निवृत्ति-वय ६५ हो, तो आरम्भ काल की बीमान्वित जनता के सबसे छोटे सदस्यों के पेन्शन का दावा करने के पूर्व ५० साल गुजरने होंगे (और हम यह मान सकते हैं कि ये पेन्शनें अधिक-तम दर की होंगी)। इनमें से आखिरी की मृत्यु होने तक और उसकी जगह उतनी ही पेन्शन वाले उसके उत्तराधिकारी के लेने तक और २० साल गुज़र जायंगे! इस प्रकार ७० साल बाद ही पेन्शन का भार अपने अधिकतम और स्थिर स्तर पर पहुँच पायगा।

कोई भी पेन्शन बीमा योजना ७० साल जैसे लंबे काल तक अस्तित्व में नहीं रही है और यह मानना अवास्तविक होगा कि कोई भी योजना बदली हुई आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार बदले बिना एक जीवन काल जितनी टिक सकती है। परन्तु इससे, जीवनांकिकों के इतनी दूर के भविष्य तक की स्थिति का

अनुमान लगाने के प्रयत्न व्यर्थ या बेकार नहीं होते, क्योंकि हर एक योजना को कुछ हद तक अविच्छिन्नता कायम रखनी पड़ती है, विशेषतः पुराने सदस्यों के उन अधिकारों के बारे में, जिन्हें प्राप्त करने के मार्ग पर वे अग्रसर हैं। जर्मनी की योजना का जो सन् १८९१ में चालू हुई थी, १९११ में काफी संशोधन हुआ था और दोनों महायुद्धों के पश्चात दो बार पुनर्घटना पर भी उसमें पहिचानने लायक अवशेष बाकी हैं।

इसलिये, स्थिर वातावरण में ७० वर्षों में किसी पेन्शन योजना के काल्पनिक विकास के निम्नलिखित उदाहरण का विचार करना फिर भी उद्‌बोधक होगा। जर्मन योजना के सन् १८९१ से सन् १८९९ तक के वास्तविक खर्च से शुरुआत करके, सन् १९०० से सन् १९६० तक के खर्च का अन्दाजा लगाया गया था जिसके बाद खर्च स्थिर हो जाने की आशा थी। पहले ९ वर्षों में बीमान्वित लोगों की औसत संख्या १,२०,००,००० थी और बाद के काल में १,२६,५०,००० बनी रहेगी ऐसा माना गया था। मज़दूरी का स्तर इस काल में स्थिर रहेगा, यह गृहीत किया गया था। हर एक पेन्शन में उपादान (Subsidy) का एकसा अंश था और बाकी की पेन्शन बीमेदार की मूल मज़दूरी के अनुपात में हुआ करती थी। नीचे दिये हुए वार्षिक खर्च के प्राक्कलन में पहले घटक का समावेश नहीं किया गया था।

वर्ष	प्रति बीमान्वित व्यक्ति वार्षिक खर्च	वर्ष	प्रति बीमान्वित व्यक्ति वार्षिक खर्च
१८९१	०.८	१९३०	१२.३
१९००	५.०	१९४०	१३.२
१९१०	८.८	१९५०	१३.७
१९२०	११.०	१९६०	१४.०

पेन्शन बीमे में चन्दे की दर का नियमन करने का तरीका ढूंढ निकालने की समस्या का इन आंकड़ों में स्पष्ट निदर्शन होता है।

इस पाठ के आरम्भ में चन्दे की दर स्थिर रखने का प्रयत्न करने के कारण बतलाये गये थे और चन्दा पहली बार लगाते समय बहुत जोर का झटका टालने की आवश्यकता पर भी गौर किया गया था। इसलिये पेन्शन बीमे के वित्तपोषण में, चन्दे की दर के नियमन के ऐसे तरीके को खोजने की आवश्यकता है जो इन दोनों शर्तों का समाधान कर सके : याने ऐसी दर जो अवश्यमेव स्थिर भले ही न हो पर कभी हास्यास्पद नीची या असह्य ऊंची भी न हो।

ऐसी तीव्रगति से बढ़ते हुए चालू खर्च को, जैसा कि हम ऊपर दिये हुए उदाहरण में देख चुके हैं, संभालने के लिए चन्दे की दर हर साल बढ़ाने का तो प्रश्न ही वास्तव में नहीं उठता। शुरुआत के वर्षों में बहुत कम प्रारम्भिक दर रखने से चन्देदारों के मन में योजना के आर्थिक उपलक्षणों के बारे में झूठी कल्पना बैठ जायगी। आगे चल कर जो बहुत भारी चन्दे लगेंगे उनका कभी कभी प्रतिकार अवश्य होगा और योजना अपना उत्तरदायित्व निभाने में असमर्थ हो जायगी। सबसे अधिक घाटे में प्रारम्भिक बीमान्वित जनसंख्या का तरुण वर्ग होगा, जिसने अनेक वर्षों तक चन्दे दिये होंगे और अपने बुजुर्गों की पेन्शनों का भार उठाया होगा और जो, उसकी बारी आने पर, अपने हक़ लुटे हुए पायगा।

पेन्शन बीमे के वित्तपोषण के, स्थूल मान से, दो प्रकार हैं, जिनके कारण अचल या धीरे धीरे बढ़ने वाली आमदनी और तेज़ी से बढ़ने वाले खर्चे में संतुलन आ जाता है। पहले का तात्पर्य है, हर साल की पेन्शन प्रदान करने के वर्ष में वसूल करना। दूसरा तरीका, जिसके विविध प्रकार हैं, पूंजी संचय पर भरोसा रखता है, जिसका ब्याज, चन्दों की भविष्य की अपर्याप्तता को पूरा करेगा।

पहले तरीके में हर साल की आमदनी को उस साल प्रदान की हुई पेन्शनों के पूंजीकृत-मूल्य के बराबर ला दिया जाता है। जैसे कि यदि किसी पेन्शन का पूंजीकृत मूल्य उसके वार्षिक मूल्य का १० गुना है तो किसी वर्ष के चन्दे की दर, उस साल प्रदान की जाने वाली पेन्शनों के वार्षिक दर के जोड़ का उतने ही गुना होगी। पेन्शनों की संख्या वृद्धि के अतिरिक्त, चन्दे की दर बढ़ाने का एक मात्र कारण प्रदान की हुई पेन्शनों की औसत दर बढ़ जाना है। यदि औसत पेन्शन दर ५० वर्षों में दोगुनी हो जाती है तो चन्दे की दर भी दो गुनी हो जायगी। इतने धीरे धीरे बढ़ने वाला भार, असह्य नहीं लगना चाहिए, चूंकि, हो सकता है कि जनता की प्रति व्यक्ति आमदनी इसके साथ कदम रखने से भी आगे निकल जाय।

चूंकि इस तरीके के सबसे सरल स्वरूप में चन्दे की दर की वार्षिक वृद्धि गृहीत है, इसका उपयोग पेन्शन बीमे की किसी भी सामान्य योजना में संभवतः कभी नहीं किया गया; परन्तु यदि हिसाब मिलाने की अवधि एक वर्ष से पांच या दस वर्ष तक बढ़ा दी जाय तो किन्हीं परिस्थितियों में यह स्वीकार करने योग्य हो सकती है। दूसरी ओर, औद्योगिक चोट बीमे में पेन्शनों का दायित्व संभालने का यह आम तंत्र बना रहा है और आज भी है। यहां पेन्शन की दर पर, किसी व्यक्ति ने योजना में कितने अरसे भाग लिया है, इसका कोई प्रभाव नहीं होता। यदि दुर्घटनाओं की संख्या और मज़दूरी का सामान्य स्तर वर्षानुवर्ष स्थिर रहे तो चंदे की दर भी अचल रहेगी। अधिकांश देशों में औद्योगिक चोट हितलाभों का मूल्य मालिकों में, उनके व्यवसायों के तुलनात्मक खतरे के अनुसार बांट दिया जाता है। उद्योगों का उत्कर्ष और पतन होता रहता है: उन्हें उनका दायित्व संभालने का, इसके सिवा और कोई तरीका

नहीं है कि उनसे, उनके कर्मचारियों को दी जाने वाली पेन्शनों का पंजीकृत मूल्य एकदम वसूल कर लिया जाय ।

जहां तक पेन्शन बीमे का (वृद्धापकालीन, उत्तरजीवियों के, तथा असमर्थता बीमे का) सम्बन्ध है, दूसरा तरीका, याने वह तरीका जिसमें पूंजी का संचय किया जाता है--उसे खर्च करने के लिए नहीं, वरन् उसके ब्याज के लिए—विस्तृत रूप में पसंद किया गया है । वह इस सत्य का उपयोग करता है कि किसी भी अनिवार्य बीमा योजना में सेवानिवृत्तों की सालाना फसल की जगह लेने के लिए हर साल नये तरुण सदस्यों की भरती होते रहना निश्चित है। चूंकि योजना कभी बंद न की जायगी, उसमें जीवन बीमा कंपनी के समान, व्यक्तिगत रूप में बीमान्वित लोगों का जो हितलाभाधिकार प्राप्त करने की राह पर हैं, पूंजीकृत मूल्य संचय करने की आवश्यकता नहीं रहती। इसलिए व्यवहार में योजना को सिर्फ इतनी ही व्यवस्था करनी है कि चन्दों की आय और उस पर ब्याज चालू खर्चे के लिए हर समय पर्याप्त बना रहे और यह शुरू से ही चन्दे की स्थिर दर रखने से सुसंगत है । पहले तो उस सालाना खर्च का हिसाब लगाया जाता है जो उस समय होगा, जब सारे पेन्शन पाने वाले अधिकतम दर से पेन्शन पायेंगे; उदाहरणार्थ ७० साल बाद । फिर चन्दे की दर ऐसे स्तर पर रखी जाती है कि पेन्शनें और प्रशासन का चालू खर्च निकलने के बाद कुछ अधिशेष बाकी रहे, जो शुरूआत में अधिक होगा और घटते घटते अंत में शून्य पर आ जायगा, और जिसमें से आवश्यक पूंजी का निर्माण होगा ।

इस तरीके का एक लाभ यह है कि यह, शुरूआत की बीमान्वित जनसंख्या में के वृद्ध लोगों को बहुधा प्रदान किये जाने वाले उन विशेषाधिकारों के वित्तपोषण की, जिनके अन्तर्गत उन्हें अल्प पात्रता-अवधि के बाद ऐसी न्यूनतम पेन्शन दिलाई जाती है जिसके समतोल उनके चन्दे नहीं होते, समस्या की एक स्वीकृति-योग्य हल पेश करता है । यह तो न्यायोचित न होगा कि इन विशेषाधिकारों का मूल्य सिर्फ शुरूआत की बीमान्वित जनसंख्या में के तरुण लोगों से ही लिया जाय । इस तरीके से इस मूल्य का वितरण उस सारी जनता में और उसके उत्तराधिकारियों की अनगिनत श्रेणियों में भी हो जाता है । कुछ योजनाओं में, इन विशेषाधिकारों के प्रदान करने के कारण उत्पन्न होने वाली देयता की जिम्मेदारी, पेन्शन फंड को उस पूंजी का ब्याज देकर, जो यदि बूढ़े सभासद अपनी जवानी में योजना में शामिल हुए होते तो उनके प्रति जमा होती, राज्य सरकार, अपने चन्दे के प्रतिरूप, अपने ऊपर ले लेती है ।

यद्यपि इस तरीके में तुलनात्मक दृष्टि से कम पूंजी लगती है तो भी उसकी रकम बहुत ही बड़ी होती है, जैसे कि मूल जर्मन योजना में इरादा यह था कि अन्त में पूंजी वार्षिक खर्च की सात गुनी हो जाय । यदि इस आंकड़े तक कभी पहुंचा जा सके, तो इतनी बड़ी रकम के विनियोग में, उन देशों में अनपेक्षित कठिनाइयां आ सकती हैं, जहां उत्पादक उद्योग निजी उपक्रम का क्षेत्र है और सामाजिक बीमा संस्थाओं को उसमें भाग लेने की मनाई है । जीवन बीमा कंपनियों के समान ही, पेन्शन बीमे की स्वायत्त

संस्थाओं पर, अपने सदस्यों की बचत के प्रन्यासियों की हैसियत से हर समय यह बन्धन रहा है कि वे पूंजी का विनियोग राज्य के प्रत्याभूति दिये हुए बन्धपत्रों में या बन्धकों में करें, याने नियत ब्याज देने वाले प्रत्याभूतों में करें, जिनके नाममात्र मूल्य स्थिर रहने का विश्वास किया जा सकता है ।

अनेक संस्थाओं की पूंजी का काफी बड़ा भाग इस प्रकार जनता के लिये निवासस्थान बनवाने के कार्यक्रम के और अन्य लोकोपयोगी निर्माण कार्य के वित्तपोषणार्थ उपयोग में लाया गया है । इस प्रकार राष्ट्रीय संपत्ति में वास्तविक वृद्धि हुई है, चाहे वह अन्त में उस संस्था को लाभदायक हो या न हो । परन्तु बहुत बार इन विशाल संचित निधियों का दुरुपयोग किया गया है और वे उड़ा दिये गए हैं, चूंकि उनका असामान्य प्रलोभन है । जो राष्ट्रीय राज्य सरकार युद्ध की तैयारी कर रही है वह शस्त्र खरीदने में इनका व्यय कर सकती है : जिसे अनुत्तरदायी वृत्ति से लोकतंत्र का सामंजस्य करना है वह कर बढ़ाने की अपेक्षा इन का आश्रय ले सकती है या अधिक हितलाभ के रूप में इन्हें खत्म कर सकती है ।

विकसित देशों में पेन्शन बीमे का विस्तार आर्थिक क्षेत्र में उद्योगी जनसंख्या के अधिकांश तक होने के कारण पूंजी संचय की नीति एक नये रूप में दिखाई पड़ने लगती है । जब योजना साधारण आकार की थी तब वह अपनी भविष्य कालीन शोधक्षमता में मजबूती लाने के लिए सारे राष्ट्र के पास धन जमा करने का तर्कयुक्त आयोजन कर सकती थी । परन्तु जब उसका क्षेत्र राष्ट्र के पालनकर्ताओं से प्रायः समव्यापी हो गया तब यह दिखने लगा कि चन्दे देने वाले खुद को ही कर्ज़ दे रहे हैं और इस कर्ज़ पर ब्याज देने के लिए उनसे कर भी वसूल किया जा रहा है । और फिर, जहां तक कर्ज़ का उपयोग राष्ट्र की उत्पादकता बढ़ाने की ओर होना आश्वासित नहीं था, वहां तक, यदि यह पैसा उसे पैदा करने वालों के पास ही रहता तो संभवतः अधिक सदुपयोग में लगाया जाता ।

ऐसा जान पड़ता है, कि यही विचार थे, जिन्होंने सन् १६२५ जितने पहले ही इंग्लिस्तान को पेन्शन बीमे की ऐसी सामान्य योजना शुरू करने का निश्चय करने को प्रेरित किया जो किसी स्थायी पूंजी के संचय बगैर चलती है । चन्दों को अल्प स्तर पर कायम रखा गया था और आय की सालाना बढ़ती हुई कमी को, कराधान से पूरा किया जाता था । ऐसी ही नीतियां उन देशों के भी गले पड़ गई, जिनकी सामान्य योजनाओं की पूंजी, दूसरे महायुद्ध की सहचारिणी और उत्तरगामिनी मुद्रास्फीति के कारण, आंखों देखते, मूल्यहीन हो गई; (जर्मन योजना ने इसी वज्राघात का अनुभव पहले महायुद्ध के बाद भी किया था, परन्तु तब इससे नसीहत न ली) । इस परिस्थिति में सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का वित्तषोषण लोक अर्थ (Public finance) का एक अंग हुआ चाहता है ।

फिर भी, हमें इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचना चाहिये कि पूंजी संचय की रीति त्याग दी गई है या त्याग देनी चाहिये । विशेषतः जहां पेन्शनें मर्यादित क्षेत्र की बीमा योज-

नाओं के अन्तर्गत या ऐच्छिक प्रकार की योजनाओं के अन्तर्गत देनी हैं और जहां राज्य-अनुदान मांगते ही नहीं मिलते, वहां चन्दों में नियमबद्धता लाने के लिए इस रीति का आधार लेना उचित ही होगा। ये परिस्थितियां अधिकतर कम उन्नत देशों में पाई जाती हैं। यहां पूंजी संचय ही चुना जायगा यह स्पष्ट है—महज़ तांत्रिक कारणों से नहीं, वरन् राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को बहुत लाभदायक होने की दृष्टि से भी। इस प्रकार मुख्य समस्या जीवनांकिक के हाथ से निकल कर अर्थशास्त्रज्ञ के हाथ में जा पहुंचती है, क्योंकि इसमें विनियोग के ऐसे मार्गों को ढूंढने का समावेश है जिनमें चालू मूल्य स्तर से संलग्न लाभांश मिल सके। यह बहुत कठिन नहीं सिद्ध होना चाहिए, क्योंकि इन देशों में ऐसे नाना प्रकार के लोकोपयोगी उद्योगों के लिये विस्तृत संभावनाएं हैं जो अपने मूल्य में कमीवेशी करके स्फीति की क्षतिपूर्ति कर सकते हैं।

उपसंहार में यह कहा जा सकता है कि अब यह आमतौर पर माना जाने लगा है कि सामाजिक सुरक्षा का मूल्य देने का किसी देश का सामर्थ्य उसके सहवासियों की उत्पादिता पर अवलंबित होता है। यदि हितलाभ, उत्पादन से बढ़ने लगें तो आज नहीं तो कल, उनके कम किये जाने की संभावना है। दूसरी ओर, यदि ये दोनों एक साथ कदम बढ़ाते जायं, तो ऐसी कोई आर्थिक समस्या नहीं है जिसका हल न हो।

ख. जनसंख्या के खण्डों में मूल्य का वितरण

सामाजिक सुरक्षा योजनाओं में यह अश्वमेव गृहीत है कि आर्थिक क्षेत्र में उद्योगी जनता की या उसके धनी वर्ग की आमदनी का हस्तांतरण उन व्यक्तियों की ओर हो जो उन संभावित घटनाओं से पीड़ित हैं जिनसे सुरक्षा की जाती है। यह भी आवश्यक है कि यह हस्तान्तरण कर या तत्सम प्रकार के ज़रिये याने चन्दे लगाकर किया जाय। हितलाभों की अनुसूची और उनका प्राक्कलित मूल्य निश्चित होने पर यह तय करना होता है कि इनका प्रभार जनसंख्या के किन खण्डों पर डाला जाय और हर एक पर किस अनुपात में। कराधान का और विशेषतः चन्दों का भार भविष्य में कितना पड़ेगा इसका पूर्वानुमान लगाने में इतना अंदाज़िया काम होता है कि शुरू में तो, ऐसा प्रतीत होता है कि यह सब बनावटी है। चन्दों की वैध स्थिति का—याने उनका साम्य बीमे की किस्तों से है या कर से इस बात का—सम्भवतः जानबूझ कर, कानूनों में बहुधा खुलासा नहीं किया जाता और इससे विचारयुक्त चर्चा की कठिनाई बढ़ जाती है। तो भी किसी फैसले पर पहुंचना आवश्यक है, और चूंकि वैसे जमा करना हर समय कठिन होता है, न्यायोचित विचारों को बहुधा व्यावहारिक विचारों के सामने झुकना ही पड़ता है, चाहे न्यायोचितता का दिखावा लाभदायक भले ही हो। इस उलझन को सुलझाने का तरीका चुनते समय, राष्ट्रीय अर्थव्यवथा पर उसके संभावित दीर्घकालीन परिणामों की ओर तथा तुरन्त ही होने वाले प्रतिघातों की ओर ध्यान देना चाहिये। सामान्यतः ऐसा तरीका पसंद करना चाहिये जो

जीविका की आदतों और व्यापार में न्यूनतम गड़बड़ उत्पन्न करे परन्तु फिर भी मौजूदा और संभावित हितलाभाधिकारियों को योजना के मूल्य की वास्तविकतापूर्ण याद दिलाता रहे।

हमने पहले पाठ में कहा था कि बिस्मार्क का सामाजिक बीमा कार्यक्रम, राज्य अनुदान से परिपूरित, बीमान्वित व्यक्ति (यहां कर्मचारी) और मालिक के संयुक्त चन्दे के आविष्कार से चल सका। इस प्रधानतः व्यावहारिक व्यवस्था को अभूतपूर्व प्रतिष्ठा प्राप्त हुई और अनेक देशों में सामाजिक बीमा पद्धति के वित्तपोषण के तंत्र के रूप में इसे अंगीकृत किया गया। त्रिखंड पद्धति के आधार पर सामाजिक बीमे का वित्तपोषण करने की नीति का अन्तर्राष्ट्रीय श्रम परिषद ने बारंबार अनुमोदन किया है। इन तीनों घटकों में से हरएक का आश्रय लेने का समर्थन करने के लिए कुछ कारण पेश किये जाते हैं, जो अब पारंपरिक हो चुके हैं और अर्थशास्त्रज्ञ इनका चाहे कुछ भी मूल्यांकन करें, सामान्यज्ञान को तो ये अंत में सही और न्यायोचित ही लगते जा रहे हैं।

बीमान्वित व्यक्ति का चन्दा तो स्पष्टतः उस रकम का प्रतीक है जो बचाने की उससे अपेक्षा की जा सकती थी, या जो वह किसी पारस्परिक सहायता समाज या बीमा कंपनी को देता। इसका मनोवैज्ञानिक महत्व काफ़ी है : इसके कारण चन्देदारों की उत्तरदायित्व की भावना और हितलाभ पाने वाले का स्वाभिमान जाग्रत रहते हैं, चूंकि यह हितलाभ के अधिकारी होने का तथा योजना की व्यवस्था में भाग लेने के हक़ का प्रत्यक्ष और सबसे अधिक विश्वासनीय प्रमाण है।

सामाजिक बीमे से मालिक वर्ग को भी फायदे हैं। यह निश्चित है कि विकसित देशों में, और जहां तक श्रमिक वर्ग को अपनी इच्छा प्रकट करने के साधन उपलब्ध हैं वहां तक कम उन्नत देशों में भी, सामाजिक बीमा, औद्योगिक शांति और सामाजिक व्यवस्था में स्थिरता लाने में सहायता करता है और उसका डाक्टरी हितलाभ कर्मचारी की उत्पादन शक्ति का संरक्षण करता है; इसके बिना औद्योगिक क्षेत्र इतना समृद्ध न होंगा। यह सत्य, कि राजकीय कार्रवाई की गैरहाज़िरी में, वे सुसंस्कृत मालिक, जिनमें इतना सामर्थ्य है, अपने कर्मचारियों के लिए हर प्रकार के कल्याणकारक उपायों का प्रयोग करते और उनके प्रति अनुदान देते आये हैं, उनका सामाजिक उत्तरदायित्व और उनकी इस बात के बारे में जाग्रति बताता जान पड़ता है कि उनकी उदारता, जैसा कि होना भी चाहिये, उनको भी लाभदायक होगी।

नागरिक को जनता के सामान्य कल्याण में दिलचस्पी है। चाहे वह वैयक्तिक स्वतंत्रता का पुजारी भले ही हो, वह यह जरूर मानता है कि उसके स्वास्थ्य और सुरक्षा के लिए, पुलिस उपाय के रूप में, दारिद्रय निवारण आवश्यक है। यदि उसमें कुछ सामाजिक भावना है तो उसे सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों का नैतिक महत्व समझ में आ जायगा और वह अपने योग्यतानुसार, इसको, जो कि यथार्थ में राष्ट्रीय परिमाण पर चलने वाला पारस्परिक हितलाभ समान है, अनुदान देने को तैयार रहेगा।

यह ध्यान में रखते हुए कि कर्मचारी का पारिश्रमिक उसकी आवश्यकताएं पूर्ण

करने के लिए, कमाई के समय ही नहीं, वरन् जब वह कमा नहीं सकता तब भी पर्याप्त होना चाहिये, और सामाजिक बीमा ही वह तंत्र है जिससे इन दो वैकल्पिक सूरतों में उसकी कमाई का वितरण होता है, कर्मचारी और मालिक के चन्दों को, वैकल्पिक और पूरक स्रोतों के दृष्टिकोण से देखना उद्‌बोधक होगा।

कर्मचारी जो कुछ उत्पादन करता है उसका न्यायोचित भाग यदि उसे वाकई में मज़दूरी के रूप में मिल रहा है तो उसे उसका पूरा पारिश्रमिक पहले ही मिल रहा है और परिणामतः मालिक के पल्ले ऐसा कोई अधिशेष नहीं बचता जिसमें से चन्दा दिया जाय। इससे तो ऐसा दिखता है कि अपनी सुरक्षा की पूरी कीमत कर्मचारी ने ही देनी चाहिये जैसा कि वह पारस्परिक हितलाभ समाज का सदस्य बनने पर या बीमा-पत्र लेने पर करता है। जवानी और तंन्दुरुस्ती की अवस्था में प्रारम्भ करके, वह अपनी कमाई में से इतने बीमे की किस्त चुका सकता है कि बीमारी और वृद्धापकाल में और मृत्यु होने पर उसकी मज़दूरी के मुकाबले काफी हितलाभ मिल सके। परन्तु सामाजिक बीमा अनिवार्य होता है जिसके अन्तर्गत अच्छे और बुरे खतरे, और विशेषतः बूढ़े और जवान, सभी का समावेश होता है। तो क्या उन लोगों को जिनका जीवन संकटग्रस्त नहीं है, संकटग्रस्तों के लिये आवश्यक अतिरिक्त प्रीमियम (किस्तें) भी देना होगा? निश्चय ही, सामाजिक सुदृढ़ता के तत्व पर इस प्रभार का वितरण, करदान-क्षमतानुसार, जितने विस्तृत क्षेत्र में हो सके उतने में किया जाना चाहिये। सामान्यतः मालिक वर्ग, अपने कर्मचारियों की अपेक्षा, समृद्ध होता है और अतिरिक्त प्रीमियम चुकाने के लिये— कम से कम शुरूआत में तो सक्षम माना ही जा सकता है।

परन्तु हमारी यह धारणा, कि कर्मचारी को उसका न्यायोचित और सम्पूर्ण पारिश्रमिक मिल रहा है, एक भावात्मक कल्पना मात्र है जो चर्चा के लिये की गई थी। पारिश्रमिक क्या होना चाहिये यह प्रश्न अपने अपने मत का है न कि वस्तुस्थिति का परन्तु यह निश्चित है, कि स्फीति या अन्य कारणों से, कुछ समय तक व्यापारी अत्यधिक लाभ उठा सकते हैं। यदि ऐसे मौके पर कोई सामाजिक बीमा योजना फौरन शुरू कर दी जाय तो उसका सारा प्रभार मालिकों पर डाल देना संभव है।

चंदा लगाने में, चाहे वह कर्मचारियों पर हो या मालिकों पर, सारी कठिनाई पहला कदम उठाते समय ही पड़ती है। क्यों कि यह तो पुरानी कहावत है कि पुराने कर को कर नहीं माना जाता। एक बार चन्दा शुरू भर करा दिया जाय, फिर तो चन्देदार अपने आपको उसके अनुरूप बनाने के तरीके ढूंढ़ ही लेगें। उस अर्थव्यवस्था के अतिरिक्त, जो सर्वथा सरकार के नियंत्रण में हो, चन्दे के वास्तविक आपात का पूर्वानुमान करना या उस पर नजर रखे रहना, सदा बदलती हुई मज़दूरी, मुनाफे और मूल्यस्तर के दलदल में प्रायः असम्भव है। इस क्रिया का चक्कर अनिश्चित काल तक बढ़ता ही जाता है और कभी कभी उलटा भी चलने लगता है। इस प्रकार चन्दा देने का उत्तरदायित्व तो उन्हीं पर रहता है जिन पर कानून ने रखा था, परन्तु मज़दूरी के सामूहिक सौदे के परिणामस्वरूप इसका प्रभार कभी मज़दूरों पर और कभी मालिकों पर पड़ता

रहता है। मज़दूरों को तो अपने ऊपर का प्रभार खिसकाने का दूसरा तरीका ही नहीं है। दूसरी ओर मालिक अपने चन्दे को उत्पादन की लागत में शामिल कर लेंगे और, इस प्रकार, जहां तक ग्राहक सहन करें, उसे माल के मूल्य में भी मिला देंगे। जितना माल बिकेगा, उसका इस प्रकार बढ़ा हुआ मूल्य उपभोक्ता देंगे जिनमें योजना में भाग लेने वालों के साथ साथ बाकी जनता भी होगी जिस पर इस प्रकार, बीमान्वित वर्ग की ओर से कर देने का बोझ पड़ जायगा। फिर भी, ऐसे किसी उद्योग को, जिसे विदेशी प्रतिस्पर्धा का खतरा है, अल्पकालिक बारी के लिए भी (और गतिशील अर्थव्यवस्था में ये बारियां अल्पकालिक ही होंगी) यह कोई उदासीनता की बात नहीं है कि चन्दे का कानूनी उत्तरदायित्व किसके कंधे पर रखा जाता है। निम्नलिखित उदाहरण में, जो अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर द्वारा सन् १९५५ में प्रादेशिक सम्मेलन को पेश की हुई एक रिपोर्ट से लिया गया है, इसका बड़ी सफाई से प्रदर्शन किया गया है।

एक ही सामाजिक सुरक्षा पद्धति के तीन प्रकार के वित्तपोषण के हम तीन उदाहरण लें:

उद्योग "अ" में सकल मज़दूरी १०० एकक है और सामाजिक सुरक्षा का चन्दा २० एकक है (जो मालिक और मज़दूर दोनों में बराबर बंटता है);

उद्योग "ब" में सकल मज़दूरी ११० एकक है और चन्दा २० एकक (जो मज़दूर अकेला देता है);

उद्योग "स" में सकल मजदूरी ९० एकक है और चन्दा २० एकक है (जो मालिक अकेला देता है)।

इन तीनों उद्योगों की कुछ आर्थिक सूरतें एकसी हैं: शुद्ध मज़दूरी और उसके प्रति आने वाला खर्च तीनोंमें सरीखे हैं। परन्तु यदि किसी कारणवश सामाजिक सुरक्षा का चन्दा २० से बढ़ाकर ३० एकक कर दिया जाय तो परिस्थिति बिलकुल बदल जायगी। उद्योग "अ" में शुद्ध मज़दूरी ५ एकक घट जायगी और उसके प्रति आने वाला खर्च ५ एकक बढ़ जायगा; उद्योग "ब" शुद्ध मज़दूरी १० एकक घट जायगी पर मजदूरी पर होने वाले खर्च में कोई फर्क न पड़ेगा; उद्योग "स" में शुद्ध मज़दूरी में कोई फर्क न पड़ेगा परन्तु मज़दूरी पर होने वाला खर्च १० एकक बढ़ जायगा। इस प्रकार मज़दूरी की दर और मज़दूरी के मूल्य का सारा ढांचा बिगड़ जायगा और विशेषतः इन तीनों उद्योगों की तुलनात्मक प्रतिस्पर्धा शक्ति में काफी फर्क पड़ सकता है।

किसी भी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा योजना को अनुदान देने का उत्तरदायित्व राज्य के अपने ऊपर ले लेने के परिणाम का पता लगाना, कभी कभी चन्दों के आपात का पता लगाने से भी कठिन है। जब अनुदान साधारण कर आगम में से दिया जाता है तब यही परिस्थिति उत्पन्न होती है। परन्तु जब यह प्रभार किसी विशिष्ट आयकर की आमाद पर या शराब या तंबाकू जैसी किसी वस्तु पर लगाये हुए कर पर होता है तब ऐसा नहीं होता।

हमारी चर्चा के इस भाग पर से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि राजस्व के हर एक स्रोत में सुविधायें तथा असुविधायें हैं और आमतौर पर इस प्रकार का आपात निश्चित नहीं किया जा सकता। इसलिए बुद्धिमानी यही बताती है कि यदि सारी सामाजिक सुरक्षा पद्धति में हर स्रोत का संयम से उपयोग किया जाय तो, निर्णय लेने में गलतियां और झटके सबसे कम लगेंगे।

सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन में निम्नलिखित साधारण सिद्धांत दिये हैं :

> इस कनवेन्शन के पालनार्थ दिये हुए हितलाभों का मूल्य और उनके प्रशासन का मूल्य सामुदायिक रीति से ऐसे तरीके से सहन किया जायगा जिसमें कम साधनों वाले लोगों को कष्ट न हो और सदस्य राज्य की तथा सुरक्षित व्यक्तियों की परिस्थिति का ख्याल बना रहे, फिर चाहे यह बीमे के चन्दे के रूप में या कराधान से या दोनों तरह से सहन किया जाय।
>
> कर्मचारी वर्ग से लिए जाने वाले चन्दे की अधिकतम मात्रा भी कनवेन्शन में विहित की गई है :
>
> पत्नियां तथा बच्चों सहित कर्मचारियों के सुरक्षणार्थ आर्थिक स्रोतों का जो कुल भाग अलग रखा गया है उसके ५० प्रतिशत से अधिक, सुरक्षित कर्मचारियों को, बीमे के चन्दे के रूप में, सहन नहीं करना पड़ेगा। इस शर्त का पालन किया गया है या नहीं यह देखने के लिये, कुटुम्ब हितलाभों को और यदि औद्योगिक हितलाभ स्वतंत्र शाखा द्वारा दिये जा रहे हैं तो उनको भी छोड़ कर, सदस्य राष्ट्र द्वारा दिये जाने वाले सारे हितलाभों का विचार एक साथ किया जा सकता है।

मालिकों के चन्दे या राज्य अनुदान की सीमा निश्चित करने की कोई आवश्यकता न थी क्यों कि कनवेन्शन में विहित न्यूनतम हितलाभों का मूल्य एक मामूली आंकड़े से अधिक नहीं हो सकता और बीमान्वित व्यक्ति के चन्दे की मर्यादा निश्चित हो जाने पर जो शेष रहता है वह उनके मालिकों को या राज्य को पूरा करना ही पड़ेगा।

बीमान्वित व्यक्तियों ने सामूहिक तौर पर बीमारी, बेकारी और पेन्शन बीमे के कुल मूल्य के ५० प्रतिशत से अधिक बीमे के चन्दे के रूप में न देना चाहिये, इस नियम का पालन, सम्भवतः, उन सारे देशों में हो रहा है जहां ये तीन शाखाएं चालू हैं। कुछ अपवाद छोड़ कर, संभवतः इसका पालन इन में से हर एक शाखा में भी स्वतंत्र रूप से हो रहा है, चूंकि कम से कम आधा, और बहुधा आधे से अधिक, मूल्य मालिक या मालिक और राज्य मिलकर देते हैं।

कुटुंब भत्ते या तो कराधान पोषित सार्वभौमिक योजना के अन्तर्गत या बीमा योजना के अन्तर्गत, जिसमें प्रायः हर जगह मालिक ही चन्दा देते हैं, दिये जाते हैं। अधिकांश देशों में, औद्योगिक चोट हितलाभों का मूल्य मालिक अकेले ही सहन करते हैं। औद्योगिक चोट नक़दी हितलाभों के वित्तपोषण में त्रिभागाकार रीति से भाग लेने में इंग्लिस्तान

अनन्य है; परन्तु अनेक देशों में अस्थायी अपंगता और डाक्टरी हितलाभों का प्रभार बीमारी बीमे पर डाल दिया जाता है।

कम से कम जहां तक राष्ट्र की मिल्कियत के उद्योगों का सम्बन्ध है, रूस और लोकतंत्र राष्ट्रों में कर्मचारी कुछ भी चन्दा नहीं देता और सामाजिक सुरक्षा पद्धति का सारा खर्च मालिक और राज्य सहन करते हैं।

चन्दों का कानूनी दर्जा और विशेषतः बीमान्वित व्यक्ति और कर्मचारी के लिए उसकी उपलक्षणा एक दुर्बोध विषय है परन्तु महत्वहीन नहीं है। इस सम्बन्ध में दो मुख्य सिद्धांत हैं।

पुराना सिद्धांत यह है कि संयुक्त चन्दा, बीमान्वित व्यक्ति की ओर से दिए हुए प्रीमियम का प्रतिरूप है और स्वभाव तथा परिणाम की दृष्टि से बीमा कंपनी को दिए जाने वाले प्रीमियम के समान है। भेद सिर्फ यही है कि यहां बीमा अनिवार्य है और बीमापत्र की शर्तें कानून ने विहित कर रखी हैं। इस मत ने पुरानी योजनाओं का, जिनमें हितलाभ एकरूपता से चन्दों के अनुपात में था, मसौदा बनाने की प्रेरणा दी थी। उदाहरणार्थ सन् १९११ की ब्रिटिश बीमारी और असमर्थता बीमा योजना के अन्तर्गत एक रूप संयुक्त चन्दा ऐसा आंका गया था कि उससे १६ वर्ष की आयु में बीमान्वित होने वाले कर्मचारी के एकरूप हितलाभ का वित्तपोषण हो सके। प्रारम्भ में बीमान्वित होने वाली जनता के इससे अधिक आयु वाले लोगों के प्रति जो अतिरिक्त उत्तरदायित्व था उसकी जिम्मेदारी सरकार पर थी। यदि मालिक संयुक्त चन्दा नहीं देता था तो बीमा निधि कोई हितलाभ देने को बाध्य न थी, परन्तु दावेदार इसके लिए मालिक पर मुकदमा चला सकता था। इस सिद्धांत के अन्तर्गत कम मज़दूरी वाले मज़दूरों या पालन कर्त्ताओं के प्रति, सिद्धांततः किसी प्रकार की रियायत न की जाती थी।

बाद के सिद्धांत के अनुसार चन्दा एक विशिष्ट प्रयोजन से लिया हुआ कर है। हितलाभ का अधिकार किसी पारस्परिक करार पर आधृत नहीं है, वरन् चालू घड़ी पर कानून में जो शर्तें दी हुई हैं सिर्फ़ उनकी पूर्ति पर ही आधृत है। चन्दा देने का उत्तरदायित्व तो है और हितलाभ का अधिकार भी, पर इन दोनों में कोई आवश्यक सम्बन्ध नहीं है। जहां कानून में पात्रता-अवधि की परिभाषा, दिये हुए चन्दों के रूप में न होकर, बीमायोग्य नौकरी की कालमात्रा के रूप में दी है, वहां यही परिस्थिति है। परन्तु परिभाषा का यह भेद अस्वाभाविक है क्योंकि यह तय करने के लिए कि कौन कितनी कालमात्रा से बीमान्वित है, बीमा संस्था व्यवहार में उसके चन्दों का खाता ही देखती है। इस सिद्धांत को ऐसे अग्रगण्य सामाजिक सुरक्षा कानूनों ने साकार किया है जैसे कि फ्रांस, रूस और अमेरिका के कानून।

सुरक्षित व्यक्तियों की सामाजिक सुरक्षा पर इन दोनों सिद्धांतों में से प्रत्येक का दो विरुद्ध दिशाओं में परिणाम होता है। पहले का आश्रय, हासिल किए हुए हितलाभाधिकारों को कम करने के प्रयत्नों का प्रतिकार करने के लिए, संसद में और संविधान वेत्ताओं द्वारा लिया जाना संभव है, परन्तु साथ ही वह बीमान्वित जनता के गरज़मंद

वर्ग के लाभार्थ संयुक्त चन्दे के पुनर्वितरण के रास्ते में रुकावट बन सकता है। सरकार द्वारा संचित चन्दों का विनियोग मूल प्रयोजन के अतिरिक्त अन्य तरह से काम करने का विरोध करने के लिए इसका उपयोग हो सकता है। दूसरा सिद्धांत बीमान्वित व्यक्ति की राज्य पर परावलंबिता पर जोर देता है : व्यक्तिगत अधिकार कमजोर हो जाते हैं परन्तु बीमान्वित जनता की सुरक्षा और मज़बूत हो सकती है। राज्य हितानुसार, एक या दूसरे समूह के प्रति उदारता दिखाने के लिए हितलाभ की अनुसूची में फेरफार करने में सरकार को संकोच होने का कोई कारण नहीं बचता। सारा उत्तरदायित्व राज्य का ही होने के कारण सिर्फ चन्दों की आय की कमी हितलाभ कम करने के लिए पर्याप्त कारण नहीं हो सकती। इन दोनों सिद्धांतों के वास्तविक फायदों के बारे में हरएक का अपना मत हो सकता है। संभवतः सबसे अच्छा समझौता तो यह है कि कर्मचारी के चन्दे को प्रीमियम का प्रतिरूप माना जाय और मालिक के चन्दे को कर के समान समझा जाय।

तो भी इनमें से किसी भी सिद्धांत पर आधारित हितलाभ अनुसूचियां बीमान्वित जनता में के कुछ समूहों को ऐसी पूरक सुविधाएं देंगी जो इन समूहों के प्रति दिए हुए चन्दों से सुसंगत न होंगी, चन्दे चाहे कर्मचारी और मालिक ने मिलकर दिये हों या मालिक ने अकेले।

औद्योगिक चोट बीमा और कुछ थोड़े से अन्य मामलों के अतिरिक्त एक संस्था में बीमान्वित सारे व्यक्तियों के प्रति चन्दा एक ही मापदंड के अनुसार आंका जाता है। जहां, जैसाकि अधिकांश योजनाओं में है, हितलाभ, कम से कम, अंशतः तो भी, व्यक्तिगत मूल मज़दूरी के अनुपात में है, वहां चन्दे भी उसी मज़दूरी के अनुपात में होते हैं : और जहां हितलाभ जीविका स्तर पर होते हैं, वहाँ चन्दे एक नियत रकम के रूप में होते हैं, जो नियत कालन्तर से देने होते हैं। परन्तु हितलाभ अनुसूची चन्दे के मापदण्ड का अनुसरण नहीं करती, वरन् योजना के निश्चित सामाजिक ध्येयों की पूर्ति के हेतु से उसमें, बहुधा काफ़ी परिमाण में, संपरिवर्तन किये जाते हैं। इस प्रकार कुटुम्ब और उत्तरजीवियों के हितलाभों की महत्वपूर्ण श्रेणी का मूल्य बीमान्वित व्यक्तियों में प्रति व्यक्ति बांटा जाता है चाहे उनकी लिंगिक, वैवाहिक या पैत्रिक स्थिति कुछ भी हो। वैसे ही चन्दा मज़दूरी का एकसा अनुपात होते हुये भी, बीमारी बीमा योजना में सबको एक सा ही डाक्टरी हितलाभ मिलता है। कभी कभी कम मज़दूरी वालों को, अधिक मज़दूरी वालों की अपेक्षा, मूल मज़दूरी के बड़े अनुपात में नकदी हितलाभ दिया जाता है।

जहां संयुक्त चन्दे को मुख्यतः प्रीमियम के प्रतिरूप माना जाता है, वहां भी समान चन्दों के बदले दिये जाने वाले इन असमान हितलाभों की समझदारी और न्यायोचितता दिख पड़ेगी। क्योंकि सामाजिक सुरक्षा को उसके असली रूप में ही देखना चाहिये। वह एक आजीवन बीमा-पत्र के सदृश है जो औसत जीवन की एक के बाद एक आने वाली स्थितियों—कुंवारापन, विवाह, मातृत्व या पितृत्व इत्यादि—का और मज़दूरी के

उतार चढ़ाव का अनुसरण करता है तथा इस संभावना को भी योग्य महत्व देता है कि किसी बीमान्वित लड़की का विवाह बीमान्वित पुरुष से ही होगा। परन्तु इस दृष्टिकोण का महत्व अब तात्विक ही रह गया है। कौटुंबिक हितलाभों का प्रदीर्घ विस्तार और स्फीति के कारण डूबी हुई ब्याज की आय की पूर्ति मुख्यतः मालिकों का चन्दा या राज्य अनुदान बढ़ा कर किये गये हैं।

जहां दूसरे महायुद्ध के पूर्व कर्मचारियों के और मालिकों के चन्दों का सम्बन्ध बराबरी का था, वहां अब यह असाधारण नहीं है कि मालिक कर्मचारियों से दोगुना चन्दा दें। विशेषतः उन देशों में जहां सरकार को कर वसूल करने में कठिनाई होती है यही परिस्थिति है। चूंकि, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, अधिकांश योजनाओं में चन्दा आंकने के लिये मूल मज़दूरी की ऊपरी मर्यादा निश्चित होती है, जो करीब करीब निपुण कारीगर की मज़दूरी के बराबर होती है, इससे अधिक मज़दूरी, सामाजिक सुरक्षा प्रयोजनों के लिये, निर्धारण से छूट जाती है।

उन प्रभारों का अधिक न्यायोचित वितरण, जो राष्ट्र-कल्याण हितार्थ विशेष महत्वपूर्ण हैं, आय-कर और विलासोपयोगी वस्तुओं पर लगाये हुए करों की आमदनी में से दिये जाने वाले राज्य-अनुदानों का आश्रय लेकर किया जा सकता है। इसलिये वे राज्य सरकार, जिनका राजस्व विभाग कुशल है और जिन्हें विस्तृत कृषिवर्ग का सामना नहीं करना है, इन दोनों चन्दों को प्रायः बराबरी पर छोड़ कर राज्य अनुदान काफ़ी बढ़ाना संभवतः पसंद करें। उन्होंने इस बात का तो विचार कर ही लिया होगा कि कर्मचारियों के चन्दे को मामूली स्तर पर रखना ही उचित है क्योंकि आखिर यह नौकरियों पर लगाया हुआ कर है और विदेशी बाज़ार की स्पर्धा में रुकावट बन सकता है।

राज्य अनुदान के अनेक रूप होते हैं: जैसे कि हर पेन्शन में जुड़ी हुई एक नियत रकम, चन्दे की आमदनी के अनुपात में दी हुई रकम, एक निश्चित वार्षिक रकम या घाटे को पूरा करने के लिए जितनी रकम की आवश्यकता हो उतनी रकम। राज्य द्वारा प्रत्याभूति लिए हुए कर्जों के ब्याज के अवमूल्यन की क्षतिपूर्ति के लिए ये विशेषतः न्यायोचित माना जाता है। यह अप्रत्यक्ष रूप में भी दिया जा सकता है जैसे कि जब बीमारी बीमा योजनाएं सार्वजनिक अस्पतालों की सेवा का फायदा उठाती हैं और उनके मरीजों की सुश्रूषा के वास्तविक मूल्य से बहुत कम पैसे देती हैं। परन्तु कुछ देशों में राज्य अपने ऊपर कुछ ऐसे हितलाभों का सारा प्रभार ले लेता है जो समाज कल्याण के लिए विशेष आवश्यक माने जाते हैं, जैसे कि कुटुंब भत्ते या राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा।

अब औद्योगिक चोट बीमे के स्रोतों के सम्बन्ध में, जो अपवादात्मक स्वरूप के हैं, कुछ कहना रह गया है। अधिकांश देशों में सारा मूल्य मालिक सहन करता है और उसका उद्योग जिस वर्ग में आता है उसके औसत ख़तरे के अनुसार आंका हुआ प्रीमियम देता है। जैसा कि हम इसके पहले के एक पाठ में देख चुके हैं, इस औसत ख़तरे

में बड़ी भिन्नता होती है, चूंकि यह हर उद्योग में अंतर्भूत क्रियाओं के स्वाभावानुसार निश्चित होता है। चूंकि प्रीमियम का समावेश निर्मित वस्तु की लागत में हो जाता है, उपभोक्ता को उन वस्तुओं का मूल्य अधिक देना पड़ता है, जिनके उत्पादन में कर्मचारियों को अधिक खतरा है और उसकी प्रवृत्ति अधिक सुरक्षित तरीकों से बनाये हुए उनके स्थान पर चल सकने वाली सस्ती वस्तुओं को ढूंढने की रहेगी। अनेक योजनाएं उन मालिकों को चन्दा कम कर देने की सहूलियत देती है जिनके उद्योगों में हितलाभ देने का अनुभव उनके वर्ग के मुकाबले कम पाया गया है या दुर्घटना प्रतिबंधक उपायों की शुरुआत कर देने के कारण घट जाने की सम्भावना है। यद्यपि यह, रियायत बड़ी नहीं हो सकती तो भी, पारितोषिक के समान, यह भी प्राप्त करने योग्य एक ध्येय सामने रखने का और प्रचार को केन्द्रीभूत करने का कार्य करती है। दूसरी ओर, गत कुछ वर्षों में, औद्योगिक चोट बीमे की कुछ ऐसी योजनाएं शुरू की गई हैं जिनमें एक से पैमाने पर त्रिभागयुक्त वित्तपोषण की व्यवस्था है।

अंत में कुछ चुनी हुई सामाजिक सुरक्षा पद्धतियों की आय का उसके उद्गम के अनुसार पृथक्करण सारिणी के रूप में नीचे दिया है। सन् १९५१ के जो आंकड़े इसमें प्रस्तुत किये हैं वे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफतर द्वारा सामाजिक सुरक्षा के मूल्य के सतत अध्ययन के सिलसिले में एकत्रित की हुई सांख्यकी में से लिए गये हैं। उनमें सिर्फ सामाजिक सुरक्षा और कुटुम्ब भत्ता योजनाओं की आय ही नहीं वरन् लोक स्वास्थ्य सेवा, लोक सहायता योजना और लोक सेवकों तथा युद्ध से दुखी लोगों को हितलाभ देने वाली योजनाओं की आय भी सम्मिलित है। यद्यपि यह सामग्री सिर्फ एक दर्जन देशों के बारे में एकत्रित की गई है तो भी, यह दिखाने के लिए कि कितनी भिन्न वित्तीय नीतियों का अनुसरण किया जाता है और संचित पूंजी की आय आज कितनी महत्वहीन है यह सामग्री पर्याप्त है। यह बिल्कुल स्पष्टता से दिखाई देता है कि वित्तीय नीतियां अमूर्त सिद्धांतों की अपेक्षा व्यावहारिक विचारों पर अधिक आधारित होती हैं।

चुने हुए देशों की सामाजिक सुरक्षा पद्धतियों की १९५१ की आय का उसके उद्गमानुसार पृथक्करण : कुल आय का प्रति १०००

देश	चन्दे		कर	पूंजी से तथा अन्य प्रकार की आय	कुल	कुल आय राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में
	बीमान्वित लोग	मालिक				
बेल्जियम	१९१	४०१	३७३	३५	१०००	१२·५

देश	चन्दे		कर	पूंजी से तथा अन्य प्रकार की आय	कुल	कुल आय राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में
	बीमान्वित लोग	मालिक				
चिली*	१७१	५५९	१६४	१०६	१०००	११·३
डेनमार्क	११९	११९	७५६	६	१०००	९·३
फ्रांस	१४८	६५६	१८७	९	१०००	१६·५
जर्मनी (फेडरल रिपब्लिक)	२१६	३७१	३६३	५०	१०००	२०·०
इटली	५६	७०२	२११	३१	१०००	११·३
जापान	२८१	२८६	३६५	६८	१०००	४·२
न्यूज़ीलैण्ड	४३६	४४	५१०	१०	१०००	१२·६
पोलैण्ड	—	६८०	३०४	१६	१०००	...
स्वीडन	९२	११२	७७४	२२	१०००	९·०
इंग्लिस्तान	१६९	१५१	६१३	६७	१०००	११·०
संयुक्तराज्य	२८४	६२१	२३	७२	१०००	६·०

*१९५० के आंकड़े ।

नवें पाठ पर प्रश्न

१. पेन्शन बीमा योजनाओं का खर्च अनेक वर्षों तक सालाना क्यों बढ़ता जाता है ?

२. औद्योगिक चोट के मामलों में प्रदान की जाने वाली पेन्शनों के वित्तपोषण का सामान्य तरीका क्या है ?

३. उन परिस्थितियों का वर्णन कीजिये जिनमें किसी पेन्शन बीमा योजना को बड़ी पूंजी का संचय

करने की
न करने की

आप सिफारिश करेंगे।

४. कर्मचारियों के
मालिकों के

चन्दों के समर्थन में कारण लिखिये और उनके प्रति अपना मत व्यक्त कीजिये।

५. सामाजिक सुरक्षा को राज्य अनुदान किन प्रयोजनों के लिए विशेषत: न्यायोचित है ?

पाठ १०

सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का प्रशासन

कोई भी सामाजिक सुरक्षा योजना वैध अधिकारों और आभारों की एक श्रेणी निर्माण करती है। कानून और आनियमों का मसौदा तयार करना होता है और इनकी संसद और मंत्रीगणों से मंजूरी लेनी होती है। इन्हें प्रभावी करने के लिए प्राशासनिक नित्यक्रम का आविष्कार करना होगा—संभवतः असैनिक सेवकों को। चाहे हितलाभ के अधिकार का प्रश्न हो या चन्दा देने के आभार का, कानून का अनुसरण करता हुआ नित्यक्रम आवश्यक ही है क्योंकि स्वेच्छाचारी पक्षपात की गुंजाइश नहीं रहनी चाहिये। परन्तु नित्यक्रम एक मशीन जैसा होता है और अन्य मशीनों के समान इसे भी चालू रखना पड़ता है, इस पर नज़र रखनी पड़ती है और बुद्धिमत्ता से इसका समायोजन करना पड़ता है। अपूर्व–कल्पित परिस्थितियां उत्पन्न होंगी और सुधार सम्भावनाएं दिख पड़ेंगी। इसलिये योजना को चालू कार्य-व्यवस्था संभालने के लिए और कानूनन उसको दिये हुए क्षमता-क्षेत्र के अन्तर्गत नीति का विचार-विमर्श और निर्धारण करने के लिए किसी प्राशासनिक अंग की या अधिकरणों के पद-सोपान की आवश्यकता है। विधान के अर्थ पर मतभेद होंगे और बयानों की सत्यता पर झगड़े होंगे। इसलिये न्यायांग भी चाहिये।

नित्यचर्यात्मक कार्य

सामाजिक सुरक्षा योजना के बीमा, सहायता या सर्वभौमिक प्रकार के अनुसार, उसमें गृहीत नित्यचर्यात्मक कार्यों का विस्तार कम या अधिक होता है। हितलाभों के हक़ तय करने का और हितलाभ देने का कार्य तो सभी योजनाओं को करना पड़ता है। परन्तु चन्दे जमा करने का और उन्हें दर्ज करने का अतिरिक्त कार्य सिर्फ बीमा योजनाओं के हिस्से में आता है।

(१) बीमा योजनाएं

बीमा योजना के लिये उन सब लोगों को पहचानना आवश्यक है जो स्वयं चन्दा देने के उत्तरदायी हैं याने मालिक और ऐसे अन्य व्यक्ति जो कर्मचारी नहीं हैं। कर्मचारियों के प्रति भी उन्हें यही करना पड़ता है परन्तु सिर्फ औद्योगिक चोट से सुरक्षा

प्रदान करने वाली योजना इसका अपवाद है क्योंकि इसके अन्तर्गत मालिक अपने वेतन चिट्ठे के अनुपात में जागतिक चन्दा देता है और बीमा संस्था का बीमान्वित व्यक्ति से सम्बन्ध तभी आता है जब दुर्घटना हो जाय ।

बीमा संस्था ऐसे उद्योगों के अस्तित्व का पता, जिनके मालिक चन्दा देने के उत्तर-दायी हैं, कराधान करने वाले राष्ट्रीय और स्थानीय प्राधिकारों से या श्रम निरीक्षकों से परामर्श करके और दूसरे विविध प्रकार की पूछ ताछ से लगा सकती है । प्रत्येक मालिक के बारे में उसे पहचानने लायक ब्यौरा, उसके द्वारा अपने व्यवसाय के सम्बन्ध में दी हुई जानकारी से लिया जाता है । औद्योगिक चोट बीमे के लिए वह खतरे के किस वर्ग में बैठता है यह भी तय किया जाता है । कर्मचारियों की पहचान लायक ब्यौरा उनके मालिकों के मार्फत जमा किया जाता है और इसमें नाम और हस्ताक्षर ही नहीं वरन् जन्मतिथि और जन्मस्थान का भी समावेश होता है जिनमें बहुधा अंगुलि निशानात और फोटो भी जोड़ दिए जाते हैं । हर एक चन्देदार को एक विशिष्ट पहचान नम्बर दिया जाता है जिसका उपयोग बीमा संस्था से सारे पत्र व्यवहार में किया जाता है । यथासंभव इसके कुछ अंकों का किसी संहिता के अनुसार कुछ अर्थ होता है ताकि सांख्यिकीय प्रयोजनों के लिये इन नम्बरों का उपयोग हो सके और यदि नम्बर गुम जाय तो आसानी से फिर से बनाया जा सके ।

मालिकों को अपने कर्मचारियों के प्रति दिये हुए चन्दों को दर्ज कर रखना आवश्यक होता है । तो भी प्रत्येक कर्मचारी के चन्दों का स्वतंत्र खाता खोलना हमेशा ही अपरिहार्य नहीं होता । यदि संभावित घटना शुरू होते समय नौकरी के करार का अस्तित्व ही हितलाभ का अधिकार आप से आप प्रस्थापित करने को पर्याप्त हो या पात्रता अवधि हो, पर वह बहुत छोटी हो और यदि दिये हुए चन्दों की संख्या का, हितलाभ की दर पर कोई परिणाम नहीं होता हो तो कर्मचारी मालिक से नौकरी का और वर्तमान मज़दूरी का प्रमाण पत्र लाकर हितलाभ पाने के लिए अपना हक़ सिद्ध कर सकता है । ये शर्तें सारी औद्योगिक चोट योजनाओं में ही नहीं वरन् कुछ बीमारी योजनाओं में भी उपस्थित हैं । दूसरी ओर जहां काफी लम्बी प्रतीक्षा अवधि रखी जाती है जैसा कि बेकारी और पेन्शन योजनाओं में होता है, या जहां कुटुम्ब भत्तों के हक़दार होने के लिये नियमित नौकरी का प्रमाण देना पड़ता है वहां प्रत्येक कर्मचारी के चन्दे का या नौकरी का खाता खोलना आवश्यक है ।

चन्दा जमा करने के दो मुख्य प्रकार हैं : वेतन चिट्ठा पद्धति और टिकट पद्धति दोनों के अपने अपने गुण दोष हैं ।

वेतन चिट्ठा पद्धति में विहित अवधि का कुल संयुक्त चन्दा मालिक देता है और साथ ही साथ उस अवधि का अपना वेतन चिट्ठा विहित फार्म पर पेश करता है जिसमें उस अवधि में कभी कभी नौकरी पर रहने वालों के नाम उनकी वैयक्तिक मज़दूरी और तत्सम चन्दे दिखाये जाते हैं । फिर यदि योजना की प्रतीक्षा अवधि प्रचुर मात्रा में है तो वेतन चिटठे में प्रत्येक बीमान्वित व्यक्ति के नाम जमा किये हुए चन्दे उसी

प्रकार उसके व्यक्तिगत चन्दे खाते में जमा करना आवश्यक है। यह स्थानांतर क्रिया बड़ा समय खाने वाली है क्योंकि व्यक्तिगत खातों को एकत्रित करके वेतन चिट्ठे से मिलाना भी होगा। परन्तु बड़ी संस्थायें संभवतः बिजली से चलने वाले लेखायंत्र रख सकती हैं जो कि यह कार्य शीघ्रता से कर देंगी।

टिकट पद्धति में हर एक बीमान्वित व्यक्ति को एक कार्ड दिया जाता है जिस पर टिकट चिपकाने के स्थान बने रहते हैं, उसे पहचानने लायक उसका ब्यौरा रहता है और जो विहित अवधि के लिए चालू रहता है जैसे कि ६ या १२ महीने। ऐसे व्यक्ति को नौकरी पर रखना गैर-क़ानूनी होता है जिसके लिए कार्ड न लिया गया हो। अपने कर्मचारियों के प्रति विविध मूल्य के जो संयुक्त चन्दे मालिक को देने होते हैं उनके अनुसार वह पोस्ट आफिस से या बीमा संस्था से, समय समय पर, उनके कार्डों के लिये आवश्यक मात्रा में विशिष्ट प्रकार के टिकट खरीद लेता है।

प्रत्येक बार मज़दूरी देते समय, मालिक कार्ड पर एक टिकट लगा देता है और उसे रद्द कर देता है। उन मौकों के अतिरिक्त जब कि बीमान्वित व्यक्ति को हितलाभ प्राप्त करने के लिए कार्ड बीमा संस्था में पेश करना पड़ता है (जैसे कि बीमारी में), कार्ड की चलन मर्यादा में वह मालिक के पास रहता है। चलन मर्यादा के अन्त में मालिक उसे बीमा संस्था को वापिस दे देता है जो उसके बदले दूसरा कार्ड दे देती है। टिकट-युक्त कार्डों की यह श्रेणी ही बीमान्वित व्यक्ति चन्दे के खाते का काम देती है और मालिक के अपना उत्तरदायित्व पूरी करने के प्रमाण का भी।

यदि चन्दा व्यक्तिगत वास्तविक आमदनी के विहित प्रतिशत के रूप में हो या बीमान्वित व्यक्ति, लोक सेवक हों या ऐसे कर्मचारी हों जो लंबे अरसे तक एक ही उद्योग की सेवा करते रहते हैं, तो टिकट पद्धति की अपेक्षा वेतन चिट्ठा पद्धति में अधिक सुविधा होती है। बहुधा बड़े मालिक इसे अधिक पसंद करते हैं। व्यवसाय के प्रयोजन से, और अनेक देशों में, कर्मचारियों का आय-कर देयत्व रिपोर्ट करने के प्रयोजन से भी विस्तृत वेतन चिट्ठा बनाना आखिर आवश्यक रहता ही है और अधिक आसानी इसी में है कि इस चिट्ठे में सामाजिक सुरक्षा चन्दे दिखाने के लिए एक खाना और जोड़ दिया जाय।

टिकट पद्धति, जिसका आविष्कार संभवतः जर्मन लोगों ने पेन्शन बीमे की अपनी सामान्य योजना का आयोजन करते समय १८९९ में किया था आज भी इस सम्बन्ध में उनके यहां काम में लाई जाती है। अंग्रेजों ने सन् १९११ में अपनी बीमारी और बेकारी योजनाओं के लिए, १९२५ में पेन्शन योजना के लिए और १९४६ में राष्ट्रीय बीमे की मौजूदा योजना के लिये इसका अनुसरण किया। वेतन चिट्ठा पद्धति की अपेक्षा यह कम प्रचलित है परन्तु आज, उदाहरणार्थ, केनेडा (बेकारी बीमा), चिली (बीमारी और पेन्शन बीमा) और इटली (पेन्शन बीमा) में पाई जाती है। जहां चन्दे की दरों की संख्या कम हो (जैसे कि आधा दर्जन) वहां यह पद्धति सबसे अधिक कार्यक्षम होती है। मज़दूरी, लिंग या आयु के अनुसार बीमान्वित व्यक्तिओं के वर्गीकरण का, जिन वर्गी-

करणों में अपने कोई महत्वपूर्ण गुण नहीं हैं, मुख्य या एकमात्र कारण, यथार्थ में, इस पद्धति का उपयोग करने का इरादा ही है। जहां बीमान्वित व्यक्ति नौकरी में नहीं हैं या नौकरी में होते हुये वह अक्सर नौकरियां बदलता रहता है या उद्योग छोटा है और उसकी लेखा व्यवस्था आरंभिक प्रकार की है या एक ही उद्योग के कर्मचारी अनेक संस्थाओं में बीमान्वित हैं वहां टिकट पद्धति अधिक उपयुक्त है। परन्तु, विशेषतः विकसित देशों में, उद्योगों की ओर, संमिश्रण तथा एकीकरण के परिणामस्वरूप, बीमा संस्थाओं की, आकार-वृद्धि ने लेखा यंत्र साधनों का गहन उपयोग दोनों के लिये संभव तथा मितव्ययी कर दिया है और परिणामतः टिकट पद्धति की सरलता, उसके समर्थन में उतनी सबल नहीं रही जितनी पहले थी। इसके अतिरिक्त जहां मुद्रास्फीति चिरस्थायी क्रिया हो बैठी है वहां, वैतनिक वर्ग बारम्बार बदलने होंगे और नई टिकट श्रेणी जारी करनी होगी।

एक ही योजना दोनों तरीकों का उपयोग करके लाभ उठा सकती है;--प्रत्येक का उपयोग वहीं किया जाय जहां वह अधिक उपयुक्त है, जैसे कि बड़े उद्योगों के लिये वेतन चिट्ठा पद्धति तथा छोटे उद्योगों के लिए तथा स्वतंत्र कार्यकर्ताओं के लिए टिकट पद्धति।

चन्दा वसूली का सहायक कार्य है उद्योगों का निरीक्षण। इस बात की सत्यता देखने के लिए कि, दिए हुये चन्दे, नौकरों की संख्या तथा उनके वेतन से मिलते हैं, हर एक बीमा संस्था वेतन पुस्तक और अन्य लेखा पुस्तकों की जांच कराने के लिए उद्योगों को अनियमित परन्तु पद्धति-युक्त भेंट देने की व्यवस्था करती है।

यदि किसी बीमान्वित व्यक्ति के प्रति दिये हुये चन्दे उसके खाते में जमा हो चुके हैं तो इस बात का पता करना कि उसने पात्रता-अवधि पूर्ण की है या नहीं और, जब यह सिद्ध हो चुके कि योजना के अन्तर्गत जिसमें सुरक्षा मिलती है ऐसी कोई घटना हो चुकी है तब हितलाभ आंकना सरल कार्य है। घटना होने का प्रमाण, दावेदार के प्रस्तुत किए हुए या योजना के हस्तकों द्वारा प्राप्त किये हुये निम्न प्रकार के अधिकृत प्रमाणपत्रों द्वारा दिया जाता है :

> अधिकृत डाक्टरी परिचय द्वारा दिया हुआ बीमारी या अस्थायी अपङ्गता का प्रमाणपत्र; डाक्टरी अफसर या विशिष्ट डाक्टरी मण्डली (medical boards) द्वारा दिया हुआ असमर्थता का या स्थायी अपङ्गता का प्रमाण पत्र; क्षमताशाली रजिस्ट्रार द्वारा दिया हुआ जन्म, विवाह या मृत्यु का प्रमाण-पत्र; काम दिलाऊ सेवा द्वारा दिया हुआ बेकारी का प्रमाणपत्र।

जहां बीमा संस्था के पास नौकरी की काल मात्रा या हाल की मज़दूरी के बारे में ब्यौरा नहीं है या मिल नहीं रहा है वहां पर इनके बारे में मालिक से प्रमाण पत्र लिया जाता है। बेकारी हितलाभ के सम्बन्ध में मालिक से पूछा जायेगा कि दावेदार ने उसकी नौकरी क्यों छोड़ी और उसे काम करने की अयोग्यता लाने वाली सारी औद्योगिक चोटों की भी रिपोर्ट करनी होगी (या कहीं कहीं उन सारे मामलों की जिनमें

डाक्टरी परिचर्या की आवश्यकता पड़ी हो)।

नक़दी हितलाभ का भुगतान अनेक प्रकार से होता है। आम तौर पर, अस्थायी भत्ते बीमा संस्था द्वारा प्रत्यक्ष हितलाभाधिकारी को दिये जाते हैं। बेकारी बीमे के बारे में तो निश्चय ही यही नियम है, परन्तु अनेक बार, बीमारी हितलाभ हितलाभपात्र के प्रतिनिधि को देना पड़ता है और बहुधा विशेषतः जहां बीमारी काफी कालमात्रा तक चलने की संभावना हो, पोस्टल आर्डर द्वारा दिया जाता है; बीमारी और बेकारी हितलाभ हफ्तेवारी दिये जाते हैं बशर्ते कि नये प्रमाण-पत्र आते रहें। कुटुंब भत्तों के भुगतान की वैकल्पिक रीतियां हैं। इनमें से पहली रीति है, मालिक द्वारा वेतन के साथ बीमान्वित व्यक्ति को भत्ते का भुगतान करना और जहां तक यह रकम उसके चन्दे से बढ़ती हो वहां तक बीमा संस्था से प्रतिपूर्ति प्राप्त करना। कुटुंब भत्ता बीमे की अधिक विकसित योजनाओं में जिस रीति का अनुकरण किया जाता है वह पोस्टल आर्डर द्वारा या घर-घर जाने वाले अभिकर्ताओं (एजेण्टों) के मार्फत माहवारी पैसे देने की है ताकि रकम उस पाने वाले के हाथ में पहुंचे। पेन्शन देने के भी दो तरीके हैं। पोस्टल आर्डर द्वारा या पेन्शनपात्र द्वारा पेन्शन की कुछ किस्तों के लिये हासिल की हुई चेक-बुक डाक-घर में पेश करने पर। आम प्रथा गत माह के लिये माहवारी भुगतान करने की है परन्तु इंग्लिस्तान में चेक-बुक के उपयोग के कारण पेन्शनपात्र अपनी इच्छानुसार हफ्तेवारी से लेकर तीन तीन महीने के मध्यान्तर से अपनी किस्तें प्राप्त कर सकता है।

सारी बीमा संस्थाओं को सांख्यिकी-संग्रह करनी पड़ती है जिसकी आवश्यकता व्यवस्थापक, जीवनांकिक और (यदि बीमारी बीमे का सम्बन्ध हो तो) डाक्टरी सलाहकार को पड़ती है ताकि वे संस्था को शोधक्षम और कार्यकुशल रख सकें और क्षमताशाली प्राधिकारी को अधिनियम या विनियमों के संशोधन की आवश्यकता के बारे में समयोचित सूचना दे सकें। यह सांख्यकी, जो कि नामदर्ज कराने की, चन्दा वसूली की और हितलाभ भुगतान की क्रियाओं के साथ उत्पन्न होती है, बीमा संस्था ही के प्रयोजनों में उपयुक्त नहीं है, वरन्, विभिन्न प्रादेशिक विभागों के औद्योगिक विकास, नौकरी शुदा लोगों की संख्या तथा उनके वेतनानुसार वितरण की ताजी जानकारी का भी अद्वितीय स्रोत है।

(२) सहायता और सार्वभौमिक योजनायें

सहायता और सार्वभौमिक योजनाओं का सम्बन्ध कर्मचारियों या मालिकों से उनके इस रूप में नहीं होता और न ही उनमें चन्दा वसूली का या, हितलाभपात्रों और हितलाभ भुगतान के अतिरिक्त, अन्य किसी बात के बारे में अभिलेख रखने का प्रश्न उठता है। जनता से तभी सम्बन्ध आता है जब कोई हितलाभ मांगता है।

परिभाषा के अनुसार, किसी भी सहायता योजना के अन्तर्गत दावेदार को अपनी सम्पत्ति के बारे में और सारे स्रोतों से अपनी आय के बारे में बयान देना पड़ता है और

उसके बयानों की सत्यता परिस्थिति के अनुसार आवश्यक जाँच करवा कर परखी जाती है। सहायता प्रकार की पेन्शन पाने का अधिकार, उस राज्य-क्षेत्र में विहित वर्ष संख्या तक मौजूदगी पर अवलंबित रहता है जिसके करदाता योजना का वित्तपोषण करते हैं। यहां भी, मौजूदगी के बयान का लिखित प्रमाण द्वारा समर्थन आवश्यक है—जैसे कि देश में प्रवेश की देखभाल करने वाली सेवा के अभिलेख। आमतौर पर सहायता और सार्वभौमिक योजनाओं में राष्ट्रीयता की शर्त भी पूर्ण करनी पड़ती है, परन्तु यह देश में मौजूदगी की शर्त के बदले भी हो सकती है और बीमा योजनाओं के सिलसिले में हम जिनका उल्लेख कर चुके हैं वे अधिकृत प्रमाण-पत्र यहां भी उतने ही उपयुक्त हैं।

प्राशासनिक अंगों के अधिकार और उनका वितरण

किसी भी सामाजिक सुरक्षा पद्धति के प्राशासनिक अंगों को, एक या अनेक शाखा के विहित कार्य कानून द्वारा सौंपे जाते हैं और इन कार्यों का वितरण केन्द्रीय और स्थानीय कार्यालयों में जिस प्रकार होता है वह प्रथमतः, सुरक्षित व्यक्तियों की सुविधा के विचार से और दूसरे, मितव्ययिता से योजना चलाने के विचार से किया जाता है—या किया जाना चाहिये।

योजना की उन शाखाओं की, जिनका हितलाभ पात्रों से बारम्बार सम्बन्ध आता है, उन सभी बस्तियों में एजन्सी होना आवश्यक है जहां रक्षित जनता किसी न्यूनतम घनित्व में बसी हो। ये लोग सरलता और अविलम्बता पसंद करते हैं। समझ में न आने वाले कारणों से, एक दफ्तर से दूसरे दफ्तर भागते फिरने में उनको भ्रांति और चिड़चिड़ाहट होने लगती है। यह बीमारी और बेकारी की सारी योजनाओं के बारे में सत्य है। इसके अतिरिक्त सारी बेकारी योजनाओं को और अधिकांश बीमारी योजनाओं को यह आवश्यक होता है कि वे मालिकों से सन्देशों का लेन-देन अविलम्ब कर सकें। सारी डाक्टरी सेवाओं के लिए स्थानीय और प्रादेशिक संघटन आवश्यक है। इसी प्रकार, कुटुंब योजनाओं को, जिनमें भत्ते पाने का अधिकार नौकरी की नियमितता पर अवलम्बित रहता है, या जो कौटुम्बिक कल्याण सेवाएं प्रदान करती हैं, स्थानीय कार्यालयों की आवश्यकता होती है।

दूसरी ओर पेन्शन योजना की हितलाभ-पात्र से भेंट, उसके जीवन भर में एक बार ही होती है, और उसके बाद उसकी पेन्शन डाक द्वारा दी जाती है। इसलिए पेन्शन बीमे के लिए स्थानीय एजेंसियां खोलना अमितव्ययी होता है और एक केन्द्रीय संस्था ही पर्याप्त होती है।

औद्योगिक चोट योजना अंशतः बीमारी योजना और अंशतः पेनशन योजना होती है। यद्यपि अस्थायी अपंगता हितलाभ पाने वालों से वैयक्तिक सम्बंध रखना वांच्छनीय है, तो भी, इनका वितरण इतना विरल होता है कि शहरों के अतिरिक्त अन्य स्थानों में, इनके लिए विशिष्ट स्थानीय एजेंसियां स्थापित करना मितव्ययी नहीं होता।

अधिकांश देशों में, सामाजिक सुरक्षा की शाखाओं का वैयक्तिक संगठन, सुविधा और मितव्ययिता की दृष्टि से समाधानकारक होते हुए भी, समस्त संगठना के बारे में यह नहीं कहा जा सकता । शामलाती सेवाओं की स्थापना से और अनेक शाखाओं के अन्तर्गत दी जाने वाली सुरक्षा के बीच पड़ने वाले खंड या अतिछादन को हटाकर मूल्यवान फायदे प्राप्त किये जा सकते हैं ।

जिन देशों की सामाजिक सुरक्षा पद्धति के अन्तर्गत विभिन्न समय पर और विभिन्न सिद्धांतों पर स्थापित शाखाओं का समावेश होता है वहां, उस पद्धति की पूर्णतः तर्कयुक्त पुनर्घटना करने में बहुधा कठिनाइयां आती हैं । शाखाओं के प्रशासन से सम्बंधित व्यक्तियों में, व्यक्तिगत या संगठनात्मक रूप में, अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखने का स्वार्थ आ जाता है । यदि यह मान भी लिया जाय कि इस प्रतिकार को दबाना राजकारण की दृष्टि से संभव है, तो भी, एक ऐसी व्यवस्था के बदले जो दोष स्पष्ट होते हुए भी काम चलाऊ है, सिद्धांततः अच्छी पर अनपरखी व्यवस्था लाने के पूर्व आगा पीछा सोचना विवेकपूर्ण हो सकता है । तर्कयुक्त पुनर्घटना के फलस्वरूप और भी बड़ा प्राशासनिक ढांचा बन जाने की सम्भावना है जिसमें वैयक्तिक कार्य-उत्साह के कुंठित हो जाने का खतरा है परन्तु जहां पुनर्घटित कार्य ऐसे हैं जिन्हें एक ही यांत्रिक प्रकार से करते जाना है वहां इस खतरे का विशेष महत्व नहीं है ।

सामाजिक सुरक्षा की प्रत्येक सम्पूर्ण पद्धति में नक़दी हितलाभ, डाक्टरी हितलाभ और नौकरियां दिलाने के लिये आवश्यक सेवाओं की व्यवस्था होनी चाहिये और यदि कोई हितलाभ बीमा प्रकार का हो तो एक चौथी सेवा की भी व्यवस्था होनी चाहिये जो चन्दे जमा करे । तत्वतः ये सारी सेवाएं एक केन्द्रीय संस्था और उसकी स्थानीय एजेंसियां दे सकती हैं परन्तु इसका अर्थ होगा कि डाक्टरी हितलाभ को राष्ट्रीय स्वास्थ्य विभाग से और नौकरियां दिलाने के कार्य को श्रम विभाग से अलग कर दिया जाय । हां, यह अवश्य संभव है कि आर्थिक या तात्विक कारणों से, स्वास्थ्य विभाग व्यापक रोगों को रोकने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रयोजन के लिये डाक्टरी सुश्रूषा देने में असमर्थ हो या अनिच्छुक हो । ऐसी परिस्थिति में सामाजिक सुरक्षा पद्धति को यह ज़िम्मेवारी सम्भालनी ही होगी । परन्तु ऐसा कोई उदाहरण विदित नहीं है जहां श्रम-विभाग ने नौकरियां दिलाने के अपने कर्त्तव्य सामाजिक सुरक्षा हितलाभ देने वाली संस्था के भरोसे छोड़ दिये हों । इसके विपरीत जहां बेकारी हितलाभ दिया जाता है वहां, अधिकांश देशों में, इसके भुगतान की व्यवस्था काम दिलाऊ सेवा के मार्फत होती है ।

अधिक तर्कशुद्ध संगठन हासिल करने के आशय से इन सेवाओं को जिन विविध तरीक़ों से संगठित या वितरित किया जाता है उनका विधिवत प्रथक्करण करने का प्रयत्न हम न करेंगे । हम ऐसी सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के कुछ उदाहरण ही देंगे जिनका यह प्रयोजन पूर्णतः या काफी मात्रा में सफल हुआ है ।

मेक्सिको और पराग्वे में बीमारी, पेन्शन और औद्योगिक चोट बीमे की व्यवस्था एक केन्द्रीय स्वायत्तशासी संस्था को सौंप दी गई है जिसके स्थानीय कार्यालय भी हैं ।

तीनों शाखाओं का चन्दा इकट्ठा लिया जाता है और इन सबके लिये एक ही सम्पूर्ण डाक्टरी सेवा है जो राष्ट्रीय स्वास्थ्य विभाग से अलग है। लैटिन अमेरिका के अन्य बहुत से देशों में बीमारी और पेन्शन बीमे की व्यवस्था एक ही संस्था द्वारा होती है। जर्मनी (फेडरल रिपब्लिक) ने अपनी नई कुटुंब भत्ता योजना की कलम, पुराने ज़माने में स्थापित उन औद्योगिक समाजों पर लगा दी है जो औद्योगिक चोट बीमे का प्रशासन करते आये हैं।

इंग्लैंड और वेल्स में और न्यूज़ीलैंड में सार्वजनिक सामाजिक सुरक्षा पद्धति का प्रशासन तीन राष्ट्रीय विभागों द्वारा होता है जिनका सम्बन्ध क्रमशः नक़दी हितलाभ स्वास्थ्य सेवा और नौकरियां दिलाने से है। इनका एक सूत्रीकरण मंत्रियों के स्तर पर होता है और हर एक के स्थानीय कार्यालयों का स्वतंत्र जाल देश भर में बिछा हुआ है। इन में से प्रथम उल्लिखित देश में नक़दी हितलाभ सेवा के साथ चन्दा वसूली भी जुड़ी हुई है चूंकि हितलाभ-अधिकार चन्दों पर अवलंबित हैं।

इसी प्रकार रूस और लोक-प्रजातंत्र राज्यों में राज्य की मिल्कियत के उद्योगों के कर्मचारियों के सामाजिक बीमे की व्यवस्था तीन प्राशासनिक सेवाओं के आधीन है : पेन्शन सेवा जिसका प्रशासन सरकार केन्द्रीय तरीके पर करती है : राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा और बीमारी, प्रसूति और औद्योगिक चोट जन्य अस्थायी अपंगता में हितलाभ देने के लिये तथा हर एक उद्योग द्वारा दिये जाने वाले चन्दों पर निगरानी रखने के लिए, हर एक उद्योग में एक एक एजेंसी।

औद्योगिक चोट के अतिरिक्त अन्य सब संभावित घटनाओं में सुरक्षा प्रदान करने के लिए फ्रांस में एकीकृत पद्धति है परन्तु इसका क्षेत्र नगर-निवासी कर्मचारियों तक ही मर्यादित है। इसकी विशेषता, इसका शाखाओं-सदृश अंगों में विभाजन है, जो सारे स्वायत्तशासी हैं। स्थानीय स्तर पर इसके अंगों की दो-दो स्वतंत्र जोड़ियां हैं। एक जोड़ी बीमारी, प्रसूती तथा औद्योगिक चोट जन्य अस्थाई अपंगता में हितलाभ का भुगतान करती है, डाक्टरी सुश्रूषा पर किया हुआ खर्च लौटाती है और बीमारी, पेन्शन और औद्योगिक चोट बीमे के चन्दे वसूल करती है। अंगों की दूसरी जोड़ी कुटुंब भत्तों का भुगतान करती है और इनके लिए उन्हीं वर्गों के प्रति चन्दा वसूल करती है जिनके प्रति पहली जोड़ी करती है। प्रादेशिक स्तर पर भी अंगों की दो जोड़ियां हैं : एक वृद्धाप-कालीन पेन्शनों का भुगतान करती है और दूसरी, औद्योगिक चोट बीमे के प्रादेशिक केन्द्र के रूप में उस शाखा द्वारा दी जाने वाली पेन्शनों का भुगतान करती है। शिखर पर राष्ट्रीय समकारी निधि है जो कुल चन्दे की आय का वितरण भिन्न अंगों में, उनके वैयक्तिक खर्च के अनुसार करती है।

शाखाओं का संरसन किये बिना, एक शाखा के कुछ कार्य दूसरी शाखा को सौंपकर, सुविधा और मितव्ययिता में महत्वपूर्ण लाभ हासिल किये जा सकते हैं। ऑस्ट्रिया, डेनमार्क, जर्मनी (फेडरल रिपब्लिक), नार्वे और स्वीडन में औद्योगिक चोट के लिये अस्थायी अपंगता हितलाभ और डाक्टरी हितलाभ, बीमारी योजना के मार्फत दिये जाते

हैं। ऑस्ट्रिया में ही सारी शाखाओं के चन्दे भी बीमा योजनाओं की एजेंसियों द्वारा वसूल किये जाते हैं और अनेक दूसरे देशों में भी बीमारी योजना, बेकारी योजना के प्रति भी चन्दे जमा करती है। बेल्जियम में, जहां सामाजिक सुरक्षा पद्धति अनेक असम्बद्ध अंगों में वितरित है, एक विशिष्ट राष्ट्रीय एजेंसी की स्थापना की गयी है जो भिन्न प्रकार के अधिकांश चन्दे वसूल करती है।

स्वायत्तशासी प्रशासन

इंग्लिश पारस्परिक-सहायता-समाजों की प्रथा से प्रेरित होकर, बिस्मार्क के सामाजिक बीमा-विधान में यह व्यवस्था की गई थी कि उसके अन्तर्गत बेकारी और पेन्शन योजनाओं के प्रशासनार्थ स्थापित संस्थाओं का इंतज़ाम चन्देदारों के प्रतिनिधि ही करेंगे। इसके पश्चात् यूरोप के अन्य देशों में एक के बाद एक शुरू होने वाली सामाजिक बीमा योजनाओं में इसी सिद्धांत का अनुकरण किया गया और इस प्रकार बनी हुई परम्परा का पालन, ब्यौरे के हेर-फेर छोड़कर, बाद में शुरू होने वाली, दुनिया के अन्य देशों की योजनाओं ने भी किया। कुछ पेन्शन योजनाएं और इंग्लिस्तान की राष्ट्रीय बीमा योजना इसके अपवाद हैं। दूसरी ओर, और यह स्वाभाविक ही है, सहायता और सार्वजनिक योजनाओं का प्रशासन, स्थानीय प्राधिकारों की कमेटी के सहकार्य से सरकारी विभागों द्वारा ही होता है।

बीमारी बीमे के प्रशासन में ही प्रतिनिधि-संस्थाएं सबसे अधिक कार्यशाली और उपयोगी होती हैं और इन्हीं में ये अधिकतर पाई भी जाती हैं। इन संस्थाओं के सदस्य बनकर अनगिनती व्यक्ति सामाजिक उत्तरदायित्व कार्यप्रणाली तथा वाद-विवाद में प्रशिक्षण पा सकते हैं जो मज़दूरों के लिए विशेष मूल्यवान है। बीमारी बीमा (उद्योग तथा कृषि) सम्बन्धी १९२७ के दो अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन-कनवेन्शनों ने इस शाखा के लिए स्वायत्तशासन के सिद्धांत का प्रतिपादन करके और इसके प्रशासन में बीमान्वित व्यक्तियों द्वारा भाग लेने का आग्रह करके, एक आम दृढ़ विश्वास को ही प्रतिबिंबित किया है। पेन्शन योजनाओं में भी अधिकांश देशों में, जर्मनी का उदाहरण प्रभावशाली हुआ है। परन्तु किसी बड़ी केन्द्रीय संस्था की व्यवस्था में, वैयक्तिक तथा स्थानीय समस्याओं से उतना बारम्बार सम्पर्क नहीं आता और न ही उतने लचीलेपन और चतुराई की आवश्यकता होती है जितनी बीमारी बीमे को सम्भालने वाली छोटी संस्थाओं को है। एक बार मुख्य नित्यचर्या संतोषजनक रीति से निश्चित हो जाने पर, पेन्शन बीमे के प्रशासन की महत्वपूर्ण समस्याएं दीर्घ कालीन शोधक्षमत तथा रक्षित निधि के विनियोग सम्बंधी ही होती हैं, जिनके बारे में विशेषज्ञों का मार्गदर्शन वांच्छनीय है यह स्पष्ट है और जिनमें इस मार्गदर्शन का ही महत्व रहने की सम्भावना है। परिणामतः पेन्शन बीमे के तीन प्रकारों सम्बंधी १९३३ के अ० श्र० स० कनवेन्शन में, जो बहुत थोड़े यूरोपीय देशों के अनुभव पर आधारित था, बीमान्वित

व्यक्ति और संभवतः मालिक और सरकार की प्रतिनिधिक संस्था के प्रकारान्तर से राज्य सरकार की व्यवस्था में चलने वाली संस्थाओं का जान बूझकर उल्लेख किया गया है—परन्तु इस शर्त पर कि बीमा-निधि, लोक निधि से अलग रखी जायेगी।

सामाजिक बीमे की शाखा कोई भी हो, अधिकाँश योजनाओं में प्रतिनिधिक अंग के सदस्यों में बीमान्वित व्यक्तिओं के और मालिकों के प्रतिनिधियों की संख्या एकसी होती है, परन्तु हाल के विधानों की प्रवृत्ति बीमान्वित व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व बढ़ाने की ओर है। प्रतिनिधित्व चन्दों के अनुपात में होना चाहिये, इस सिद्धांत की तो जर्मनी में भी पराजय हो गई है। कुछ भी चन्दा न देते हुए भी, अधिकांश कुटुंब भत्ता योजनाओं की व्यवस्था में बीमान्वित व्यक्ति का हाथ रहता है। रूस और लोक-प्रजातंत्र राज्यों में बीमारी बीमा योजनाओं का प्रशासन मज़दूर संघ करते हैं परन्तु इनका वित्तपोषण राज्य-मालिकों के उद्योगों के चन्दों से होता है। जहां मालिकों से चन्दे मिलते हैं, वहां भी, जैसे कि बेल्जियम में, अनिवार्य बीमारी बीमा चलाने के लिए अधिकृत पारस्परिक सहायता समाजों की व्यवस्था उनके सदस्य अकेले ही देखते हैं।

इन अंगों पर नियुक्त किये जाने वाले प्रतिनिधि बड़े मज़दूर संघों द्वारा और मालिकों के संगठनों द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं या नामज़द किये जाते हैं। जहाँ केन्द्रीय प्रातिनिधिक अंगों का सम्बन्ध है, वहां नामज़दगी की पद्धति अधिक पसंद की जाती है।

अधिकांश केन्द्रित संस्थाओं के प्रातिनिधिक अंगों में सरकारी प्रतिनिधि एक तिहाई होते हैं, और सच तो यह है, कि जिन योजनाओं का प्रशासन ये संस्थाएं करती हैं उनको चलाने की लागत का भार संभालने में सरकार भी भाग लेती है। आमतौर पर ये प्रतिनिधि उच्च अधिकारी—यहां तक कि मंत्री ही होते हैं—और इनमें से एक कार्यांग का पदेन सभापति होता है। स्थानीय तथा केन्द्रीय संस्थाओं में डाक्टरी व्यवसाय के प्रतिनिधियों को भी अक्सर स्थान दिया जाता है।

इंग्लिश आदर्श के समान ही, सामाजिक बीमा संस्थाओं के बहुधा दो प्रतिनिधिक अंग होते हैं: एक विचार विनिमय करने वाली सभा और एक छोटी कार्यकारी कमेटी जो सभा द्वारा निर्वाचित की जाती है। प्रायः साल में एक बार बैठकर सभा वार्षिक प्रतिवेदन की जांच करती है, नीति के महत्वपूर्ण प्रश्नों का विचार विनिमय करके निर्णय करती है और अगले वर्ष का बजट अंगीकार करती है। चालू मामलों का निर्णय कार्यकारी कमेटी करती है। कभी कभी एक तीसरा अंग भी रहता है—अधीक्षक कमेटी में बहुसंख्यक वर्ग मालिकों का है और अन्य अंगों में बीमान्वित लोगों का। संस्था के व्यवस्थापक की नियुक्ति सरकार या प्रतिनिधिक अंग करते हैं। किसी न किसी रूप में अनेक देशों की प्रथा यह है कि अमले की भर्त्ती और सेवा की शर्तों में उचित योग्यता और नौकरी की स्थिरता के बारे में दक्षता बरती जाय।

सामाजिक बीमा योजनाओं के प्रशासन में प्रातिनिधिक अंगों के कार्य का मूल्यां-

कन यह दिखाता है कि इनका महत्व घटता जा रहा है परन्तु इसके भी स्पष्ट अपवाद मौजूद हैं। राज्य सरकार अपना नियंत्रण बढ़ाती जा रही है और उसी परिमाण में बढ़ता हुआ उत्तरदायित्व भी संभाल रही हैं। महत्व का यह स्थानांतर दूसरे महायुद्ध के बाद से स्पष्ट हो गया है। यह यूरोप तक ही सीमित है, चूंकि अन्य प्रदेशों में राज्य सरकारों ने उन संस्थाओं की बागडोर हमेशा अपने हाथ में रखी है जिनमें स्वायत्त-शासन की वह परम्परा नहीं है जो पारस्परिक सहायता आन्दोलन की विशिष्टता है और जो ज्यादातर केन्द्रशासित हैं। सन १९५२ में अंगीकृत सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम प्रतिमान) कनवेन्शन इस प्रवृत्ति की गुंजाइश रखता है। सामाजिक सुरक्षा की सारी शाखाओं के लिए—वे चन्दे वाली हों या बिना चन्दे वाली—उसमें सिर्फ दो सिद्धांत विहित हैं :

उचित प्रशासन के लिये राज्य-सरकार उत्तरदायी है और उतनी ही है शोधक्षमता के लिए;

व्यवस्था में रक्षित व्यक्तिओं का भाग होना आवश्यक है और यथासम्भव मालिकों और सरकार का भी, परन्तु वहीं तक जहां तक राज्य सरकार स्वयं योजना का प्रशासन नहीं करती।

इस प्रवृत्ति के निर्माण में अनेक कारणों का प्रभाव रहा है : सामाजिक बीमे के क्षेत्र का इतना विस्तार कि प्रायः सारी जनता उसके अन्तर्गत आ जाय और राज्य सरकार द्वारा की जाने वाली देखभाल विशेषतः बीमान्वित व्यक्तियों के प्रति होने वाली अनैतिक असमता दूर करने के लिए की जाने वाली देखभाल की बढ़ती हुई गहनता।

हम पहले ही कह चुके हैं कि सहायता और सार्वजनिक योजनाओं का प्रशासन राष्ट्रीय और स्थानीय सरकार के विभागों द्वारा होता है। यह न्यायोचित भी है क्योंकि रक्षित व्यक्ति वही है जो संसद के तथा स्थानिक स्वाराज्य के निर्वाचक हैं। जहाँ सामाजिक बीमे का क्षेत्र क़रीबन सारी जनता तक पहुँच चुका है वहां यह भी सही दिखता है कि योजना का प्रशासन सरकार के हाथ में सौंप दिया जाय। तो भी, फिनलैन्ड और आइसलैन्ड में राष्ट्रीय बीमा योजनाओं के कार्यांग संसदों द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं और इस प्रकार दो परिणाम हासिल किये जाते हैं : बीमान्वित व्यक्ति और चन्देदार की हैसियत से नागरिक के हित की देखभाल एक विशेषज्ञ प्रातिनिधिक अंग करता है और योजना की व्यवस्था का रोजाना के राजकीय हस्तक्षेप से बचाव हो जाता है। परन्तु वह विधान सभा को समय समय पर उत्तरदायी बनी रहती है। इसी प्रकार नार्वे और स्वीडन में राष्ट्रीय बीमारी बीमे की स्वायत्तशासी स्थानीय एजेन्सियों का प्रशासन करने वाली कमेटियां कम्यूनों (Communes) द्वारा निर्वाचित होती हैं।

इंग्लिस्तान की राष्ट्रीय-बीमा पद्धति में प्रतिनिधित्व के सिद्धांत के चिह्न राष्ट्रीय और स्थानीय सलाहकार कमेटियों में ही मिलते हैं जिनमें मज़दूर संघ और मालिकों की संस्थाओं के नामज़द व्यक्तियों का समावेश होता है। इतिहास का यह एक व्यंग

है कि जिस इंगलैण्ड के पारस्परिक सहायता आन्दोलन की एक शताब्दी पूर्व समस्त यूरोप मे बड़ी प्रतिष्ठा थी, और जिसकी अनिवार्य बीमारी बीमा योजना के प्रशासन तंत्र का सबने अनुकरण किया, उसी इंगलैण्ड में, सन १९४६ में जब बीवरिज रिपोर्ट पर अमल हुआ तो यह सारा सरंजाम बह गया। इस विद्रोह के खास कारण हैं। इनमें, सरकार द्वारा प्रशासित बेकारी और पेन्शन बीमा योजनाओं की कार्यकुशलता, और प्रादेशिक मर्यादा के अभाव के कारण सारे देश भर में फैले हुए सदस्यों के पारस्परिक-सहायता-समाजों के गड़बड़ घोटाले का भेद भी शामिल था।

कुछ अपवाद छोड़कर, अन्यत्र अनिवार्य बीमारी बीमे की सबसे निचले स्तर की एजेन्सियां जान बूझ कर बनाई हुई हैं। हर एक का प्रादेशिक क्षेत्र रक्षित होता है और उनकी वैयक्तिक स्वायत्तशासिकता (जहां है वहां) तर्कशुद्ध प्रशासन से सुसंगत है। तो भी, जैसा कि हम अभी देखेंगे, इन अंगों की जो भी स्वायत्तशासकता है वह अच्छी तरह मर्यादित है।

स्वायत्तशासन का उपप्रमेय है सरकारी निगरानी। योजना सरकार की प्रेरणा से चली हुई है: चन्दों के बदले जो हितलाभ देने का आश्वासन दिया गया है वे तो दिये ही जाने चाहियें; क़ानून में यह भी गृहीत है कि यदि स्वायत्तशासी संस्थाएं क़ानून का अमल ईमानदारी से करें तो यह क़रार पूरा किया जा सकेगा। सरकार को इस बात की जांच करना आवश्यक हो जाता है कि प्रशासनिक कार्य क़ानून से सुसंगत हैं या नहीं। विशेषत: बीमारी बीमे में तो उसे सतत दोष मिलते ही जाते हैं या उसके मतानुसार जो प्रथाएं या कार्य प्रणालियां सर्वोत्तम हैं उनका अनुसरण होते नहीं दिखता। परिणामत: वह भी सतत गलतियां सुधारती जाती हैं और अपने विनियमों का क्षेत्र बढ़ाती जाती है। कुछ संस्थाएं दूसरों की अपेक्षा अधिक समृद्ध दिखती हैं—इस कारण नहीं कि उनकी व्यवस्था अच्छी है, वरन् इस कारण कि उनके सदस्य मुख्यत: स्वास्थ्य-दायक व्यवसायों में लगे हैं, बेकार कम होते हैं या अधिक मज़दूरी पाते हैं। राष्ट्र के प्रतिनिधि के रूप में सरकार विचार करती है कि यह सद्भाग्य केवल उन्हीं संस्थाओं को लाभदायक न होना चाहिए वरन् सारे लोगों में इसका पुनर्वितरण होना चाहिए। इसलिये सारे बीमान्वित लोगों से एक ही पैमाने पर चन्दे लेना तय किया जाता है और उनको केन्द्रित कर दिया जाता है और सबको एक ही पैमाने पर हितलाभ दिया जाता है, चाहे, जिस संस्था के वे सदस्य हों उसका अनुभव कुछ भी हो।

जर्मनी (फेडरल रिपब्लिक) उन थोड़े से देशों में से एक है, जिनमें अनिवार्य बीमारी बीमे की संस्थाओं के मूल स्वशासनाधिकार पर्याप्त मात्रा में क़ायम हैं और जो हर खतरे का उत्तरदायित्व संभालने को, और चन्दों की दर और हितलाभ अनुसूची में, अनुभव जो भी हेर-फेर करने को मजबूर करे या गुंजाइश दे नियत मर्यादा के अन्दर उसे करने को, हर एक स्वतंत्र है। डेन्मार्क में राज्य-अनुदान पद्धति संस्थाओं को नीति निर्माण के लिये उपयुक्त गुंजाइश छोड़ देती है। यूगोस्लाविया में भी, जहां समाजिक बीमा पद्धति की पुनर्घटना १९५२ में हुई थी, प्रजातंत्र पद्धति से निर्वाचित

अंगों को, मार्गदर्शन देने के लिये पर्याप्त सुविधाएं दिखाती हैं।

रूस और पूर्व-यूरोप के देशों में सामाजिक बीमें की प्रशासनिक संघटना बिल्कुल ही मौलिक है। पेन्शन बीमा तो सरकार-प्रशासित और केन्द्रित है, परन्तु अल्पकालिक नकदी हितलाभ और विविध प्रकार की कल्याण सेवाएं मजदूर संघों के सुपुर्द हैं जिनके स्थानीय अंग हर एक उद्योग में कार्य करते हैं और जिनकी व्यवस्था वहां के मज़दूरों द्वारा चुनी हुई कमेटियां करती हैं। यह तो सही है कि डाक्टरी सुश्रूषा की व्यवस्था करना राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा का कर्त्तव्य है, परन्तु किन व्यक्तियों को स्वास्थ्य-दायक स्थानों पर जाकर रोगोत्तर उपचार लेना चाहिये, यह मज़दूर संघों के अंग तय करते हैं और उन्हें कुटुंबों के लिए कल्याण-सेवाओं की व्यवस्था के और दुर्घटनाओं के रोकने के कार्य के सिलसिले में बड़े सुअवसर मिलते हैं। इस प्रकार सामाजिक बीमे के प्रशासन और तत्सम्बन्धी कार्यों में विशेष रूप से बड़ी संख्या में बीमान्वित व्यक्ति भाग ले सकते हैं।

यह पुनर्विलोकन वही चिर-परिचित समस्या पेश करता है : जो रास्ता न्यायोचित दिखता है उस पर चलने में सख्ती करना चाहिए या गलतियां करने की और उनके परिणाम भोगने की मर्यादित स्वतंत्रता देनी चाहिए। यह खतरा वाकई में है कि यदि स्वाशासन में से उसका चित्ताकर्षक भाग निकाल दिया जाय तो प्रातिनिधिक अंगों का योग्य व्यक्तियों को कोई आकर्षण न बचेगा। अधिकांश बीमान्वित जनता स्वायत्तशासन के तत्व के प्रति उदासीन हो जायगी और सरकार को सारा उत्तरदायित्व संभालने देने में संतुष्ट रहेगी। जिनको यह भविष्य अच्छा नहीं लगता वे इस विचार से सुखी हो सकते हैं कि यदि सामाजिक सुरक्षा के राष्ट्रीय-न्यूनतम की गारंटी देने तक ही सरकार बढ़े तो ऐच्छिक संस्थाओं के नवनिर्माण के लिये हमेशा बहुत गुंजाइश रहेगी।

अपील का अधिकार

सामाजिक सुरक्षा पद्धति के प्रशासन में, विविध प्रश्नों पर और पक्षों की विविध जोड़ियों मे झगड़े होते रहते हैं। प्रश्न क़ानून सम्बन्धी या घटना सम्बन्धी होते हैं। जहां अनेक संस्थाएं स्वतंत्रता से कार्य करती हैं वहां कार्य क्षेत्र के बारे में झगड़े होते हैं। जहां किसी बीमा योजना का क्षेत्र सर्वव्यापक नहीं है या बीमान्वित व्यक्तियों के और मालिकों के विभिन्न वर्ग हैं वहां सीमास्थित मामलों पर निर्णय देना ही होगा। जहां डाक्टरी हितलाभ की व्यवस्था व्यवसायी डाक्टरों के साथ, औषधिविक्रेताओं के साथ तथा अस्पतालों के साथ क़रार करके की जाती है वहां क़रार न पाला जाने की शिकायतों की निष्पक्ष जांच होना आवश्यक होता है और दंड देने की भी व्यवस्था होनी चाहिए। परन्तु झगड़ों का सबसे बड़ा कारण है दावेदार की या हितलाभपात्र की, अपने दावे के निर्णय के बारे में या हितलाभ की रक़म के बारे में असंतुष्टता।

क़ानून के प्रश्नों के बारे में यह नितांत आवश्यक है कि एक रूप नज़ीरों का निर्माण हो और इसलिये इन प्रश्नों का निर्णय एक ही प्राधिकार द्वारा होने की व्यवस्था रखना आवश्यक है। हाँ, साधारण न्याय पद्धति के, उच्च न्यायालय के पास अपील करने की गुंजाइश रहनी चाहिए। दूसरी ओर, घटनाओं सम्बन्धी प्रश्नों का निबटारा स्थानीय मध्यस्थ कमेटी या, जहां ये अस्तित्व में न हों वहां, श्रम न्यायालयों के द्वारा ही सबसे अच्छा होता है।

जब तक दावेदार या हितलाभपात्र किसी ऐसे प्राशासनिक निर्णय के विरुद्ध अपील नहीं कर सकता, जिससे उसे हितलाभ से वंचित किया गया है या इतना हितलाभ प्रदान किया गया है जो उसके मत में क़ानून के अनुसार देय क़रम के बराबर नहीं है, तब तक यह सामाजिक सुरक्षा नहीं कही जा सकती। और अपील भी, प्रशासनिक अंग से स्वतंत्र किसी न्यायांग को सुननी चाहिए। क्योंकि यह याद रखना चाहिये, कि सामाजिक बीमे का उद्देश्य मज़दूर पर दारिद्रय-निवारण संस्थाओं के शरण जाने की लज्जास्पद बारी न आने देना था।

हितलाभ के झगड़ों में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने, अपील के अधिकार को सदा ही अत्यन्त महत्वपूर्ण माना है, और सामाजिक सुरक्षा की, चन्देवाली और चन्दाविरहित, विभिन्न शाखाओं के लिये जिन प्रतिमानों की निर्धारणा की है, उनमें, प्राय आग्रहपूर्ण और तुले हुए शब्दों में, इस सम्बन्ध में, विधान शामिल किये हैं। उदाहरणार्थ पेन्शन बीमे के विभिन्न प्रकारों सम्बन्धी १९३३ के कनवेन्शन में कहा गया है कि पेन्शन सम्बन्धी विवाद—

ऐसे विशेष न्यायाधिकरणों के सामने पेश किये जायेंगे ज़िनमें बीमे के प्रयोजनों से और बीमान्वित व्यक्तियों की आवश्यकताओं से परिचित न्यायाधीश होंगे, चाहे वे व्यवसाय से न्यायाधीश हों या न हों, या न्यायाधीशों की सहायता के लिये क्रमशः बीमान्वित व्यक्तियों और मालिकों के प्रातिनिधिक निर्धारक होंगे।

न्यायांग की रचना कैसी भी हो, महत्वपूर्ण यह है कि वह निष्पक्ष हो और विवाद की उत्पत्ति की क़ानूनी और सामाजिक पार्श्व भूमि से भलीभांति परिचित ही न हो वरन् उनकी कार्यप्रणाली भी शीघ्र निबटारा करने वाली तथा सस्ती या सम्भवतः निःशुल्क हो, क्योंकि हितलाभ सम्बन्धी विवादों के व्यवहारिक न्याय का मर्म इन्हीं गुणों में है।

सामाजिक बीमा योजना में न्यायांग का सबसे अधिक प्रचलित प्रकार विशेषतः सबसे निचले स्तर पर, त्रिपक्ष न्यायांग है जिसमें स्वतंत्र सभापति, एक बीमान्वित व्यक्ति और एक मालिक होता है। यूरोप में यह अंग, आमतौर पर, प्राशासनिक पद-सोपान के बाहर होता है, परन्तु कभी कभी, और विशेषतः लैटिन अमेरिका में, यह योजना का सर्वोच्च प्राशासनिक अंग ही होता है, जिसकी त्रिपक्ष संघटना में न्यायोचित विचार-विमर्श की गारंटी मानी जा सकती है। रूस और लोक-प्रजातंत्र राज्यों में मज़दूर संघों के वरिष्ठ अंगों के पास अपील की जा सकती है। (जर्मनी फेडरल

रिपब्लिक) में हितलाभ सम्बन्धी विवादों को त्रिपक्षीय न्यायाधिकरणों की त्रिस्तरीय पद्धति संभालती है। इंग्लिस्तान की राष्ट्रीय सहायता योजना में यथार्थ में त्रिपक्षीय रचना के स्थानीय–अपील–न्यायाधिकरणों की व्यवस्था है। ऐसी योजनाओं में यह शुद्धता का अतिरेक बहुत कम ही मिलता है।

बीमारी, पेन्शन और औद्योगिक चोट बीमे में उत्पन्न होने वाले, संभवतः अधिकांश हितलाभ सम्बन्धी विवादों में दावेदार की शारीरिक स्थिति और उसकी कार्य करने की शक्ति के प्रश्न उपस्थित होते हैं। यद्यपि प्रथम निर्णय डाक्टरी अफ़सर या डाक्टरी मंडल द्वारा दिया जाता है तो भी, आमतौर पर, हितलाभ सम्बन्धी साधारण विवादों का निबटारा करने वाले न्यायांग के पास अपील की जा सकती है। दूसरी ओर जहां विवाद, काम करने की अस्थायी अपङ्गता के बारे में है वहां शीघ्रातिशीघ्र निर्णय दिलाने वाली कार्यप्रणाली अत्यंत उपयुक्त है। जैसे कि फ्रांस में इस प्रश्न का निर्णय, दावेदार का इलाज करने वाला डाक्टर और संस्था का डाक्टरी अफसर इन दोनों को सम्मति से चुना हुआ एक डाक्टरी मध्यस्थ कर देता है। और फिर, औद्योगिक चोट हितलाभ के लिए स्थायी अपंता की मात्रा यदि चोट के शारीरिक परिणामों पर ही अवलंबित हो तो, जैसा कि इंग्लिस्तान में है, डाक्टरी मत को निर्णयात्मक मानना ही उचित होगा। उस देश में पहली पेशी डाक्टरी मंडल के सामने होती है और अपील ऐसे न्यायाधिकरण के पास की जा सकती है जिसमें एक वकील और दो डाक्टर होते हैं।

दसवें पाठ पर प्रश्न

१. उन परिस्थितियों का निर्देश कीजिये जिनमें चन्दे की वसूली की टिकट पद्धति वेतन चिट्ठा पद्धति से अधिक उपयुक्त मानी जा सकती है।

२. एक से क्षेत्र वाली, सामाजिक बीमा पद्धति की विभिन्न शाखाओं के ऐसे कौन से कार्य हैं जो आपके मतानुसार शामलाती उपयुक्तता में किये जा सकते हैं ?

३. क्या कानून द्वारा विहित हितलाभों के भुगतान की गारंटी सरकार द्वारा लेना, और बीमा संस्थाओं को काफी स्वायत्त-शासनाधिकार देने के दो सिद्धांतों में आप सामंजस्य स्थापित कर सकते हैं ?

४. सामाजिक बीमा संस्थाओं के प्राशासनिक अंगों में विभिन्न पक्षों का प्रतिनिधित्व इस पर अवलंबित होना चाहिये वे चंदा देते हैं या नहीं देते इस सिद्धान्त के बारे में आपका क्या मत है ?

SUGGESTIONS FOR FURTHER READING

International Labour Office Publications

Approaches to Social Security. An International Survey. Studies and Reports, Series M, No. 18. Geneva, 1942. vi+100 pp.

International Survey of Social Security. Studies and Reports, New Series, No. 23. Geneva, 1950. 236 pp.

Problems of Social Security. Asian Regional Conference, New Delhi, 1947. Report I. New Delhi, 1947. 123 pp.

Social Security. Regional Conference for the Near and Middle East, Teheran, 1951. Report III. Geneva, 1950. 68 pp.

Social Security—Achievements and Future Policy. Fifth Conference of American States Members of the I.L.O., Rio de Janeiro 1952. Geneva, 1952. 108 pp.

Social Security for Seafarers. Studies and Reports, Series M, No. 19. Geneva, 1945. vi+264 pp.

Systems of Social Security: New Zealand. Geneva, 1949. 67 pp.

Systems of Social Security: United States. Geneva, 1954. 107 pp.

Systems of Social Security: Great Britain. Geneva, 1957. 73 pp.

International Social Security Association Publications

Family Allowances. Eleventh General Meeting, Paris, 1953. Report II. Geneva, 1954. 312 pp.

Relations Between Social Security Institutions and Members of the Medical Profession. Eleventh General Meeting, Paris, 1953. Report IV. Geneva, 1953. 593 pp.

Sickness Insurance. Twelfth General Meeting, Mexico, 1955. Report II. Geneva, 1956. 320 pp.

Sacial Security Trends—Latin America—Nordic Countries—Near and Middle East—People's Democratic Republics. (Reprinted from I.S.S.A. *Bulletin,* No. 11—12 of 1951 and Nos. 1, 3 and 12 of 1952.) Geneva, 1953. 87 pp.

The Cost of Social Security 1949-1951. International Enquiry prepared by the I.L.O. Geneva, 1955. 108 pp.

Other Publications

ABHYANKAR, N. G. *Industrial Labour and Social Security.* The Times of India Press, Bombay, 1944.

AGARWALA, A. N. *Social Insurance Planning in India* Kitab Mahal, Zero Road, Allahabad, 1944.